पाठ्यक्रम–MSKTC-201

एम०ए० संस्कृत द्वितीय सत्र

वेद
(MSKTC-201)

(ऋक्सूक्तसंग्रह एवं पृथिवीसूक्त)

इकाई 1 से 21

लेखक : डॉ. सरोज कुमारी

दूरवर्ती एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला - 5

विषयानुक्रमणिका

इकाई	विषय	पृष्ठ संख्या
1	ऋग्वेद परिचय	3-25
2	ऋग्वैदिक देवता	26-41
3	अग्निमारुत सूक्त (1.19) व वरुण सूक्त (1.25)	42-58
4	सूर्य सूक्त (1.115)	59-66
5	अग्नि सूक्त (1.143)	67-75
6	विष्णु सूक्त (1.154)	76-82
7	इन्द्र सूक्त (2.12)	83-95
8	उषस् सूक्त (3.61)	96-104
9	सविता सूक्त (4.54)	105-111
10	पर्जन्य सूक्त (5.83)	112-120
11	वास्तोष्पति सूक्त (7.54)	121-125
12	यम सूक्त (10.14)	126-137
13	पुरुष सूक्त (10.90)	138-148
14	हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121)	149-158
15	वाक् सूक्त (10.125)	159-167
16	पृथ्वी सूक्त (अथर्ववेद 12.1)	168-179
17	पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 17–32)	180-187
18	पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 33–48)	188-196
19	पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 49–63)	197-204
20	वैदिक स्वर प्रक्रिया व पदपाठ	105-222
21	वैदिक–लौकिक संस्कृत भाषा का परिचय	223-231

इकाई – 1

ऋग्वेद परिचय

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 वैदिक साहित्य परिचय

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.4 ऋग्वेद की शाखाएं, संगठन और क्रम

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.5 ऋग्वेद का रचना काल

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.6 ऋग्वेद के ऋषि संहिता

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.7 ऋग्वेद के छन्द

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.8 ऋग्वेद का वर्ण्य विषय

- स्वयं आंकलन प्रष्न

1.9 सारांश

1.10 कठिन शब्दावली

1.11स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

1.12अनुशंसित ग्रन्थ

1.13 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वेद समस्त सृष्टि के सर्वस्व हैं। विश्व कल्याणार्थ चार वेद हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। वेद मानव जाति सहित समस्त प्राणी जगत् को सुखमय बनाने का एकमात्र साधन है अर्थात् वेद ज्ञान से ही मनुष्य सुख और शान्ति एवं लोक–परलोक को सुखी करता है। लोक–परलोक से सम्बन्धित समस्त क्रिया–कलापों का समावेश वेद में मिलता है। सृष्टि कल्याणार्थ ऐसा कोई विषय नहीं है जो वेद में

उपलब्ध नहीं है। वेद ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जो अज्ञान, निराश, अनाचार और आधि–व्याधि से मुक्त करके मानव जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में उपलब्ध ऋषि–मुनियों द्वारा दिया गया ज्ञान मानव जाति सहित समस्त सृष्टि के लिए कल्याणकारी है।

1.2 उद्देश्य

1. स्वयमेव ईश्वर द्वारा रचित वेद प्राणी जगत् के लिए सर्वश्रेष्ठ उपहार हैं।
2. सृष्टि कल्याणार्थ वेद का मानव जीवन में विशेष महत्त्व है।
3. वेद का शाब्दिक अर्थ ज्ञान है।
4. वेद में आध्यात्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं मानव जाति से सम्बन्धित समस्त विषयों का समावेश है।
5. वैदिक ज्ञान नित्य है एवं सृष्टि के लिए श्रेयस्कर है।

1.3 वैदिक साहित्य परिचय

वेद नाम के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को ग्रहण किया जाता है परन्तु वैदिक साहित्य के अन्तर्गत कुछ अन्य ग्रन्थ भी ग्रहण किए जाते हैं। वैदिक साहित्य का आरम्भ तो ऋग्वेद से हुआ था और इसके बाद यजुः, साम और अथर्ववेद भी रचे गए। इन वेदों की व्याख्या करने के लिए बाद में जो साहित्य लिखा गया, उनका अन्तर्भाव भी वैदिक साहित्य में कर लिया जाता है। चारों वेदों के अतिरिक्त चार उपवेद–आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषदें, छः वेदांग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष बृहद्देवता और अनुक्रमणिकाएं भी वैदिक साहित्य में ग्रहण की जाती हैं। वेदों का अध्ययन करने के लिए इस साहित्य का अवलोकन भी करना चाहिए।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  प्र॰ 1. वैदिक साहित्य का आरम्भ किस वेद से है?

  प्र॰ 2. उपवेदों की संख्या कितनी है?

1.4 ऋग्वेद की शाखाएं, संगठन और क्रम

अनेक पुराणों और पतंजलि के महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का उल्लेख किया गया है। शौनक के समय में ऋग्वेद की 5 शाखाएं उपलब्ध थीं– शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकायन। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में 15 शाखाओं का उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों ने तो इसकी 34 शाखाएं गिनाई हैं। वर्तमान समय में इसकी केवल एक ही शाखा–बाष्कल शाखा उपलब्ध होती है।

ऋग्वेद का संगठन दो प्रकार के क्रमों से किया गया है– अष्टक्क्रम और मण्डलक्रम।

(क) अष्टकक्रम –इस क्रम के अनुसार ऋग्वेद को आठ अष्टकों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अष्टक में आठ–आठ अध्याय हैं। ये अध्याय वर्गों में विभक्त हैं और प्रत्येक वर्ग में प्रायः पाँच मन्त्र हैं। वर्गों की संख्या 2006 है। इस प्रकार अष्टकक्रम के अनुसार ऋग्वेद में 8 अष्टक 64 अध्याय और 2006 वर्ग हैं।

(ख) मण्डलक्रम –ऋग्वेद का यह क्रम अधिक महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक है। इस क्रम के अनुसार ऋग्वेद 10 मण्डलों में विभक्त किया गया है। इनमें 85 अनुवाक् हैं और इन अनुवाकों में 1028 सूक्त तथा 10587 मंत्र हैं। शौनक की अनुवाकानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद में 10580 मंत्र और 153826 शब्द हैं।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 2**

प्र॰ 1. पतंजलि महाभाष्य में ऋग्वेद की शाखाएं कितनी हैं?

प्र॰ 2. ऋग्वेद में अष्टकों तथा अध्यायों की संख्या कितनी हैं?

1.5 ऋग्वेद का रचना काल

वैदिक साहित्य के अनुसार सृष्टि के आदि में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान अग्नि, वायु, सूर्य और अंगिरा को दिया था। ईश्वरीय ज्ञान, वेद मन्त्रों का ऋषियों ने दर्शन किया। जिन ऋषियों ने जिन मन्त्रों का दर्शन किया, वे उन मन्त्रों के ऋषि कहलाए। मनुस्मृति आदि के प्रमाणों को उद्घृत करके ऋषि दयानन्द ने यह प्रमाणित किया कि सृष्टि की उत्पत्ति 1, 96, 08,52,976 वर्ष पूर्व हुई थी, अतः वेदों का आविर्भाव इतने ही वर्ष पहले हुआ था।

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाले अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद को सबसे प्राचीन मानकर उसके समय के निर्धारण का प्रयत्न किया। इन विद्वानों का कथन है कि प्रत्यक्ष और सबल प्रमाणों के अभाव में ऋग्वेद के समय को ठीक–ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता, परन्तु उसका अनुमान अवश्य किया जा सकता है। ऋग्वेद की रचना के समय के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों को उद्धृत करना उपयुक्त होगा।

मैक्समूलर का मत–इंग्लैण्ड की 'सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' नामक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत मैक्समूलर द्वारा सम्पादित 'ऋग्वेद' (शाकल शाखा) का प्रकाशन हुआ था। यह ग्रन्थ 1859ई. के लगभग प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में मैक्समूलर ने ऋग्वेद के समय को निर्धारित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने 'ऋग्वेद' की रचना को 1200 ई. पू. का सिद्ध किया।

अपने मत् को सिद्ध करने के लिए मैक्समूलर ने कहा कि गौतम बुद्ध के समय तक वैदिक साहित्य की रचना पूरी हो चुकी थी। वैदिक साहित्य को उन्होंने चार भागों– छन्दः, मन्त्र, ब्राह्मण और सूत्र में विभाजित किया तथा उनके अनुसार प्रत्येक भाग के विकास का एक विशेष काल रहा था। सबसे पहले

छन्दों, उसके बाद मन्त्रों, तदनन्तर ब्राह्मणों तथा उनके पश्चात् सूत्रों की रचना हुई। मैक्समूलर के अनुसार प्रत्येक विभाग के विकास और उसकी पूर्णता के लिए 200 वर्षों का समय पर्याप्त है।

गौतम बुद्ध का समय 500 ई. पू. का है। अतः सूत्रों की रचना 600 ई. पू. में पूरी हो चुकी होगी। सूत्रों से 200 वर्ष पहले अर्थात् 800ई.पू. का समय ब्राह्मणों का है। इस समय तक ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों की रचना हो जानी चाहिए। उससे पहले 200 वर्षों का समय मन्त्रों का है। वेदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– छन्दः और मन्त्र। मन्त्रों का विनियोग यज्ञों के अनुष्ठानों में किया जाता है तथा शेष छन्द हैं। मन्त्रों की रचना और विकास उससे पहले के 200 वर्षों में अर्थात् 1000 ई.पू. तक तथा छन्दों की रचना उससे भी 200 वर्ष पहले अर्थात् 1200 ई.पू. में हुई थी। ऋग्वेद में प्राचीनतम छन्द और मन्त्र हैं। अतः ऋग्वेद का समय 1200 ई.पू.हो सकता है।

विलसन, कीथ, कोलब्रुक आदि विद्वानों ने ''ऋग्वेद'' की रचना के समय के सम्बन्ध में मैक्समूलर का समर्थन किया है।

ऋग्वेद के समय का निर्धारण करने में अनेक विद्वानों ने मैक्समूलर की पद्धति को तो स्वीकार किया, परन्तु प्रत्येक स्तर के विकास के लिए 200 वर्ष के समय को अपर्याप्त माना। ओल्डनबर्ग के अनुसार ऋग्वेद की रचना का समय 2500ई.पू. का होना चाहिए।

मैक्डोनल का मत–मैक्डोनल ने ऋग्वेद का रचना काल 1300ई.पू. प्रतिपादित किया है। मैक्डोनल का विचार है कि आर्यों की भारतीय और ईरानी शाखाएं, जो पहले एक ही थीं, 1300ई.पू. के लगभग पृथक् हुई थीं। इसी समय आर्यों की भारतीय शाखा द्वारा ऋग्वेद की रचना हुई। इसके 500 वर्ष बाद 800ई.पू. में अवेस्ता की रचना हुई। उनका कहना है कि जैकोबी के अनुसार यदि आर्यों की भारतीय एवं ईरानी शाखाओं के पृथक् होने के समय को 4500ई.पू. भी मान लिया जावे, तो भी 3000 वर्षों तक इनकी भाषाएं अपरिवर्तित ही रही होगी। 1907ई. में एशिया माइनर में प्राप्त 1400ई.पू. के अभिलेखों में मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्य आदि देवताओं के उल्लेख उस समय दोनों शाखाओं के साम्य को सिद्ध करते हैं। उसी समय के लगभग यदि दोनों शाखाओं के पृथक् होने को स्वीकार कर लिया जावे तो उसके कुछ समय बाद होने वाले भाषागत परिवर्तन ऋग्वेद की भाषा में व्यक्त हुए, जो भाषा उस युग की ईरानी से भिन्न हो गई होगी। अतः ऋग्वेद का रचना काल 1300ई.पू. होना चाहिए।

भण्डारकर का मत–डा.आर.जी. भण्डारकर ने इतिहास के आधार पर वेदों की रचना के समय को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। ''ईशावास्योपनिषद्'' में जो कि ''यजुर्वेद'' का 40वां अध्याय है, ''असुर्या'' शब्द आया है। भण्डार के अनुसार यह शब्द ''असीरिया'' है। ''ऋग्वेद'' में देवों और असुरों के संग्राम का उल्लेख है। असीरिया (मेसोपोटामिया) के लोग ही वेदों में उल्लिखित असुर हैं। ये 2500 ई.पू. के लगभग

भारत की ओर आये थे। अतः ''यजुर्वेद'' की रचना 2500ई.पू. के लगभग हुई होगी। ''ऋग्वेद'' इससे भी पहले रचा गया होगा। अतः ऋग्वेद की रचना का समय 6000ई.पू. रहा होगा।

सिकन्दर के आक्रमण के समय ग्रीकों ने राजवंशावलियों का संग्रह किया था। उनके अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले 154 राजाओं ने 6457 वर्ष तक राज्य किया था। यह समय वैदिक ही रहा होगा इससे बहुत वर्षों पहले ''ऋग्वेद'' की रचना का समय 8000–7000ई.पू. हो सकता है।

जैकोबी का मत–जर्मनी के बोन नगर के निवासी जैकोबी महोदय ने ज्योतिष के आधार पर गणना करके ''ऋग्वेद'' का समय 4500ई.पू. सिद्ध किया। उनका कहना है कि कल्पसूत्रों में विवाह के प्रकरण में ''ध्रुव इव स्थिरा भव'' वाक्य आया है। इसका अभिप्राय है कि ध्रुव तारा उस समय अधिक चमकीला और स्थिर रहा होगा। यह स्थिति 2000ई.पू. की हो सकती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कृत्तिका नक्षत्र में वसन्त सम्पात का उल्लेख है। गणना द्वारा यह समय 2500ई.पू. का प्रतीत होता है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों और कल्प सूत्रों का समय 2500ई.पू. के लगभग रहा होगा। ''ऋग्वेद'' का समय और भी बहुत पहले 4500ई.पू. होना चाहिए।

हाग–ज्योतिष के आधार पर हाग महोदय ने वेदांग ज्योतिष की रचना का समय 1186ई.पू. निर्धारित करके ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना काल 1400–1200ई.पू. निश्चित किया। उनके अनुसार वैदिक संहितायें 2000–1400ई.पू. में निबद्ध हुई। मन्त्रों की रचना का समय 1400–2000ई.पू. के लगभग रहा होगा।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित–महाराष्ट्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष के आधार पर नक्षत्रों की गणना करके शतपथ ब्राह्मण का समय 3000ई.पू. निर्धारित किया और ऋग्वेद की रचना के समय को 3500ई.पू. का प्रतिपादित किया।

तिलक का मत–ज्योतिष के आधार पर वेदों के समय को निर्धारित करने में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। उनके अनुसार संहिताओं का निबन्धन 4500ई.पू. में हुआ था और उससे पहले 2000वर्षों में सारे मन्त्र रचे गये थे। इस प्रकार से प्राचीनतम ऋचायें 6500ई.पू. तक की हो सकती है।

तिलक का कहना है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के समय नक्षत्रों की गणना कृत्तिका नक्षत्र से होती थी तथा कृतिका नक्षत्र के समय दिन और रात बराबर होते थे। वर्तमान समय में 29 मार्च और 13 सितम्बर को दिन और रात बराबर होते हैं और सूर्य उस समय अश्विनी नक्षत्र में रहता है। इतना परिवर्तन 4500वर्षों में हो सकता है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना 4500 वर्ष पूर्व 2500ई.पू. में हुई होगी। संहिताओं के युग में दिन और रात उस समय बराबर होते थे जब सूर्य मृगशिरा नक्षत्र में होता था। यह समय 6500 वर्ष पहले का है। अतः संहिताओं की रचना का समय 4500ई.पू. का है। ''ऋग्वेद'' के मन्त्र के अनुसार मृगशिरा नक्षत्र में वसन्त ऋतु होती थी और दिन रात बराबर होते थे यह समय और भी 2000 वर्ष पूर्व का रहा होगा। अतः ऋग्वेद के मन्त्रों का रचना काल 6500ई.पूर्व होना चाहिए।

ऋग्वेद की एवं अन्य वेदों की रचना के समय को ठीक–ठीक निर्धारित करना प्रायः असम्भव सा ही है। इनके समय को निर्धारित करने में विभिन्न विद्वानों ने शताब्दियों नहीं, अपितु सहस्राब्दियों का अन्तर किया है। परन्तु यह निश्चित है कि वेद संसार का सबसे प्राचीन साहित्य है। इनके अर्थों का ठीक प्रकार से समझना न केवल गैर भारतीयों के लिए अपितु भारतीय विद्वानों के लिए भी कठिन रहा है। भारतीय विचारधारायें वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानकर इनके समय के सम्बन्ध में विचार नहीं करतीं। इसलिए वेदों के समय–निर्णय की ओर अधिक ध्यान न देकर इनके प्रतिपाद्य विषयों और उपदेशों पर ही ध्यान देना अधिक उचित है।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 3**

प्र॰ 1. ऋग्वेद का रचना काल 4000 ई.पू. किस विद्वान ने माना है?

प्र ॰2. मैक्समूलर के अनुसार वेदों का रचनाकाल क्या है?

1.6 ऋग्वेद के ऋषि

ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त के अपने देवता, ऋषि और छन्द है। आधुनिक आलोचकों के अनुसार ये ऋषि मन्त्रों के रचयिता थे। कुछ समालोचन ऋषियों के इन नामों को कुटुम्बवाची मानते हैं। यास्क ने ऋषि का अर्थ किया है– 'ऋषिर्दर्शनात्''। अर्थात् मंत्रों के अर्थों का दर्शन करने वाले व्यक्ति को ऋषि कहा गया था। ये ऋषि मंत्रों के रचयिता नहीं थे, अपितु इन ऋषियों ने सर्वप्रथम उन सूक्तों के अर्थों का दर्शन करके उनका लोक में प्रचार किया था।

ऋग्वेद में मण्डलों का संगठन ऋषियों की दृष्टि से किया गया था। इस दृष्टि से दूसरे मण्डल से आठवें मण्डल तक के सूत्र अधिक संगठित हैं। इनमें प्रत्येक मण्डल का एक ऋषि है। दूसरे मण्डल के गृत्समद, तीसरे मण्डल के विश्वामित्र, चौथे मण्डल के वामदेव, पाँववें मण्डल के अत्रि, छठे मण्डल के भारद्वाज, सातवें मण्डल के वसिष्ठ एवं आठवें मण्डल के कण्व एवं उनके वंशज ऋषि हैं। पहले, नवें और दसवें मण्डलों के सूक्तों के ऋषि एक नहीं है, अपितु ये अनेक ऋषियों की रचनाएं हैं। नवम मण्डल को पवमान मण्डल भी कहते हैं तथा इसमें केवल सोम विषयक सूक्तों का संग्रह है। इस दृष्टि से नवम मण्डल, पहले और दसवें मण्डल से अधिक संगठित है। इसलिए अनेक आलोचकों का विचार है कि ऋग्वेद में पहले, दूसरे से नवें मण्डल का ही भाग था तथा पहले और दसवें मण्डल बाद में जोड़े गए।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 4**

प्र॰1. यास्काचार्य के अनुसार ऋषि का अर्थ क्या है?

प्र॰2. ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ऋषि कौन हैं?

1.7 ऋग्वेद के छन्द

ऋग्वेद छन्दोबद्ध रचना है। यास्क ने छन्द शब्द की रचना 'छद्' धातु से बताई है, जिसका अर्थ है– आवृत्त करना। अर्थात् छन्द वेदों के आवरण हैं। शब्दों को विशिष्ट आवरण में बांधे रखने वाले छन्द होते हैं। मन्त्रों का पाठ और अर्थों का ज्ञान छन्दों के बिना नहीं होता। वेद मन्त्रों को पढ़ते हुए ऋषि, देवता और छन्दों को जानना आवश्यक है। बृहदेवता में लिखा है–

अविदित्वा ऋषिच्छन्दो दैवतं योगमेव च।

योऽध्यापयेज्जयेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।

अर्थात् जो ऋषि, छन्द और देवता को एवं इनके विनियोग को जाने बिना वेद मन्त्रों का अध्ययन करता है, या जाप करता है, वह पापी होता है।

कात्यायन ने भी सर्वानुक्रमणी में यही बात कही है–

यो ह अविदितार्षेयच्छन्दो–दैवत–ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यायति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति।।

अर्थात् छन्द, ऋषि तथा देवता को जाने बिना मन्त्रों का अध्ययन करना, यज्ञ करना, अध्यापन करना इनसे प्रत्येक कार्य निष्फल होता है और व्यक्ति पापी होता है।

छन्दों के प्रथम आचार्य पिंगल माने जाते हैं। ये पाणिनि के छोटे भाई थे। इन्होंने 'छन्दःसूत्र' की रचना की थी। इसमें उन्होंने लौकिक और वैदिक सभी छन्दों का विवेचन किया था। 'छन्दसूत्र' में आठ अध्याय है। इनमें प्रारम्भ से लेकर चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दों के लक्षण दिए हैं। पिंगल से पहले भी छन्दशास्त्र के आचार्य हुए थे, परन्तु इनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं है। लेकिन कहीं–कहीं संकेत मात्र अवश्य उपलब्ध होते हैं।

ऋग्वेद में मुख्य रूप से सात छन्दों का उपयोग किया गया है। इनको तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. तीन पदों वाले छन्द – गायत्री और उष्णिक्।
2. चार पदों वाले छन्द – अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप् और जगती।
3. पांच पादों वाले छन्द – पंक्ति।

छन्द दो प्रकार के हैं– मात्रिक और वर्णिक। मात्रिक छन्दों में मात्राओं के अनुसार और वर्णिक छन्दों में वर्णों के अनुसार गणना की जाती है। वेदों में वर्णिक छन्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ है।

ऊपर कहे सात छन्दों के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–

1. गायत्री – इसमें तीन पद होते हैं और प्रत्येक पाद के आठ वर्ण होते हैं।

2. उष्णिक् – इसमें भी तीन पद होते हैं। पहले और दूसरे पाद में 8–8 तथा तीसरे पाद में 12 वर्ण होते हैं।

3. अनुष्टुप् – यह चार पदों का छन्द है। प्रत्येक पाद में 8–8 वर्ण होते हैं। इस छन्द का प्रयोग वैदिक साहित्य के अतिरिक्त लोक में भी प्रचुर हुआ है।

त्रिष्टुप् – यह भी चार पदों का छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में 11 वर्ण होते हैं। ऋग्वेद में इस छन्द का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

4. बृहती – इस छन्द में भी चार पाद होते हैं। इसके पहले, दूसरे और तीसरे पाद में 8–8 वर्ण और चौथे पाद में 12 वर्ण होते हैं।

5. जगती – जगती छन्द भी चार पादों वाला है। इसके प्रत्येक पाद में 12 वर्ण होते हैं।

6. पंक्ति – यह पांच पादों का छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में आठ वर्ण होते हैं। इन छन्दों को निम्न प्रकार से तालिका में दिखलाया जा सकता है–

क्र.सं.	**छन्द का नाम**	**वर्णों की संख्या**					
		प्रथम पाद	**द्वितीय पाद**	**तृतीय पाद**	**चतुर्थ पाद**	**पंचम पाद**	**योग**
1	गायत्री	8	8	8			24
2	उष्णिक्	8	8	12			28
3	अनुष्टुप्	8	8	8	8		32
4	त्रिष्टुप्	11	11	11	11		44
5	बृहती	8	8	8	12		36
6	जगती	12	12	12	12		48
7	पंक्ति	8	8	8	8	8	40

सामान्यतः इन सात छन्दों में ऊपर दिखाए वर्णों की संख्या रहती है। परन्तु ये वर्ण कम या अधिक भी हो सकते हैं। इससे उस छन्द के अवान्तर भेद हो जाते हैं। यदि छन्द में एक वर्ण कम हो तो उसे 'निचृत्' कहते हैं और दो वर्ण कम होने पर 'विराट्' कहते हैं। इसी प्रकार एक वर्ण अधिक होने पर उस छन्द को 'भूरिक्' तथा दो वर्ण अधिक होते हैं स्वराट् कहते हैं। उदाहरण के लिए गायत्री छन्द में 24 वर्ण होते हैं। यदि इसमें एक वर्ण कम हो अर्थात् 23 वर्ण हो तो यह 'निचृद् गायत्री' होगा। दो वर्ण कम होने अर्थात् वर्ण होने पर यह 'विराट् गायत्री' होगा। दो वर्ण कम होने अर्थात् वर्ण होने पर यह 'विराट् गायत्री' होगा। गायत्री छन्द में एक वर्ण अधिक होने पर अर्थात् 25 वर्ण होने पर यह छन्द 'भुरिग्गायत्री' कहलाएगा तथा दो वर्ण अधिक होने पर अर्थात् 26 वर्ण होने पर 'स्वराट्गायत्री' कहलाएगा।

कई बार किसी मन्त्र में निर्धारित संख्या से एक वर्ण कम होता है। तब उसको नियम में बांधने के लिए एक वर्ण को दो वर्णों में परिणित कर देते हैं। यह पूर्ति प्रधानतः निम्न प्रकार से की जाती है–

(क) सन्धि युक्त पदों को पृथक् करके उच्चारण करना। यथा 'नोऽव' को 'नो अव' अथवा 'ब्रह्मावदतो' को 'ब्रह्म अवदतो' या 'अद्याद्या' को 'अद्य अद्या' उच्चारण करना।

(ख) ए, ओ, ऐ और औ को दो स्वरों में पृथक् करना। यथा 'ज्येष्ठ' को 'ज्ययिष्ठ' पढ़ना।

(ग) संयुक्त य और व से पहले इ और उ लगा देना। जैसे 'सोम्यं' को सोमियं, 'वरेण्यं' को वरेणियं तथा 'स्वः' को सुवः पाठ करना।

(घ) संयुक्त रेफ से पहले स्वर लगाना। यथा 'इन्द्र' को इन्दर पढ़ना।

कात्यायन की सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद में इन छन्दों का प्रयोग निम्न संख्या में किया गया है–

क्र. संख्या	**छन्द नाम**	**मन्त्रों की संख्या**
1	गायत्री	2467
2	उष्णिक्	341
3	अनुष्टुप्	855
4	त्रिष्टुप्	4253
5	बृहती	181
6	जगती	1358
7	पंक्ति	312

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 5**

प्र॰1. छन्द सूत्र की रचना किसने की?

प्र॰2. ऋग्वेद में किस छन्द का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है?

1.8 ऋग्वेद का वर्ण्य विषय

ऋग्वेद विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है। इसमें समस्त सृष्टि का प्राचीनतम चित्र पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसकी ऋचाओं में वैदिक युग की सभ्यता और संस्कृति का पूर्णरूप उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में धार्मिक, राजनीतिक सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के विचारों का तथा उनकी प्रगति का विस्तृत वर्णन है। (इनका कुछ चित्र प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।)

- **ऋग्वेद का धर्म**

सृष्टि का मूल धर्म वैदिक धर्म कहलाता है। वेद धर्म का मूल हैं। प्रायः सभी भारतीय विचारक अति प्राचीन काल से वेदों को अपने धर्म का मूल मानते रहे हैं। आज हिन्दुओं के धार्मिक स्वरूप में अनेक

विभिन्नताएं हैं, कुछ ईश्वर के निराकार रूप की उपासना करते हैं और कुछ उसका साकार रूप भी मानकर उसकी मूर्तियों की पूजा करते हैं, कुछ अनेक देवताओं को मानते हैं और कुछ एक देव ईश्वर को मान कर उसमें इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि विभिन्न दैवी शक्तियों की कल्पना करते हैं। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराएं अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद आदि सभी सिद्धान्त वेदों को ही आधार मानकर प्रतिपादित किए जाते हैं। ऋग्वेद का मुख्य धार्मिक रूप देवताओं की उपासना करना है। यह उपासना अनेक देवताओं के रूप में या एक महान् देवता के रूप में हो सकती है।

- **अनेक देवताओं की उपासना**

ऋग्वेद में बाह्य रूप से बहुदेवतावाद की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। प्रधान रूप से 33 देवताओं की स्तुतियाँ ऋग्वेद में मिलती है। उपासना करने पर ये देवता मनुष्यों को विविध प्रकार की शक्तियाँ, सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं। ये देवता तीन वर्गों में विभक्त किए गए हैं– स्वर्ग स्थानीय देवता, अन्तरिक्ष स्थानीय देवता और भूस्थानीय देवता।

वैदिक भाष्यकारों के अनुसार पुरोहित यज्ञ किया करते थे और मन्त्रों का पाठ करते हुए देवताओं का आवाहन करते थे। प्रायः सभी मन्त्र देवता परक है और इनका विनियोग यज्ञों में किया जाता है। ऋग्वैदिक काल में ये देवता प्राकृतिक शक्तियों के या ईश्वर की दैवी शक्तियों और गुणों के प्रतीक थे। अनेक स्थानों पर मूर्त रूप वर्णित होने पर भी उनका स्वरूप अमूर्त था। कालान्तर में ये पौराणिक देवता बन गए और इनके मूर्त रूप की कल्पना की गई। देवताओं का राजा इन्द्र हुआ, जिसका निवास स्वर्ग में था। इन देवताओं में लोकोत्तर शक्तियों की भी कल्पना की गई।

- **एकदेवतावाद या एकेश्वरवाद**

ऋग्वेद में यद्यपि अनेक देवताओं की उपासना है तथापित वैदिक मन्त्रों का यह बाह्य अर्थ ही है। वेदों का आन्तरिक सन्देश मूल रूप में एक ही परम शक्ति के स्वरूप को उद्घाटित करना है। वैदिक ऋषियों ने वस्तुतः एक ही चेतन शक्ति की उपासना की थी, जो इस विश्व का मूल है। यह चेतना शक्ति ही परमात्मा, ईश्वर, पुरुष या ब्रह्म है। विभिन्न देवता उसी महान् शक्ति की विविध शक्तियों और गुणों को प्रकट करते हैं इन गुणों के दैवी या लोकोत्तर होने के कारण इनको देवता की संज्ञा दी गई है। वास्तव में इन देवता वाचक शब्दों का अर्थ ब्रह्मपरक ही है। ईश्वर के एकत्व की और उसमें देवता रूप अनेकत्व की स्थापना ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में की नई है। यथा–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निराहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वामाहुः।।

उस परमेश्वर के एक होते हुए भी विद्वान् उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। वे– इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, अग्नि, यम और मातरिश्वा।

य एक इत् तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षिणः।

पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।। ऋ. 6.45.16।।

वह परमात्मा एक होता हुआ भी विद्वानों द्वारा अनेक नामों से स्तुति किया जाता है। वह धर्मरूप यज्ञों का स्वामी हुआ।

यास्क ने भी सभी देवताओं की आत्मा को एक कहा है–

महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।।

इन सभी देवताओं की आत्मा एक ही है और उसकी अनेक प्रकार से स्तुति की जाती है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में पुरुष परमात्मा के असंख्य सिर, हाथ, पैर, आँख आदि बताए गए हैं और वह समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके स्थित है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 90वें इस पुरुष सूक्त में परम पुरुष में सभी शक्तियों को व्याप्त करके एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की गई है।

ऋषियों ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों का दर्शन और अनुभव किया उन्होंने उनको देवता नाम से अभिहित किया। इन देवताओं में उन्होंने एक चेतन अधिष्ठात्री शक्ति के दर्शन किए। वही चेतन शक्ति सृष्टि का कर्त्ता, नियन्ता और संहता तथा देवताओं को भी शक्ति प्रदान करता है। वह सर्व शक्तिमान् और सर्वव्यापक शक्ति है, जो प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय नहीं है।

प्रायः सभी प्राचीन ऋषियों ने वेदों की व्याख्या करते हुए उनमें एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने विभिन्न देवताओं को उसकी विभिन्न शक्तियां तथा गुण माना। आधुनिक युग में राममोहनराय ने भी वैदिक देवताओं को प्रतीकात्मक गुण माना। ऋषि दयानन्द ने वेद मन्त्रों की व्याख्या के आधार पर प्रबल प्रमाणों द्वारा वेदों में एक ही ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित किया।

- **यज्ञ**

वैदिक धर्म को यज्ञों का धर्म कहा जाता है। प्रायः सभी विद्वानों की मान्यता है कि वेदों का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण को 'याज्ञिक भाष्यकार' का नाम दिया। परन्तु वेदों में यज्ञ से क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं हो सकता है। सामान्यतः अग्नि जलाकर हवन करने और उसमें आहुतियाँ देने को यज्ञ कहा गया है परन्तु यज्ञ के और भी अर्थ हैं। ब्रह्म यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, दान यज्ञ, ज्ञान यज्ञ आदि का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है। भगवान् को यज्ञ स्वरूप कह कर उसे यज्ञेश्वर, यज्ञ पुरुष आदि नामो से अभिहित किया गया है। अनेक ऋषियों ने यज्ञ का अर्थ परोपकार किया है। यज्ञ शब्द का कुछ भी अर्थ क्यों न हो, ऋग्वेद उसका समर्थ करता है।

2. ऋग्वेद में दार्शनिक चिन्तन

दार्शनिक चिन्तन ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। आत्मा–परमात्मा, सृष्टि–उत्पत्ति, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयों का ऋग्वेद में गहन चिन्तन किया गया है।

- **ईश्वर जीव–प्रकृति**

वैदिक धर्म में सृष्टि की रचना एवं विश्व के संचालन के लिए ईश्वर, जीव एवं प्रकृति इन तीन तत्वों की सत्ता स्वीकार की गई है। जीव और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा ईश्वर इसका नियामक और संचालक है। प्रकृति के द्वारा जीव बंधा रहता है तथा जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है। तत्त्व ज्ञान होने से वह इन सम्बन्धों से छूट जाता है और मोक्ष के परम आनन्द को प्राप्त करता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इस त्रैतवाद को पुष्ट किया गया है। निम्न मन्त्र में त्रैतवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनष्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

सुन्दर पंखों वाले समान आयु वाले दो पक्षी मित्र समान रूप से विश्व का आलिंगन कर रहे हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट पिप्पल का आस्वादन कर रहा है। दूसरा भोग न करता हुआ भी आनन्द प्राप्त करता है। इसमें विश्व प्रकृति है तथा पिप्पल उसके भोग्य पदार्थ हैं। आस्वादन करने वाला पक्षी जीव है तथा भोग न करने वाला दूसरा पक्षी ईश्वर है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीव चक्षुराततम्।।

यहाँ 'विष्णु' परमात्मा के लिए, 'सूरयः' जीवों के लिए और 'दिवीव चक्षुः' प्रकृति रूप सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

- **सृष्टि–उत्पत्ति**

सृष्टि–उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में 6–7 सूक्त हैं। इनमें नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त और पुरुष सूक्त बहुत प्रसिद्ध हैं। नासदीय सूक्त (10–129) में सृष्टि उत्पत्ति से पहले ही अवस्था का वर्णन करके उसकी रचना का क्रम बताया गया है। उस समय न सत् था, न असत् था। न लोक थे, न आकाश था। न गति थी, न स्थान था। न जन्म था, न मृत्यु थी और न अमृत था। न दिन था न रात थी। वही एक मात्र परमेष्ठी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अन्तश्चेतना के साथ निर्वात अवस्था में शान्त रूप में वर्तमान था। उसमें इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ और सृष्टि का बीज उत्पन्न हुआ। वह स्वयं कहाँ से उत्पन्न हुआ, यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई, देवता सृष्टि से पहले हुए या बाद में, यह कौन जानता है। यह परमेश्वर ही उस सृष्टि का अध्यक्ष है उसी को जानना चाहिए।

हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121) में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। सबसे पहले यह हिरण्यगर्भ परमात्मा ही था। वह उत्पन्न हुए सभी पदार्थों का अधिपति था। उसी ने पृथ्वी लोक और द्यु लोक को धारण किया हुआ है। वही आत्मा का आविर्भाव करने वाला है और मृत्यु का देने वाला है। सब देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी सुख स्वरूप हिरण्यगर्भ परमेश्वर की हम उपासना करें।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10.90) में पुरुष रूप परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने के साथ–साथ सृष्टि–उत्पत्ति के रूप को भी बताया गया है। जो कुछ वर्तमान में है, भूत काल में था और भविष्य में होगा वह पुरुष ही है। उस पुरुष से विराट् और उससे अधिपुरुष की उत्पत्ति हुई। उसी से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई।

- **मृत्यु और पुनर्जन्म**

ऋग्वेद में मृत्यु के बाद जीव की गति तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। मृत्यु के बाद जीव के मार्ग का निदर्शन यम करता है। यम जीव को उस मार्ग से ले जाता है जहाँ से उसके पूर्वज गऐ थे। यह स्थान आनन्दो से परिपूर्ण है–

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुः।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।।

जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गए हैं, पूर्वकाल में बने हुए मार्गों से शीघ्र जाओं और जाकर अन्न से तृप्त होने वाले दीप्तिमान शरीर वाले दोनों यम की और वरुण देवों को देखो।

ऋग्वेद के इन्हीं मन्त्रों के आधार पर पुराणों में पितृलोक की कल्पना की गई। यम को मृत्यु का देवता कहा गया है।

मृत्यु के बाद पुनर्जन्म होता है, ऋग्वेद में इसकी पुष्टि की गई है। निम्न मन्त्र से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की स्पष्ट पुष्टि होती है–

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।

ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति।।

वह परमेश्वर पुनः प्राणों की प्रतिष्ठा करता है। पुनः चक्षु आदि इन्द्रियों को, प्राणों को और भोगों को धारण कराता है। हे परमेश्वर हम आपकी कृपा से उदय होते हुए सूर्य को दीर्घकाल तक देखते रहें। सबको प्राण देने वाले हे ईश्वर आप हमें सुखी रखिए। हमारा कल्याण हो।

- **मोक्ष**

ऋग्वेद में मोक्ष को सबसे अधिक आनन्द का हेतु कहा गया है। यह सत्य, श्रद्धा, तपस्या और आध्यात्मिक ज्ञान से प्राप्त होता है। ज्ञान रूप ज्योति से मोक्ष के मार्ग के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। ऋग्वेद में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर मुझे उस परम मोक्ष लोक में स्थान प्रदान करो जहाँ निरन्तर ज्योति और परम आनन्द रहता है (ऋ० 9.113.7)। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में मोक्ष की कामना की गई है–

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।

तेभ्यो भद्रमंगिरसो वा अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।

जिन्होंने यज्ञों के द्वारा और दान के द्वारा मुक्ति को प्राप्त किया है, वे इन्द्र की मित्रता को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। उनका कल्याण हो गया है। उनके प्राण उनकी बुद्धियों को बढ़ाने वाले होते हैं। उस मोक्ष को प्राप्त मनुष्य को पूर्वमुक्त जीव अपने पास रख लेते हैं।

3. ऋग्वेद का समाज

ऋग्वेद के अध्ययन से उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत परिचय मिलता है।

- **वर्णव्यवस्था**

ऋग्वेद के काल में समाज चार वर्णों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया था। यह वर्ण–व्यवस्था व्यक्तियों के अपने गुणों और कर्मों के अनुसार विकसित हुई थी। चारों वर्ण परस्पर प्रीतिभाव से रहते थे।

ऋग्वेद के मन्त्रों में चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। ये वर्ण स्वयं पुरुष परमेश्वर के अंगों से उत्पन्न हुए थे–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः

उरु तदस्य यद्वैष्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

इस पुरुष का मुख ब्राह्मण था, क्षत्रिय भुजाओं से उत्पन्न हुए थे। वैश्य इसका उरू था। पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई थी।

- **आश्रम व्यवस्था**

ऋग्वेद में आश्रम व्यवस्था का उतना विकास दृष्टिगोचर नहीं होता, जितना अन्य वेदों में तथा वेदोत्तरकालीन साहित्य में है। ऋषियों ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था की थी। ऋग्वेद में मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य का और थोड़ा सा गृहस्थ जीवन का आभास दिया गया है। गुरु के पास विद्याध्ययन के लिए आने वाला विद्यार्थी ब्रह्मचारी कहलाता था और आचार्य उसे अपने पास रख कर शिक्षा देता था। ब्रह्मचर्य का पालन करना बालकों और बालिकाओं दोनों के लिए अनिवार्य था। निम्न मन्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा गाई गई है–

आचार्यों ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।

प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवद्वशी।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र नियच्छति।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मारिणमिच्छते।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणष्वो घासं जिगीर्षति।।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत।।

वेदों में गृहस्थ आश्रम को सब प्रकार की शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति का साधक बताया गया है। यह आश्रम ब्रह्मचर्य के बाद विवाह के अनन्तर प्राप्त होता है।

- **विवाह**

ऋग्वेद में विवाह के आदर्शों और विधि का रोचक वर्णन किया गया है। वर और कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए यौवन प्राप्त करने पर विवाह के अधिकारी होते थे। विवाह के समय वर कन्या का हाथ ग्रहण करके कहता था। यथा–

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्त मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।।

अर्थात् सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। मुझ पति को पाकर तुम वृद्धावस्था तक पहुँचना।

विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र को प्राप्त करना था। विवाह के अनन्तर इन्द्र से प्रार्थना की जाती है– हे इन्द्र! इस नारी को तुम उत्तम पुत्रों वाली और सौभाग्यवती बनाओ।

विवाह होने के बाद पतिगृह में पत्नी का बहुत अधिक सम्मान और अधिकार होता था। वह सास, ससुर, ननद और देवरों के घर में सम्राज्ञी होती थी और सब पर शासन करती थी।

- **समाज में स्त्रियों की स्थिति**

ऋग्वेद के युग में नारी जाति ने समाज में उचित सम्मान और अधिकार प्राप्त किया था। ऋग्वेद के अनेक देवता– पृथिवी, उषा, सूर्य, वाक् आदि नारियाँ तथा अनेक ऋषिकाएं हुई हैं जो ऋषियों के साथ शास्त्रार्थ करती थी। वैदिक युग में नारियों का देवियों के समान आदर किया था। पिता के घर में कन्याएं बहुत अधिक स्नेह और सम्मान पाती थीं। ब्रह्मचर्य का पालन करना उनके लिए अनिवार्य था और वे उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। अपने लिए योग्य पति का वरण करने के लिए वे स्वतन्त्र होती थीं।

विवाह होने के बाद नारियों का पति के घर पर पूरा अधिकार होता था। वे पति के लिए सन्तान उत्पन्न करती थीं और उसके प्रत्येक कार्य में सहायक होती थीं। पति के यज्ञ के कार्यों में तो वे सहायक होती ही थीं, आवश्यकता होने पर युद्धों में भी जाती थीं। ऋग्वेद के वचनों के अनुसार पत्नी को पति के प्रति प्रेम करने वाली एकनिष्ठ और प्रत्येक कार्य में सहभागिनी होना चाहिए। असती, विपथगामिनी और पति से द्वेष करने वाली नारी की सर्वत्र निंदा की गई है।

- **दास प्रथा**

ऋग्वेद में आर्येतर जातियों को दास कहा गया है। आर्यों ने इन जातियों को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। आर्य इनको अपने से हीन समझते थे और इनसे सेवा कराते थे। दास जाति के लोग अच्छे शिल्पी थे। वे विशाल नगरों तथा घरों का निर्माण करते थे। आर्यों द्वारा जीते जाने पर इनका शिल्प नष्ट नहीं हुआ। आर्य क्योंकि इन दासों को अपने से हीन समझते थे, अतः भारत में प्राचीन काल से ही शिल्पियों को कुछ हीन समझने की प्रवृत्ति रहीं। दास आर्यों के गुलाम नहीं थे, अपितु अधीनस्थ प्रजा थे। हीन समझे जाने के कारण इनकी सामाजिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं रही होगी। ऋग्वेद में दासों के क्रय–विक्रय का संकेत नहीं मिलता।

- **निवास**

वैदिक संस्कृति प्रायः ग्रामीण संस्कृति थी। उस समय बड़े नगरों का निर्माण नहीं हुआ था। ऋग्वेद में आर्येतरों के ही बड़े नगरों का उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने उनके 100 नगरों को नष्ट किया। घर के लिए यज्ञशाला वास्तु, परस्त्या, आयतन आदि शब्द ऋग्वेद में आए हैं। घरों के निर्माण में यज्ञशाला का विशेष महत्त्व होता था। घर के चार भाग होते थे– अग्निशाला, हविर्धान, पत्नीनां सदन और सदस्।

- **भोजन**

ऋग्वेदीय काल का भोजन सादा और पौष्टिक होता था। घी, दूध, दही आदि का वे प्रचुर प्रयोग करते थे। अनाजों में यव और चावल अधिक प्रयोग में आते थे। भोजन में मांस का प्रयोग भी होता था। गौयें विशेष प्रिय थीं, जिनके दूध का भोजन में विशेष स्थान था। ऋग्वेद में गाय को 'अध्न्या' कहा गया है। अर्थात् उनको मारा नहीं जा सकता।

- **पेय**

उस समय के पेय पदार्थों में जल और दूध के अतिरिक्त सोम और सुरा का भी स्थान था। मधु का उल्लेख आता है। सम्भवतः यह शब्द शहद और सुरा दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में सोम रस को बहुत महत्त्व दिया गया है। यह मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाली सोम लता का रस थ। इसको विशिष्ट विधियों से निकाला जाता था और तैयार किया जाता था। यज्ञों के अवसरों पर सोम पान करने के लिए देवताओं का आवाह्न होता था।

- **वस्त्र**

ऋग्वेद के युग में अधिकतर ऊन के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। कपास के वस्त्रों का प्रचलन कम था ऋग्वेद में वर्णित वस्त्रों में वासस्, वस्त्र, अधोवस्त्र और उत्तरीय उल्लेखनीय हैं। मृगचर्म और वल्कल वस्त्र भी पहने जाते थे। इन वस्त्रों को तपस्वी धारण करते थे।

- **आभूषण**

वैदिककाल के मानव आभूषणों के भी शौकीन थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। ऋग्वेद में प्रायः सोने के ही आभूषणों का उल्लेख मिलता है। रुक्म, निष्क आदि आभूषणों का उल्लेख मिलता है। ये आभूषण गले में वक्षःस्थल पर, कानों में, हाथों में और पैरों में पहने जाते थे। स्त्रियाँ विवध प्रकार से अपने को सजाती थीं और अनेक प्रकार की वेणियाँ बनाती थीं।

- **आमोद–प्रमोद**

आमोद–प्रमोद का अधिक वर्णन ऋग्वेद में नहीं मिलता है। तथापि कहीं–कहीं कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में घुड़दौड़ और रथ दौड़ का उल्लेख है। दौड़ को, 'अजि' और दौड़ के मैदान को 'काष्ठा' कहा गया हैं स्त्री और पुरुष नृत्यगान में भाग लेते थे और 'अघटि' नामक वाद्य बजाते थे। आर्यों को संगीत के सात स्वरों की पहचान थी और वे अनेक प्रकार के वाद्य–दुन्दुभि, ककंरी, वाण, जाली आदि बजाते थे। मनोविनोद के लिए जुआ खेलने का भी वर्णन आता है, परन्तु जुआ खोलने की हानियाँ भी बताई गई हैं।

4. ऋग्वेद के समय का राजनैतिक जीवन

वैदिक युग की शासन व्यवस्था और राजनीति का विस्तृत परिचय ऋग्वेद से प्राप्त होता है। वैदिक युग में बड़े–बड़े राज्य नहीं थे, अपितु लोग अनेक जनों (कबीलों) में बंटे हुए थे। आर्यों के पाँच प्रमुख जनों का उल्लेख ऋग्वेद में है– अणु, द्रुह्य, यदु, तुर्वसु और पुरु। इनके अतिरिक्त भरत, त्रित्सु आदि जनों का भी वर्णन मिलता है। आर्य शासन व्यवस्था में सभी मनुष्यों की सामाजिक स्थिति प्रायः समान थी और सामान्य प्रजा को 'विशः' कहा जाता है। वैदिक युग की शासन व्यवस्था की कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं–

- **राजा**

वैदिक युग में शासन के संचालन के लिए राजा का निर्वाचन होता था। प्रत्येक जन की जनता (विशः) राजा का निर्वाचन करती थी। राजा जनता से प्रतिज्ञा करता था कि वह उसकी बाह्य तथा आन्तरिक आक्रमणों से रक्षा करेगा और न्यायपूर्वक उसका पालन करेगा। राजा के इस कार्य के लिए प्रजा उसको बलि (कर) देती थी।

अनेक बार विशः के प्रमुख व्यक्तियों को राजा के चुनने का कार्य सौंप दिया जाना था। ये स्वयं भी राजा कहलाते थे। इनको 'राजनः राजकृत' नाम दिया गया था। राजकार्यों में ये राजा को सहायता करते थे।

राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना और बाह्य आक्रमण होने पर सेना का नेतृत्व करना था। न्याय करना भी राजा का ही कार्य था। शासन के संचालन के लिए वह अधिकारियों को नियुक्त करता था। राजा के अधिकारियों में पुरोहित का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण था। वह धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराने के साथ ही राजा के साथ युद्धों में भी जाता था।

- **सभा और समिति**

राजा का निर्वाचन प्रजा द्वारा होता था तथा राजा प्रजा पर शासन करता था। परन्तु राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। राजा के अतिरिक्त प्रजा द्वारा दो संस्थाओं सभा और समिति का निर्वाचन होता था। ये संस्थाएं राजा पर नियंत्रण रखती थीं तथा राजकार्यों में उसकी सहायता करती थीं। इन संस्थाओं के सदस्य राजकीय नीतियों का निर्धारण करने के लिए सभागृह में एकत्रित होते हैं। वे वहाँ परस्पर विवाद करते थे तथा भाषण देते थे। इन संस्थाओं के निर्णयों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता था।

सभा और समिति में क्या भेद था? यह स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः सभा की सदस्य संख्या कम रही हो और यह अन्तरंग सभा हो एवं समिति का रूप अधिक बड़ा हो। समिति के निर्णयों को एक मत से स्वीकार करने का प्रयत्न किया जाता था। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में प्रार्थना की गई है कि समिति के सदस्यों का मत एक ही हो।

- **युद्ध और शस्त्र**

वैदिक काल में युद्ध की कला का अच्छा अभ्यास किया जाता था। धनुष–बाण और तलवार इनके प्रमुख हथियार थे। आर्य भालों और छुरियों का भी प्रयोग करते थे। शरीर की रक्षा के लिए लोहे के कवच, टोप और दस्तानों को पहना जाता था। युद्धों में सवारी के लिए घोड़े और रथ काम में आते थे।

ऋग्वेद में अनेक युद्धों का वर्णन किया गया है। सबसे प्रधान युद्ध दाशराज युद्ध है, जो आर्यों के दस प्रधान राजाओं में आपस में ही हुआ था। इन्द्र ने इसमें सूर्यवंशी राजा सुदास की सहायता की थी। इन युद्धों में अनार्य राजा भी सम्मिलित हुए थे, जिनके 99 नगरों को इन्द्र ने ध्वस्त कर दिया था।

- **राष्ट्रियता**

ऋग्वैदिक युग में अपने देश के प्रति भक्ति और राष्ट्रियता की भावना का विकास हो गया था। ऋग्वेद के 5.66.6 मन्त्र में राज्य की महिमा का उपदेश है। स्वराज्य की अनेक उपायों से रक्षा करनी चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना अनेक मन्त्रों में अभिव्यक्त हुई है।

वैदिक ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व के लिए भी एक राष्ट्र की कल्पना की थी। उन्होंने राजा के आदर्शों को प्रस्तुत किया था। राष्ट्र का राजा ऐसा होना चाहिए, जिसको प्रजा चाहे। उस एकच्छत्र राजा के शासन में कभी भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए। वह राजा पर्वत के समान स्थिर होकर राष्ट्र को धारण करता है–

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।

इन्द्र इवेह ध्रूवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।। ऋग्वेद 10.173.2।।

5. ऋग्वेद का आर्थिक जीवन

ऋग्वेद के युग में जीवन की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए व्यक्ति बहुत कुछ स्वयं समर्थ होता था। गाँवों में आवश्यक वस्तुएं वहीं पैदा कर ली जाती थीं और बाहर से वस्तुओं को मांगने की आवश्यकता

प्रायः नहीं होती थी। कृषि और पशुपालन उस युग के प्रमुख व्यवसाय थे, यद्यपि अनेक प्रकार के उद्योगों और शिल्पों का विकास हो चुका था।

- **कृषि**

ऋग्वेद के समय में कृषि महत्त्वपूर्ण व्यवसाय बन चुकी थी। लकड़ी और धातु के हल बनाए जाते थे और इनको बैलों द्वारा जोता जाता था। सिंचाई की भी व्यवस्था की गई थी। आर्यों का प्रमुख अन्न जौ था। इसके अतिरिक्त गेहूँ, धान, माष, तिल आदि भी बोए जाते थे। यवों के पक जाने पर इनको हंसिये से काटकर खलियान में लाया जाता था और पीटकर तथा सूप से पछीनकर अनाज अलग किया जाता था। राजाओं के बड़े–बड़े खेत होते थे। ऋग्वेद में अनेक बैलों से जोते जाने वाले हलों का वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद में अनेकों वृक्षों और वनस्पितियों का भी उल्लेख आता है। इनमें पीपल, न्यग्रोध और वट मुख्य हैं। सोम नामक वनस्पति आर्यों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी।

- **पशुपालन**

आर्यों के जीवन में पशुओं का बहुत अधिक महत्त्व था। गौ, बैल, भेड़ और बकरी आर्यों की आजीविका के लिए आवश्यक थे। बैल कृषि के लिए आवश्यक था, गाय और बकरी से दूध लिया जाता था और भेड़ों से ऊन प्राप्त होती थी। आर्यों के लिए गौ बहुत मूल्यवान् और पूजनीय थी। गौ का वध नहीं किया जा सकता था।

घोड़ा आर्यों का एक अति मूल्यवान् पशु था। गोधन के साथ वाजिधन की प्रार्थना वेद के मन्त्रों में की गई है। घोड़ों का उपयोग युद्धों के लिए, रथों को खींचने के लिए तथा तीव्रगामी सवारी के लिए आवश्यक रूप से होता था। एक घोड़े का मूल्य 1 हजार गायों के बराबर होता था।

कुत्तों को भी पाला जाता था। घरों की रक्षा के लिए तथा शिकार में सहायता के लिए कुत्ते उपयोगी होते थे।

पालतू पशुओं के अतिरिक्त ऋग्वेद में वन्य पशुओं का भी उल्लेख आता है। इनमें सिंह, हाथी, वृक, वराह, कच्छ और कपि मुख्य हैं। महिष घरेलू और जंगली दोनों प्रकार के होते थे।

- **उद्योग**

ऋग्वैदिक युग में उद्योगों का प्रचुर विस्तार हुआ था। कपड़े का उद्योग काफी विकसित था। जुलाहे (तन्तुवाय) कपड़ा बुनते थे। वस्त्र मुख्य रूप से ऊन से बनते थे।

रथ बनाना, चमड़े का सामान बनाना, सोने के आभूषण बनाना, लकड़ी और धातुओं का सामान बनाना, मकान बनाना, हथियार बनाना, नौका बनाना आदि उद्योगों का विस्तृत परिचय हमें ऋग्वेद से मिलता है।

- **खनिज**

ऋग्वेद में अनेक खनिजों का वर्णन आया है। सबसे अधिक उल्लेख स्वर्ण का है। स्वर्ण का उपयोग आभूषण बनाने तथा पात्रों को बनाने के लिए किया जाता था। दूसरा महत्त्वपूर्ण खनिज अयस् है। संस्कृत भाषा में इसका अर्थ लोहा है। ऋग्वेद के युग में अयस् शब्द लोहे का वाचक था, यह निश्चित नहीं किया जा सका है। अनेक विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद का अयस् शब्द ताम्बे का वाचक था। अथर्ववेद में दो प्रकार के अयस्– कालायस और लोहितायस का उल्लेख है, जो सम्भवतः क्रमशः लोहे और ताम्बे के वाचक हैं। ऋग्वेद में कुछ स्थानों पर अयस् का रंग लालिमा लिए हुए बताया गया है, इसलिए कुछ विद्वान् इसका अर्थ ताम्बा करते हैं।

- **व्यापार**

ऋग्वेद के युग में व्यापार का भी काफी विकास हुआ था। व्यापार का माध्यम उस युग में वस्तु–विनिमय रहा होगा, यद्यपि निष्क नामक सिक्के का भी उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर गौ को इकाई मानकर विनिमय करने का उल्लेख है।

वैदिक युग में स्थलीय मार्गों से व्यापार होने के अतिरिक्त जलीय मार्गों से भी व्यापार अवश्य होता होगा। समुद्री व्यापार भी सम्भवतः होता था। वैदिक संहिताओं में बड़ी–बड़ी नौकाओं का वर्णन है, जो समुद्रों में दूर–दूर तक जाती थीं।

6. ऋग्वेद के युग में विज्ञान का विकास

ऋग्वैदिक सभ्यता के युग में अनेक विज्ञानों का विकास हो चुका था तथा आर्यों ने प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक प्रगति की थी।

- **चिकित्सा**

वैदिक युग में चिकित्सा शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक मन्त्र ऋग्वेद में हैं। औषधियों और मन्त्रों द्वारा चिकित्सा की जाती थी। औषधि के रूप में जल का भी प्रयोग होता था। योग्य वैद्य चिकित्सा करने के लिए अनेक औषधियों का संग्रह करते थे। एक मन्त्र में (1.24.9) प्रार्थना की गई है कि हे राजन्! तुम्हारे पास सैंकड़ों वैद्य हों।

ऋग्वेद में शल्यविज्ञान के विकास के संकेत भी हैं। अश्विनी देवता मुख्य शल्यचिकित्सक थे। एक मन्त्र के अनुसार अश्विनी देवताओं ने विश्पला की टूटी जांघ जोड़ दी थी, ऋजाश्व की आँखे बनाई थीं और श्रोण के घुटने ठीक कर दिए थे।

ऋग्वेद में आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त का भी संकेत है। एक मन्त्र (1.283.1) में त्रिधातु वात, पित्त और कफ का उल्लेख किया गया है।

- **भूगोल**

ऋग्वेद के ऋषियों का भौगोलिक ज्ञान बहुत अधिक था। उन्होंने चार समुद्रों का वर्णन किया है, जिनमें बड़ी–बड़ी नौकाओं से यात्रा की जाती थी। पर्वतों का और उनसे निकलने वाली नदियों का वर्णन है। ऋग्वेद में मुंजवान् पर्वत का विशेष उल्लेख है, जहाँ से सोम नामक वनस्पति प्राप्त होती थी। यह पर्वत निश्चित रूप से उत्तर दिशा में था। सिन्ध प्रदेश के मरुस्थल का भी उल्लेख ऋग्वेद में आता है।

ऋग्वेद में नदियों का वर्णन प्रचुरता से किया गया है। आर्य नदियों के किनारे रहना पसंद करते थे। ऋग्वेद में 'सप्त सिन्धवः' और 'सप्त स्रवतः' शब्द अनेक बार आए हैं। इनका अर्थ है– सात नदियाँ। ये सात नदियाँ इस प्रकार थीं– सिन्धु, वितस्ता, परुष्णी, विपाशा, शुतुद्री, असिक्नी और सरस्वती। इन प्रमुख नदियों के अतिरिक्त और भी अनेक नदियों का वर्णन ऋग्वेद में आता है। अनेक नगरों और जनपदों का वर्णन भी ऋग्वेद में किया गया है।

- **ज्योतिष**

ऋग्वैदिक युग में ज्योतिष विज्ञान का भी विकास हो चुका था। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इस विज्ञान सम्बन्धित तथ्य उपलब्ध होते हैं। आर्य पृथिवी और अन्य नक्षत्रों की गति से परिचित हो गए थे। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 35वें सूक्त में सूर्य के अन्तरिक्ष में भ्रमण, उसके उदय के नियम, राशि–विवरण, सूर्य के कारण चन्द्रमा की स्थिति और सूर्य द्वारा भूलोक एवं द्युलोक को प्रकाशित करने आदि की बातें कही गई हैं। सूर्य द्वारा पृथिवी को थामने और पृथिवी की गति का उल्लेख 10.49.1 में मिलता है। सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी आदि लोकों को थामे रखता है और घुमाता है। ऋग्वेद में सूर्य के मार्ग की लम्बाई 5059 योजन बताई गई है। इसके रथ की गति एक दण्ड में 79 योजन होती है। सूर्य के रथ में सात घोड़े बताए गए हैं। सूर्य के सात रंगों के द्योतक ये सात घोड़े हैं।

ऋग्वेद में 5 ऋतुओं और 12 राशियों का वर्णन है। यहाँ सम्भवतः हेमन्त और शिशिर ऋतु को एक ही ऋतु माना गया है। 12 राशियाँ (12 महीने) 360 दिन और 360 रातों की होती हैं। ऋग्वेद के ऋषि सूर्य–ग्रहण से और सूर्य के दक्षिणायन तथा उत्तरायण होने से भी परिचित थे।

- **नौका और विमान**

ऋग्वेद के अध्ययन से विदित होता है कि आर्यों ने समुद्रों में चलने वाली बड़ी नौकाओं तथा सम्भवतः आकाशगामी विमानों का भी विकास किया था। ऋग्वेद में भुज्यु की ऐसी नौका का उल्लेख है जो सौ अरित्रों (चप्पुओं) से चलाई जाती थी (शतारित्रां नावम्)। ऋ० 2.226.5।।

ऋग्वैदिक आर्य सम्भवतः आकाशगामी विमानों से परिचित थे। अमेरिकन लेखिका वह्लीलर विल्लाक्स ने 'सब्लिमिटी ऑफ दी वेदाज' में लिखा है कि वैदिक ऋषि विद्युत्, रेडियो, इलेक्ट्रिसिटी, विमान आदि से परिचित थे। ऋषि दयानन्द का कहना है कि वेदों में विमान–विद्या का वर्णन है और उनके सहारे से विमान बनाए जा सकते हैं। वेदों के विद्वान् सत्यव्रत सामश्रमी लिखते हैं कि वेदों में सारे विज्ञान सूक्ष्म रूप से

विद्यमान हैं। भारद्वाज ऋषि प्रणीत 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ के वैमानिक प्रकरण की भूमिका में, जिसको स्वामी ब्रह्ममुनि ने सम्पादित और अनुवादित किया है। इस ग्रन्थ को वेदों के आधार पर लिखा गया था।

ऋग्वेद के आख्यानों में विमानों के प्रयोग का वर्णन आता है। तुग्रु नामक राजा ने अपने पुत्र भुज्यु को अन्तरिक्षगामी नौका में भेजा था। इसका संचालन अश्विनी ने किया था। ऋग्वेद के 1.34.2 में अश्विनी देवों के तीन चक्रों और तीन स्तम्भों वाले आकाशगामी रथ का वर्णन है। अश्विनी देवताओं के अश्वरहित आकाशगामी रथ का वर्णन अनेक मन्त्रों में आता है।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 6**

  प्र॰1. ऋग्वेद में आयुर्वेद के कौन–कौन से दोषों का उल्लेख है?

  प्र॰2. ऋग्वेद में कितनी ऋतुओं और राशियों का वर्णन है?

  प्र॰3 ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्त कौन–कौन से हैं?

  प्र॰4. ऋग्वेदिक काल में समाज कितने वर्गों में विभाजित था?

  प्र॰5. वैदिककाल की शासन व्यवस्था और राजनीति का विस्तृत वर्णन किस वेद में प्राप्त होता है?

  प्र॰6. राष्ट्रियता की भावना किस युग में विकसित हो चुकी थी।

1.9 सारांश

ऋग्वेद विश्व के धर्म एवं दर्शन की प्रथम एवं प्रचीनतम् पुस्तक है। ऋग्वेद के विभाग अष्टक क्रम एवं मण्डल क्रम में उपलब्ध होते हैं। अष्टक क्रम के अनुसार ऋग्वेद आठ अष्टकों में विभक्त है। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में वर्ग हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद आठ अष्टकों, चौंसठ अध्यायों एवं दो हजार छः वर्गों में विभक्त है। मण्डल क्रम के अनुसार ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में अनेक अनुवाक, अनुवाकों में अनेक सूक्त तथा सूक्तों में मन्त्र हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद मण्डल क्रम में 10 मण्डल, 85 अनुवाक 1028 सूक्त तथा $10580\frac{1}{4}$ मन्त्र हैं।

1.10 कठिन शब्दावली

देवम् –दान आरि दिव्य गुणों से सम्पन्न

ईडयः –स्तुति किया जाता है

वेद –धार्मिक ज्ञान (धार्मिक ग्रन्थ)

ऋषि –मन्त्रद्रष्टा

होता इव –होता के समान

1.11 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

- **स्वयं आकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. ऋग्वेद

  उ॰ 2. 4

- **स्वयं आकलन प्रश्न 2**

उ॰1.   2

उ॰2.   8, 64

- **स्वयं आकलन प्रश्न 3**

  उ॰1.   बालगंगाधर तिलक

  उ॰2.   1200ई.पू.

- **स्वयं आकलन प्रष्न 4**

  उ॰1.   मन्त्रद्रष्टा

  उ॰2.   वसिष्ठ

- **स्वयं आकलन प्रष्न 5**

  उ॰1.   आचार्य पिंगल

  उ॰2.   त्रिष्टुप

स्वयं आकलन प्रष्न 6

उ॰1.   वात, पित्त तथा कफ

उ॰2.   5 ऋतुओं और 12 राशियों

उ॰ 3.   हिरण्यगर्भ सूक्त, पुरुष सूक्त तथा नासदीय सूक्त

उ॰ 4.   ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र

उ॰ 5.   ऋग्वेद में

उ॰ 6.   वैदिक युग

1.12 अनुशंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)।
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

1.13 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ऋग्वेद का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. ऋग्वेद का रचनाक्रम, संगठन एवं शाखाओं का वर्णन करें।
3. ऋग्वेद में विद्यमान दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन करें।

इकाई – 2

ऋग्वैदिक–देवता

संरचना

- **2.1 प्रस्तावना**
- **2.2 उद्‌देश्य**
- **2.3 देवता परिचय**
  - **स्वयं आंकलन प्रष्न**
- **2.4 सारांश**
- **2.5 कठिन शब्दावली**
- **2.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर**
- **2.7अनुशंसित ग्रन्थ**
- **2.8 अभ्यास के लिए प्रश्न**

2.1 प्रस्तावना

अग्नि, अग्निमारुत, वरुण, सूर्य, विष्णु, इन्द्र, उषस्, सविता, पर्जन्य, वास्तोषपति, यम, हिरण्यगर्भ एवं वाक् देवता का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया जा रहा है।

2.2 उद्‌देश्य

1. ऋग्वेद में तीन प्रकार के देवता हैं– पृथ्वी स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय एवं द्युस्थानीय।
2. वेद के अनुसार विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों को देवता कहा गया है।
3. देवताओं का मुख्य उद्‌देश्य प्राणी जगत् का कल्याण करना है।

2.3 देवता परिचय

ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का एक अपना देवता है, जिसमें उस देवता की स्तुति की गई है। यास्क ने देवता का अर्थ किया है– ''देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा'' पदार्थों को देने वाले, प्रकाशित होने वाले अथवा प्रकाशित करने वाले को देवता कहा जाता है। ऋग्वेद में देवताओं की कुल संख्या 33 है। यास्क ने देवताओं को तीन प्रकार का बताया है– पृथिवी स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय और द्यु स्थानीय। अनेक विद्वान् विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों को देवता कहते हैं। कुछ आलोचकों ने अग्नि आदि देवतावाचक शब्दों का अर्थ परमेश्वर किया है तथा उसमें विभिन्न शक्तियों की कल्पना की है। वृहद्‌देवता और निरुक्त में एक ही महादेवता परमात्मा को माना गया है। ऋग्वेद के प्रमुख देवता निम्न हैं–

1. इन्द्र

इन्द्र ऋग्वेद का सबसे महान् देवता है। इन्द्र की स्तुति 1028 सूक्तों में की गई है। अपने गुणों के कारण इन्द्र आर्यों का जातीय और राष्ट्रीय देवता बन गया तथा वह सभी देवों का राजा हुआ। ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुसार इन्द्र के तीन विशेष गुण कहे गए हैं– महान् कार्यों के करने की शक्ति अतुल पराक्रम और असुरों को युद्ध में जीतना।

प्रारम्भ में इन्द्र की विद्युत का देवता माना गया था। यह वर्षा को रोकने वाले दैत्यों का संहार करता था और अन्धकार को दूर करता था। इन्द्र युद्ध का भी देवता है। यह आर्यों की रक्षा करता है और उनके निसर्गसिद्ध शत्रुओं का वध करता है। ऋग्वेद में इन्द्र के सोमपान का वर्णन बहुत है। सोमपान से उसके अन्दर प्रचुर शक्ति का अविर्भाव होता है, तब वह बहुत बड़े–बड़े कार्य कर सकता है। उसके अन्दर वज्र को घुमाने और बिजली को गिराने की शक्ति है।

इन्द्र का प्रमुख शस्त्र वज्र था। त्वष्टा ने इन्द्र के लिए वज्र बनाया था। ऋग्वेद के अनुसार इन्द्र पक्के मकानों में रहता था और हरे घोड़ों वाले सुनहरे रथ पर चढ़ता था। जिसको देवताओं के शिल्पी ऋभुजों ने बनाया था।

इन्द्र के सहायकों के नाम भी ऋग्वेद में आते हैं। द्यौ इन्द्र का पिता है, अग्नि और पूषा उसके भाई है और इन्द्राणी उसकी पत्नी है। मरुत् गण उसके सहायक हैं। शची नामक शक्ति का स्वामी होने के कारण इन्द्र को शचीपति, कर्मों की शक्ति रखने के कारण शतक्रतु एवं मरुतों की सहायता पाने के कारण मरुत्वान् कहा गया है।

इन्द्र का प्रमुख शत्रु वृत्र है। वह वर्षा को रोकने वाला है। इन्द्र सोमपान करके और मरुतों की सहायता पाकर वृत्र पर आक्रमण करता है। इस युद्ध में द्युलोक और पृथिवीलोक कांप उठते हैं, पहाड़ नष्ट हो जाते हैं तथा उनसे जल के झरने बहने लगते हैं। इन्द्र ने दैत्यों के पुरों को नष्ट करके पुरभित् उपाधि धारण की थी। यह मेघ रूपी पहाड़ों में निवास करने वाले दैत्यों को मार देता है और वहाँ से जल को इसी प्रकार से मुक्त करता है, जैसे कोई गायों को घेरे से मुक्त करता है।

इन्द्र बहुत पराक्रमी है। उसने हिलते हुए पहाड़ों को स्थिर करके रक्षा की और आकाश और पृथिवी को स्थिर किया तथा उनको फैलाया। इन्द्र अपने उपासकों की रक्षा करता है, सहायता करता है और उनको धन–धान्य से पूर्ण करता है। अतः वह मधवा कहलाता है। इन्द्र उषा के रथ को हिलाने वाला है। वह सूर्य को घोड़ों को रोक लेता है और सोम को जीत लेता है।

एक सूक्त के अनुसार एक बार पणियों ने गौओं को कैद कर लिया था। तब इन्द्र ने सरमा (देवशुनी) को दूत बना कर भेजा था। सुदास के साथ इन्द्र के युद्ध को वर्णन भी मिलता है। इन्द्र कार्य करने में अत्यधिक शक्तिशाली, दुर्धर्ष, अथक लड़ने वाला, मनुष्यों की भलाई करने वाला, दान देने में उदार और प्रचुर सोमपान करने वाला है। वह संसार के सबसे बड़े राजा, विश्व के नियन्ता और धर्म एवं चरित्र के

आदर्शों की स्थापना करने वाले वरुण की अपेक्षा भी महान् है। मनुष्य और देव उसकी शक्ति का पार नहीं पा सकते। देवों में वह सबसे अधिक प्रसिद्ध और महान् है। अत्यधिक शक्तिशाली होने के कारण उसको शक्र, शचीपति, शचीवान् शतक्रतु आदि नामों से भी पुकारा गया।

वैदिक गाथाओं में इन्द्र और वृत्र, प्रबल शत्रु बताए गए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार वृत्र एक असुर है जो वृष्टि का अवरोधक है। उसको मारने के लिए इन्द्र अपने वज्र को तीक्ष्ण करता है। इन्द्र का सम्बन्ध अन्य सभी देवताओं से किसी न किसी रूप में वेदों में कहा गया है। अन्य देवों में भी उसके कुछ गुण एवं रूप बताए गए हैं। देवताओं का रूप मूर्त और अमूर्त दोनों ही प्रकार का निर्दिष्ट है।

हिल ब्रान्ट नामक पाश्चात्य विद्वान् ने यह सिद्ध किया कि इन्द्र ही वृष्टि का देवता था। त्रित पर्जन्य और इन्द्र इन तीन का वर्षा के साथ सम्बन्ध है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (1.5.23) के अनुसार पहले त्रित ही जल का अवरोध करने वाले दैत्यों का संहार करता था परन्तु बाद में इस कार्य को इन्द्र ने अपने हाथ में ले लिया।

अनेक वैदिक ऋचाओं में इन्द्र की आकृति और गुण मनुष्यों से भी मिलते हैं। वह एक सुन्दर और सुदृढ़ आर्य का रूप है। उसकी उत्पत्ति माता के पार्श्व भाग से हुई थी और उसने अपनी माता को विधवा बना दिया था। इन्द्र को कन्याओं के गीत सुनने का भी बड़ा शौक था और वह अविवाहित कन्याओं की भलाई में रुचि लेता था। इन्द्र का वरुण के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब इन्द्र विजय करता हुआ आगे बढ़ता था तो वह विजित प्रदेशों में नियमों और व्यवस्था की स्थापना करता था। वरुण का यह नियम था कि इन्द्र जीतता चले तथा वह अधिकार, नियमों और व्यवस्था को बनाए। इन्द्र का बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध था।

ऋषि दयानन्द का कहना है कि इन्द्र की यह कल्पना धार्मिक जगत् की आलंकारिक कल्पना है। इन्द्र प्राण है और वरुण इन्द्रियाँ हैं। वह असुर रूपी आसुरी भावों को पराजित करता है। ऋग्वेद में स्वर्ण, रजत आदि कान्तिमान् पदार्थों को भी इन्द्र कहा गया है। इसलिए निरुक्तकार यास्क कहते हैं– ''या च का च बलकृतिः इन्द्रकर्मैव तत''। अर्थात् जो भी बल और दीप्ति के कार्य हैं वे सब इन्द्र के कार्य हैं।

इन्द्र आर्यों का सबसे महान् देवता है। इसलिए ऋग्वेद के लगभग चौथाई सूक्तों में इन्द्र की स्तुति है। इसकी प्रतिष्ठान आर्यों के जातीय और राष्ट्रीय देवता के रूप में हुई है। मैकडोनल के अनुसार आर्यों के भारत में आने से पूर्व ही इन्द्र को राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी।

2. अग्नि

प्रभाव और विस्तार की दृष्टि से अग्नि को ऋग्वेद में दूसरा स्थान प्राप्त है। 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गई है। वैदिक मन्त्रों में अग्नि की तीन प्रमुख विशेषताएं बताई गई हैं– (क) नेतृत्व शक्ति में सम्पन्न होना, (ख) यज्ञ की आहुतियों को ग्रहण करना और (ग) तेज एवं प्रकाश का अधिष्ठाता होना। अग्नि

को 'जातवेदाः' कहा गया है। अर्थात् वह ज्ञान आगार है और उपासना करने वालों का कल्याण करता है। अग्नि की उपासना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। भारत, फारस और ग्रीस में इसकी उपासना समान रूप से होती रही थी। मैक्डानल के अनुसार – अग्नि नाम भारोपीय है। यह संस्कृत में 'अग्' धातु और लैटिन में 'ag'धातु से निष्पन्न हुआ है। (संस्कृत–अग्नि, लैटिन ignis, स्लोवानिक–ogni)।

ऋग्वेद में मन्त्रों में अग्नि का विशेष सम्बन्ध यज्ञ की अग्नि से है, अतः इसको धृतपृष्ठ (घी की पीठ वाला), शोचिषकेश (ज्वालाओं के बालों वाला), रक्तश्मश्रु (लाल दाढ़ी वाला), तीक्ष्णदंष्ट्र (तेज दाँतों वाला) और रुक्ममदन्त (स्वर्णिम दाँतों वाला) कहा गया है।

अग्नि की जिह्वा द्वारा देवता हवियों का उपभोग करते हैं। दीप्यमान मूर्धा से ज्वालाओं से यह सब दिशाओं में विचरण करता है। यह देवताओं का मुख है। इसकी लपटें चम्मच हैं। इससे प्रार्थना की जाती है कि वह हव्य का भोजन करे। सोम रस का पान करने के लिए इसको बुलाया जाता है। इसका शरीर ज्योतिष्मान् है। यह पुरोहित है, यज्ञ का देव, ऋत्विक् है, नेता है, श्रेष्ठ रत्नों को धारण करने वाला है। यह सूर्य और बिजली के समान चमकता है। यह रात्रि में दीप्त होता है और अन्धकार को भगा देता है। इसका रास्ता काला है। जब यह जंगलों को जलाता है तो उन्हें उसी प्रकार साफ कर देता है जैसे नाई दाढ़ी को। इसकी लपटों की ध्वनि समुद्र की गर्जनाओं के समान हैं। इसका लाल रंग का धुंआ आकाश तक उठता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आकाश को थामने के लिए खम्बा हो। इसे धूमकेतु (धुंए की पताका वाला) भी कहा गया है। इसका रथ सोने के समान चमकता है और दो या अधिक लाल घोड़ों द्वारा खींचा जाता है।

अग्नि की उपमा अनेक पशुओं से दी गई है। यह महान् शब्द करते हुए बैल के समान है। इसके सींग भी हैं जिनको यह तेज करता है। उत्पन्न हुआ अग्नि बाल वत्स के समान है। यह देवताओं के वाहन के समान है जो यज्ञ को देवताओं तक ले जाता है। इसको आकाश में उड़ने वाले गरुड़ या श्येन के समान तथा जल में रहने वाले हंस के समान भी बताया गया है। लकड़ी या घी इसका भोजन है और पिघला मक्खन इसका पेय है। यह लकड़ी को इसी प्रकार आक्रान्त करता है जैसे कोई पक्षी विटंक पर बैठता है।

अग्नि देवताओं को रथ पर बैठा कर यज्ञ भूमि में लाता है। वह द्यौस् का पुत्र है। इसको जल का पुत्र भी कहा गया है। इन्द्र और अग्नि जुड़वां भाई हैं। अग्नि सूखी अरणियों से उत्पन्न होती है जो उसकी माता हैं। सूखी समिधाओं से उत्पन्न होने वाला अग्नि, उत्पन्न होते ही अपने माता–पिता का वध कर देता है। अग्नि को दस कन्याओं से उत्पन्न भी कहा गया है। ये दस कन्याएं मनुष्य की दस अंगुलियाँ हैं। इसको 'सहस् पुत्र' भी कहा गया है, क्योंकि अग्नि को उत्पन्न करने के लिए मनुष्य को जोर लगाना पड़ता है। प्रातःकाल के समय अग्नि का बालरूप होता है।

अग्नि जल का गर्भ रूप है और जल से उत्पन्न होता है। वह आकाश में भी उत्पन्न हुआ था और मातरिश्वा (वायु) के द्वारा पृथिवी पर आया। सूर्य भी अग्नि का ही एक रूप है। अग्नि के दो स्थान बताए

हैं– द्युलोक और पृथिवी लोक। वह मानवीय जीवन से अधिक सम्बन्ध रखता है, इसलिए इसको अतिथि और गृहपति भी कहा गया है। अग्नि के महत्त्व को बहुत अधिक बताया गया है और इसकी सार्वभौम शक्तियों की प्रशंसा की गई है।

जिस प्रकार ऋतु और युद्ध के कार्यों का अधिष्ठाता इन्द्र है, उसी प्रकार मानव के गृह–कृत्यों का अधिष्ठाता अग्नि है। यह तेज का रूप है और घर के कार्यों को निष्पन्न कराता है। अग्नि तेज को प्रदान करता है, इन्द्र जल को। अग्नि को अनेक नामों से पुकारा जाता है– यविष्ठय (सदा युवा रहने वाला), मेध्य (सदा पवित्र रहने वाला), कविशस्त (कवियों द्वारा प्रशंसित), दमुना (घर का परम मित्र) आदि। अग्नि का जन्म तीन स्थानों में कहा गया है– काष्ठों में, जल में और द्युलोक में। अग्नि को जल का पुत्र (अपांनपात्) कहा गया है। अवेस्ता में इसे ''अपांनेपो'' कहा गया है। प्रातःकाल उषा के आगमन के साथ–साथ अग्नि का जन्म होता है और यह भूमि से उसी प्रकार उठता है, जैसे वृक्षों से पक्षी। यह घी के द्वारा हव्य का भक्षण करता है, अतः घृतजिह्वा है। यह हव्यों को देवताओं तक पहुँचाता है, अतः हव्यवाहन है। सभी मनुष्य इसको चाहते हैं, अतः यह वैश्वानर है। सब इसकी स्तुति करते हैं, अतः यह नाराशंस है यह यज्ञ का साधन है और भूत–प्रेतों–राक्षसों को भगाने वाला है तथा जादू को दूर करता है।

अग्नि आर्यों का प्रमुख देव है और उसके बिना कोई धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं होता।

3. वरुण

इन्द्र और अग्नि के बाद देवताओं में वरुण का महत्त्व है यद्यपि वरुण की स्तुति 12 सूक्तों में ही की गई है। ऋग्वेद में वरुण का मुख्य रूप शासक का है। वह विश्व का राजा या सम्राट है जो प्रशासन करता है तथा नियमों का संचालन करता है। वरुण जनता के पाप–पुण्यों तथा सत्य–असत्य का हिसाब रखता है। उसके गुप्तचर विश्वभर में घूमते रहते हैं। वरुण के पाश की महिमा का वेदों में बहुत अधिक वर्णन है। वह पाश पापियों को बांध लेता है परन्तु जो पश्चात्ताप करते हैं, उनके प्रति वह दयालु हो जाता है। पाप–कर्म को देखते ही वह क्रुद्ध हो जाता है और नियम भंग करने वालों को कठोर दण्ड देता है परन्तु जो लोग भूल से गलती करते हैं या नियम भंग करने के बाद उसके प्रति आत्म समर्पण करते हैं उनको वह क्षमा कर देता है। वरुण सूक्तों में स्थान–स्थान पर पापों को क्षमा करने की प्रार्थना की गई है।

ऋग्वेद के वरुण सूक्तों में वरुण का उज्ज्वल रूप दिया गया है। उसके मुख, आँखों, भुजाओं और पैरों का वर्णन है। सूर्य उसके नेत्र हैं, जिनसे वह सबको देखता है। वह दूरदर्शी और हजारों आँखों वाला है। वह कुशा पर बैठता और सुनहरा चोगा पहनता है। उसका रथ सूर्य के समान दीप्तिमान् है तथा उसमें घोड़े जुते हुए हैं। अपने प्रासाद में बैठा हुआ वह प्रशासन और नियन्त्रण करता है तथा उसके गुप्तचर विश्व भर में फैले रहते हैं। वरुण का एक दूत सुनहरे पंखों का है, जो वस्तुतः सूर्य है।

वरुण ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। उसने स्वर्ग और पृथिवी लोक को अपनी शक्ति से धारण किया हुआ है। वह जनता से शारीरिक और चरित्रगत नियमों का पालन करवाता है। वरुण ने सूर्य की रचना की, अग्नि और जल का निर्माण किया तथा पर्वतों पर सोमवल्ली को उत्पन्न किया। वरुण रात्रि और दिन का अधिष्ठाता है और जलों का नियमन करता है। वायु उसके आदेश में रहकर ध्वनि करती है, चन्द्रमा उसी के आदेश से प्रकाशित होता है, तारे वरुण का आदेश मानते हैं, नदियां उसकी आज्ञा से बहती है, समुद्र उसके नियन्त्रण में रहकर वेला का उल्लंघन नहीं करता और मेघ उसके आदेश से बरस कर पृथ्वी को सींचते हैं। वह आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति को पहचानता है, समुद्र में चलने वाले जहाजों को जानता है और कोई भी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं है। वह अन्य सभी देवताओं से बढ़कर है। वह 'धृतव्रत' है, अर्थात् संसार को नियमों में चलाने का व्रत धारण किए हुए है।

वरुण के ठीक रूप को अभी तक निश्चित नहीं किया जा सकता है। यह भौतिक और नैतिक सभी नियमों का देवता है एवं चारों ओर फैले हुए आकाश से सम्बन्धित है। मैक्डोनल के अनुसार वरुण का रूप चारों ओर फैले हुए आकाश से आच्छादित सा है। पुराणों में वरुण को जल का देवता कहा गया है परन्तु ऋग्वेद में ऐसी कोई उक्ति नहीं हैं वरुण शब्द की निष्पत्ति 'वृ' धातु से होती है, जिसका अर्थ आच्छादित या आवृत करना है। मैक्डोनल एवं यास्क का यही मत है। अनेक विद्वान् वरुण का सम्बन्ध अवेस्ता के 'अहुरमज्द' से जोड़ते हैं। वरुण को वैदिक साहित्य में असुर भी कहा गया है, जिसका अर्थ है असु–प्राण को र– देने वाला। अर्थात् प्राणियों में प्राण शक्ति को संचारित करने वाला वरुण ही है। इस दृष्टि से यह अवेस्ता के अहुरमज्द का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

4. मरुत्

मरुत् अकेला देवता नहीं है, अपितु देवों के एक समूह का नाम मरुत् है। इसलिए इनका प्रयोग सदा बहुवचन में होता है। मरुतों की स्तुति 42 सूक्तों में है। ये 33 सूक्तों में स्वतन्त्र रूप में, 7 सूक्तों में इन्द्र के साथ और एक–एक सूक्त में अग्नि और पूषा के साथ वर्णन किए गए हैं। मरुत् देवता आंधियों के देवता हैं और वृष्टि कराते हैं। वे बड़े प्रभावशाली और शक्तिशाली है तथा इन्द्र के सहायक हैं। विपक्षियों से रक्षा करने के लिए और रोगों के निवारण के लिए ऋग्वेद में इनसे प्रार्थना की गई है।

सभी मरुद्गण समवयस्क हैं और एक साथ उदित होते हैं। ये रुद्र और पृश्नि के पुत्र कहे गए हैं। पृश्नि एक गौ का नाम है। एक स्थान पर मरुतों को वायु का पुत्र भी कहा गया है। मरुत् पृथिवी पर बढ़ते हैं और आकाश में पलते हैं। रोदसी इनके रथ पर विराजमान रहती है, जो कि सम्भवतः इनकी पत्नी है।

मरुतों की समृद्धि का वर्णन स्थान–स्थान पर मिलता है। ये स्वर्ण के समान स्वर्णिम और अग्नि के समान दीप्तिमान् हैं। इनकी तलवारें और भाले बिजलियों के समान चमकते हैं। इनके कुल्हाड़े और धनुष–बाण सुनहरे हैं। ये सुन्दर मालाएं, सुनहरी चोगे, भूषण और शिरस्त्राण पहनते हैं। केयूर और वलय

इनके आभूषण हैं। इनके रथ बिजलियों की तरह चमकते हैं, जिनमें मटियाली चितकबरी घोड़ियाँ जुती होती हैं।

मरुत् बड़े पराक्रमी देवता हैं। ये पहाड़ों को हिला देते हैं और द्युलोक एवं पृथिवी लोक इनके भय से कांपते हैं। ये सूर्य को ढक लेते हैं और वृक्षों को जंगली हाथियों के समान गिरा देते हैं। इन्द्र के ये विशेष सहायक हैं तथा वृत्र के वध के समय उसकी सहायता करते हैं। वे दैत्यों का स्वयं भी संहार करते हैं और वृत्र को मार कर गौओं का उद्धार करते हैं। ये गायक भी हैं। इन्द्र द्वारा दैत्यों का वध करने पर ये उसकी प्रशंसा के गीत गाते हैं तथा सोम रस निकालते हैं।

मरुतों को सामान्यतः आँधी एवं जलप्रलय का देवता कहा गया है परन्तु वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं और उनके रोगों का निवारण करते हैं। उनकी प्रधान ओषधि जल है।

5. विष्णु

ऋग्वेद के पहले मण्डल के 154 सूक्त में विष्णु की स्तुति की गई है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार 6 ऋचाओं में विष्णु की स्तुति है। ऋग्वेद में यद्यपि इनका उतना महत्त्वपूर्ण वर्णन नहीं है, तथापि आगे चलकर इन्होंने आर्य देवताओं में सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया।

विष्णु शब्द 'विष्' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है– व्यापनशील होना। व्यापनशील होने से ये सूर्य के वाचक हुए, जिसका अर्थ है– तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाला।

विष्णु के लिए त्रिविक्रम शब्द का प्रयोग भी हुआ है– इसका अर्थ है– तीनों लोकों में अपनी किरणों को फैलाने वाला। विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्माण्ड को नापने के महत्त्वपूर्ण कार्य का वर्णन ऋग्वेद में किया गया है। इसी के आधार पर बलि दैत्य को विष्णु द्वारा छलने की पौराणिक कथा कल्पित हुई होगी। इस कथा के अनुसार विष्णु ने वामन का रूप रख कर बलि दैत्य से तीन पग भूमि मांगी। उसने एक पग में पृथ्वी को और दूसरे पग में अन्तरिक्ष को नापकर तीसरा पग बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल में पहुँचा दिया। वस्तुतः त्रिविक्रम का अभिप्रायः है कि सूर्य रूप विष्णु पृथिवीलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में अपनी किरणों का प्रसार करते हैं तथा इनके प्रकाश से जरायुज, अण्डज और उद्भिज सभी प्रकार की सृष्टि अनुप्राणित होती है।

विष्णु को उरुक्रम और उरुगाय भी कहा गया है। उरुक्रम शब्द का अर्थ है– महान् शक्तिशाली एवं उरुगाय शब्द का अर्थ है– अनेक प्राणियों से स्तुति किया जाने वाला अथवा विशाल कीर्ति वाला या अनेक देशों में जाने वाला अथवा शत्रुओं को रूला देने वाला। उरुगाय शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 121 बार हुआ है।

विष्णु को संसार का रक्षक एवं अनन्त शक्तिसम्पन्न कहा गया है। पाशविक शक्ति की अपेक्षा उसकी बौद्धिक शक्ति अधिक प्रबल है। इसलिए वह सब देवताओं में सबसे अधिक चतुर है।

विष्णु को इन्द्र का छोटा भाई भी कहा गया है। विष्णु शब्द का अर्थ क्रियाशील भी है। यह सभी देवताओं में सबसे अधिक क्रियाशील है तथा उनकी सहायता करता है। वृत्र के वध के समय विष्णु ने इन्द्र का साथ दिया था तथा वहाँ उनका मरूतों से भी सम्पर्क हुआ।

विष्णु को परम पद का अधिष्ठाता कहा गया है। उनका परम पद उच्चलोक है जहाँ मधु का उत्सव है और बड़े सींगों वाली चंचल गायें रहती है। ये गायें सूर्य की किरणें भी हो सकती हैं। पुराणों के अनुसार विष्णुलोक को गोलोक कहा गया है। विष्णु के भक्त इस लोक को जाते हैं और उत्तम पदार्थों का भोग करते हैं। वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार विष्णु वह शक्ति है, जो इन्द्रियों और आत्मा को उनके कर्मों के अनुसार नियुक्त करती है। इस प्रकार विष्णु शरीर का अधिष्ठातृ देवता है।

6. सूर्य

ऋग्वेद के वर्णनों के अनुसार लोकों को प्रकाशित करने वाले सूर्य ही सूर्य देवता हैं। इसलिए सूर्य देवता की स्तुति में भौतिक सूर्य की विशेषताएं कही गई है। सूर्य का चमकदार घेरा उपासकों के लिए विशेष आकर्षण है। सूर्य को मित्रावरुण का नेत्र कहा गया है। यह नेत्र दूरद्रष्टा और सर्वद्रष्टा है। यह स्थावरों और जगमों को गति प्रदान करता है। सूर्य के रथ में एक या सात घोड़े जुते होते हैं। इसके एक घोड़े का नाम एतश् है और सात घोड़े हरित् कहलाते हैं। सूर्य का पिता द्यौ और माता अदिति है। कहीं–कहीं उषा को इसकी माता तथा कहीं पत्नी भी कहा गया है। सूर्य को देवताओं ने ऊपर उठाकर द्युलोक का अधिष्ठाता बना दिया था। सूर्य को आकाश में उड़ने वाला पक्षी या अनेक रंगों वाला अश्व भी कहा गया है। यह बादलों में छिपा हुआ मित्रावरुण का आयुध और इन्द्र का पवि (वज्र) है। यह अन्धकार को दूर करता है और उसको कैंचुली के समान परे फैंक देता है। सूर्य शब्द की उत्पत्ति स्वः से हुई है, जिसका अर्थ है– प्रकाश। अवेस्ता में सूर्य के तीव्रगामी अश्वों का वर्णन है तथा इसको अहुरमज्द का नेत्र भी कहा गया है।

7. सविता

सविता देवता का सूर्य देवता से बहुत अधिक साम्य है तथा कभी–कभी दोनों देवताओं को एक ही मान लिया गया है। तथापि इसका रूप सूर्य से पृथक् कहा गया है। सविता शब्द की निष्पत्ति 'सू' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– उत्पन्न करना, गति देना, प्रेरणा देना या प्राण देना। सविता के कार्य भी इन्हीं अर्थों के अनुरूप हैं।

सविता का स्वरूप आलोकमय तथा स्वर्णिम है। उसके नेत्र, हाथ और जीभ सभी स्वर्णिम हैं। उसका वाहन रथ सुवर्ण की आभा वाला है और रथ के धुरे सोने की तरह चमकीले हैं। उसके रथ पर सुनहरी यष्टियां हैं तथा यह मोतियों से सज्जित है। रथ को दो या अधिक लाल या सफेद घोड़े खींचते हैं। इस रथ पर बैठ कर यह सारे विश्व में घूमता है।

सविता दिन और रात का स्वामी है। वह सुवर्णमय भुजाओं सदृश किरणों से आकाश को व्याप्त करता हुआ आकाश में उदित होता है। प्रदोष और प्रत्यूष दोनों से इसका सम्बन्ध है। यह दुःस्वप्नों का नाशक है और दुर्भाग्य को दूर भगाता है। वह यजमानों की रक्षा करता है, मनुष्यों को पाप से रहित करता है, राक्षसों तथा यातुधानों को दूर भगाता है। वह नियमों का सम्यक् पालन कराता है। जल और वायु उसके आश्रित हैं। अन्य देवता उसके नेतृत्व को स्वीकार करते हैं तथा कोई भी उसकी इच्छा का उल्लंघन नहीं कर सकता। पवित्र गायत्री मन्त्र में सविता की महत्ता गाई गई है।

8. मित्र

ऋग्वेद के देवताओं में मित्र का वरुण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। केवल एक स्थान पर (ऋग्वेद के तीसरे मण्डल की 59वीं ऋचा) मित्र का स्वतन्त्र रूप में वर्णन है, अन्य सभी स्थानों पर इसकी स्तुति वरुण के साथ की गई है। उषा के आगे रहने वाला अग्नि मित्र का जन्मदाता है जो पूर्ण रूप से दीप्त होकर स्वयं मित्र संज्ञा को धारण कर लेता है।

मित्र के कार्य प्रायः सविता जैसे हैं। यह शब्दों द्वारा मनुष्यों को नियन्त्रित करता है, निर्निमेष आँखों से कृषकों को देखता है और उनको कृषि करने के लिए प्रेरणा देता है। किन्हीं–किन्हीं मन्त्रों में उसको प्रकाश का देवता भी कहा गया है। मित्र शब्द की रचना 'मिद्' धातु से होती है जिसका अर्थ है– सुहृद् होना। मित्र के स्वभाव और कार्य इसी के अनुरूप हैं। वह बहुत दयालु और शक्तिशाली है।

अथर्ववेद में और ब्राह्मण ग्रन्थों में मित्र और वरुण के भेद बताए गए हैं। मित्र का सम्बन्ध दिन के साथ है और वरुण का रात्रि के साथ।

9. उषस्

उषा के वर्णनों में ऋग्वेद के कवियों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा को अभिव्यंजित किया है। ऋग्वेद के 20 सूक्तों में उषा की स्तुति गाई गई है। वह सौन्दर्य की देवी है। उसके उदय होने पर आकाश का कोना–कोना जगमगा जाता है तथा विश्व हर्ष के अतिरेक से भर जाता है। उषा सूर्य की प्रेयसी है। वह एक नर्तकी के समान सजी हुई और चमकीले वस्त्र पहने हुए पूर्व दिशा में अपना आकर्षक रूप प्रकट करती है। सूर्य एक रसिक युवक के समान उसका अनुगमन करता है।

उषा प्रकाश में स्नान करती हुई रात्रि रूपी नायिका की काली पोशाक को उतार कर फैंक देती है। वह युवती है और प्रतिदिन उत्पन्न होती है। उषा को पुराणी युवतिः कहा गया है। अर्थात् अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी वह नई नवेली युवती के समान सुन्दर दिखाई देती है। विभिन्न रंगों में चमकती हुई उषा मरणशील मनुष्यों को उद्बोधित करती है। उसके निकलते ही आकाश का कोना–कोना जगमगा जाता है तथा स्वर्ण का द्वार खुल जाता है।

उषा की किरणें पशुओं के झुण्ड के समान निकलती है और दुःस्वप्नों को हानिकर भूत–प्रेतों को तथा दिशाओं को भगा देती है। उषा प्रत्येक प्राणी को अपने कार्य में प्रवृत्त कर देती है। चिड़िया आकाश में उड़ने लगती है और मनुष्य अपने कार्यों में लग जाता है। नियमों का पालन कराने में वह सदा तत्पर है। देवताओं के उपासकों को वह प्रातः काल जगा देती है, उनको भजन में प्रवृत्त करती है और देवताओं को सोमपान में लगाती है।

उषा का रथ चमकदार है और उसमें लाल रंग के घोड़े जुते हैं, जिनसे वह खींच जाता है। सूर्य की प्रातःकालीन किरणें ये घोड़े हैं। उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह सूर्य की प्रेयसी है तथा सूर्य एक रसिक युवक के समान उसके पीछे–पीछे जाता है। कहीं–कहीं सूर्य को उसका पुत्र भी बताया गया है। उस कान्तिमान् पुत्र को गोद में उठा कर वह उदित होती है।

कुछ स्थानों पर उषा को रात्रि की छोटी बहन भी कहा गया है तथा दोनों का साथ–साथ वर्णन है। आकाश में उत्पन्न होने के कारण उषा को स्वर्ग की पुत्री भी कहा गया है। उषा का अग्नि के साथ भी सम्बन्ध मिलता है। अग्नि उषा का प्रेमी है। उषा अग्नि को जलाती है, तब अग्नि उससे मिलने के लिए लपटों को ऊपर उठाता है। उषा का सम्बन्ध अश्विनी कुमारों से भी कहा गया है।

उषा अपने भक्तों को धन, पुत्र, यश आदि प्रदान करती है, अतः उसको ''मघोनी'' भी कहा गया है। उषा शब्द की निष्पत्ति ''वस्'' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है चमकना। उषा में ज्योतिष्मान् पदार्थ निवास करते हैं।

उषा वैदिक ऋषियों की प्रमुख देवी रही। अनेक प्रक्रियाओं उषा के बिना निष्पन्न नहीं हो सकती थीं। यज्ञों में उषा का विशेष स्थान है। पौराणिक गाथाओं में उसका विशेष स्थान रहा। उषा का आगमन जीवन में उत्साह और हर्ष की नवीन भावनाओं को भर देता था। उसका व्यक्तित्व किसी अन्य देवता से कम नहीं था। लौकिक कार्यों के साथ उसका विशेष सम्बन्ध रहा। अपनी शानदार चमक के लिए, नियमों का पालन कराने के लिए, निरन्तर उन्नति के लिए और भौतिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए उषा की उपासना की जाती रही। वह सदाचार सम्बन्धी त्रुटियों को पूरा करती है और ऋत का वितरण करती है। इसलिए इसको ऋतावरी भी कहा जाता है। उषा को वर्ष की स्त्री और ऋतुओं की स्वामिनी भी कहा गया है।

वैदिक काव्यों में उषा की विशेष महिमा गाई गई है। मघोनी, विश्ववाराः, प्रचेताः, सुभगाः, रेवती आदि उसके विशेषण है। वह प्रकाश–पुंज का उसी प्रकार आवर्तन करती है, जैसे कोई पहिए को लुढ़काता है।

शतपथ ब्राह्मण की एक कथा के अनुसार काले रंग के एक दैत्य ने उषा को गुफा में बन्द कर दिया। देवताओं के बहुत खोजने पर भी इसका पता न लगा। अन्त में सूर्य ने उषा का उद्धार किया। इसका अभिप्रायः है कि कालरात्रि रूपी राक्षस ने उषा को बन्द कर दिया और इन्द्र रूपी सूर्य ने उसको बन्धन मुक्त किया।

10. सोम

सोम ऋग्वेद का एक प्रमुख देवता है। इसकी स्तुति 120 सूक्तों में की गई है। ऋग्वेद का सारा नवम मण्डल सोम की स्तुति से भरा हुआ है। सूक्तों की संख्या के आधार पर अग्नि के बाद सोम का स्थान आता है। ऋग्वेद के वर्णनों के अनुसार सोम एक वनस्पति होती थी, जो मुंजवान् पर्वत पर होती थी। इसका रस अत्यधिक शक्तिप्रद एवं स्फूर्तिदायक था। विशिष्ट यज्ञों के अवसरों पर देवताओं को अर्चित करके इसका पान किया जाता था। इन्द्र को सोमरस के पान करने का बहुत शौक था। सोमरस को विशिष्ट विधियों द्वारा तैयार किया जाता है।

11. पूषन्

पूषा की स्तुति ऋग्वेद के आठ सूक्तों में की गई है। इनमें से पाँच सूक्त छठे मण्डल के हैं। पूषा का वर्णन सोम के साथ आता है। ''पूषन्'' शब्द का अर्थ है पोषण करने वाला। वह सूर्य की पोषण शक्ति का प्रतीक है। पूषा को चराचर का स्वामी तथा मार्गों का रक्षक बताया गया है।

ऋग्वेद में पूषा को मनुष्य–आकृति का विशेष परिचय नहीं मिलता परन्तु उसके पैर तथा दाहिने हाथ का वर्णन मिलता है। पूषन् के सुन्दर जुल्फों वाले केश हैं तथा दाढ़ी है। उसके पास सुनहरी तलवार है तथा हाथों में सोने की माला तथा अंकुश है। पूषा के रथ में घोड़ों के स्थान पर बकरे जोते जाते हैं। वह प्रत्येक प्राणी को प्रेम की दृष्टि से देखता है और दलिया या दही मिले सत्तू (करम्भक) का भोजन करता है। पूषन् स्वर्ग में निवास करता है। वह अपने रथ में बैठ कर भ्रमण करता है तथा सारे संसार को देखता है। पूषा को मार्गों का देवता भी कहा गया है। वह मार्गों के भय को दूर भगाता है।

सूर्य को देवताओं ने उषा या सूर्या का पति बनाया। उषा पूषा की बहन है। सुनहरी दिव्य रथ में बैठकर वह उषा का दूत बनकर सूर्य के पास जाता है। इस विवाह विधि का वर्णन 10वें मण्डल के 75वें सूक्त में किया गया है।

ऋग्वेद में पूषा को त्यागियों का पुत्र (विमुचीनपात्) कहा गया है। वह पशुओं का रक्षक है और उनको सुरक्षित घर पहुँचा देता है। आघृणि (प्रकाशवान्) उसका विशेषण है। पूषा अत्यधिक उदार है और प्रेतात्माओं को पितृलोक में ले जाता है। पूषा चराचर का स्वामी है।

12. वास्तोष्पति

वास्तोष्पति देवता की स्तुति का ऋग्वेद में केवल एक ही सूक्त है, परन्तु इसका उल्लेख सात बार आया है। वास्तोष्पति के गुण सोम के समान ही कहे गए हैं। ऋग्वेद के वास्तोष्पति सूक्त का प्रयोग गृह प्रवेश के समय किया जाता था। जब किसी नए घर में प्रवेश किया जावे तो वास्तोष्पति देवता की स्तुति करनी चाहिए और उसकी कृपा माननी चाहिए।

वास्तोष्पति देवता को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। यह निर्मित किए गए घर का अधिपति है और उसकी रक्षा करता है। इसको वृक्षों और पर्वतों का देवता भी माना गया है। गृह निर्माण के लिए गृहस्थ की साधनभूत जिन वस्तुओं का वर्णन किया गया है उनके उपयोग के लिए वास्तोष्पति देवता से अनुमति मांगी जाती है। ऋग्वेद में वास्तोष्पति देवता की स्तुति करते हुए यह मनाया गया है कि वह हमारे धन की तथा पशुओं को जुटावें तथा उनकी कमी न होने दे। वास्तोष्पति सूक्त में गृहजीवन के लिए उपयोगी जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनको गिनाया गया है तथा देवता से उनकी कामना की गई है।

ऋग्वेद के अनुसार गृह सम्पत्ति की सुरक्षा और उन्नति के लिए वास्तोष्पति देवता की उपासना करनी चाहिए।

13. वाक्

ऋग्वेद में वाक् की वाणी की देवी के रूप में स्तुति की गई है। इसमें वे सभी विशेषताएं हैं जो वाणी में होती हैं। वाक् को ब्रह्म से उत्पन्न हुई एक महान् शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार वाक् के पिता का नाम ऋम्भण ऋषि था।

वाक् ब्रह्म का ही एक रूप है। वह देवताओं की प्रेरक है और उनको कर्तव्य के पालन में सहायता देती है। वह अपने भक्तों को अपने तेज से ऋषि, ब्राह्मण और विद्वान् बना देती है। वाणी की महत्ता को प्राप्त करने के लिए और वाक्शक्ति का विकास करने के लिए वाक् सूक्त का पाठ करना चाहिए। इस सूक्त में वाणी के प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपों का वर्णन किया गया है।

14. यम

यम प्राणों का देवता है और वह मृतात्मा को मार्ग दिखाता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौदहवें से लेकर अठारहवें सूक्त तक मृत्यु तथा भावी जीवन से सम्बन्धित पारलौकिक मन्त्र हैं। इनमें पहले सूक्त में यम देवता हैं। इन सूक्तों के अतिरिक्त तीन अन्य सूक्तों में तथा एक यमी–यमी सूक्त में यम देवता को सम्बोधित किया गया है।

वैदिक मन्त्रों के अनुसार यम के पिता विवस्वान् हैं तथा त्वष्टा की पुत्री सरण्यू उसकी माता है। यम मृतात्माओं का देवता है। मनुष्यों के मरने के बाद वह जीवों की गति के मार्ग का निर्देशन करता है। यम का सम्बन्ध वरुण, बृहस्पति और अग्नि से भी है। अग्नि से उसका विशेष सम्बन्ध है क्योंकि वह मृत आत्माओं को यम तक पहुँचाता है। इस कारण अग्नि को यम का मित्र एवं पुरोहित कहा गया है। यम का पितरों, विशेष रूप से अंगिरस से सम्बन्ध है। यम प्रेतात्माओं पर शासन करता है।

यम जीवों के कर्मों का निर्णय करता है। वह पुण्य आत्माओं को प्रकाश वाले स्थानों पर भेजता है। यहाँ पितृगणों की सेवा पुत्रों द्वारा की जाती है। पितरों की कई श्रेणियाँ हैं। यथा– अंगिरा, विरूप, नवग्वा,

अथर्वा, भृगु, वसिष्ठ आदि। शरीर के पंचभूतों में मिल जाने पर जीवात्मा विभिन्न लोकों में भ्रमण करता रहता है।

एक वर्णन के अनुसार यम का निवास सुदूर अन्तरिक्ष में है। यहाँ अन्य देवता भी निवास करते हैं। यहाँ वह मधुर ध्वनियों से घिरा रहता है। यम के लिए सोम का अभिषव किया जाता है तथा घृत की आहुति दी जाती है। वह यज्ञ–स्थल पर स्वयं आकर अपने भाग को ग्रहण करता है। यम की प्रार्थना इसलिए की जाती है कि वह जीवन को बढ़ावे तथा देवताओं तक ले जावे।

यम ने सबसे पहले परलोक की खोज की थी। उसके द्वारा प्राचीन पितरों के स्थान तक पहुँचा जा सकता है। मृत्यु यम का मार्ग है। उल्लू और कबूतर यम के दूत हैं तथा दो चतुरक्ष, दीर्घघोण तथा सारमेय श्वान उसके सेवक हैं। वे मार्ग की रक्षा करते हैं और मृतक को यम के पास ले जाते हैं।

यम शब्द की रचना 'यम्' धातु से हाती है। जो सभी प्राणियों का नियन्त्रण करता है, वह यम है। यम से सम्बन्धित सूक्तों का पाठ दाह–संस्कार के समय किया जाता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि वैदिक युग से ही भारतीयों में शव के दाह की प्रथा रही है। अग्नि मृतक को लोकान्तर में पहुँचाता है। अग्नि से यह प्रार्थना की जाती है कि तू शव की रक्षा कर तथा इसके स्थान पर किसी अज को भस्म कर दे। दाह–संस्कार के समय अग्नि और सोम से प्रार्थना की जाती है कि वे इस शरीर को पशुओं, पक्षियों, चींटियों और सर्पों से बचावें।

दाह–संस्कार के समय मृतक की पत्नी शव के समीप लेट जाती है और हाथों में धनुष लिए हुए उठती है। इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में मृतक की पत्नी और उसके शस्त्रों को मृतक के साथ जला दिया जाता था।

मृतक की दो गति बताई गई है– पितृयान और देवयान। इनमें देवयान अधिक श्रेष्ठ है। यम दोनों मार्गों में मृतक की रक्षा करता है और उसको लोक–लोकान्तरों में पहुँचाता है। इसका अभिप्रायः है कि जीव अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न लोकों में जाता है।

यम शब्द का अर्थ युगल भी है। यम–यमी सूक्त में यम और यमी परस्पर वार्तालाप करते हैं। ये दोनों जुड़वां उत्पन्न हुए थे तथा सदा साथ रहते थे। कुछ विद्वान् यम–यमी को पति–पत्नि तथा कुछ भाई–बहन मानते हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि यम प्राण वायु का है। इसके निरोध को प्राणायाम कहते हैं। यह हठ योग का आधार है।

15. पर्जन्य

ऋग्वेद में पर्जन्य को साधारण देवता माना गया है। पर्जन्य की स्तुति के केवल तीन सूक्त है। पर्जन्य का अर्थ है– जल को बरसाने वाला मेघ। इस देवता का वर्णन इसी रूप में किया गया है। मेघ को जल भरने का एक बड़ा पात्र कहा गया है, जिसे दृति कहते हैं।

पर्जन्य औषधियों को उत्पन्न करने वाला देवता है। इसकी उपमा बृषभ से दी गई है, जिसकी सवारी जल से भरे हुए मेघ हैं। यह अंकुरों को उत्पन्न करता है और पृथिवी को विस्तृत बनाता है। पर्जन्य को दिव्य जलों का पिता कहा गया है। जल को बरसाते हुए वह बिजली के एवं सिंह–गर्जनाओं के साथ जलमय रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में विचरण करता है।

पर्जन्य को औषधियों, तृणों और अंकुरों का जन्मदाता कहा गया है। यह गौओं, घोड़ियों और अन्य मादा जातियों में गर्भाधान की सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। एक स्थान पर पर्जन्य को द्युलोक एवं पृथिवी लोक का पिता कहा गया है। दूसरे स्थान पर द्युलोक को इसका पिता तथा पृथिवी को पत्नी कहा गया है। पर्जन्य शब्द का अर्थ है– जन्य अर्थात् उत्पन्न होने वाले चर और अचर को पूर्ण करने वाला।

16. पुरुष

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में 6–7 सूक्त हैं। इनमें पुरुष सूक्त बहुत प्रसिद्ध है। इस सूक्त में सृष्टि के पदार्थों की रचना का वर्णन किया गया है। सृष्टि का मूल रूप से रचना करने वाला पुरुष है, जिसके सभी अंग सृष्टि के विभिन्न अंग बन जाते हैं। सृष्टि की रचना एक यज्ञ का रूप है, जिसमें पुरुष की बलि दी जाती है।

इस सूक्त में विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन किया गया है। भगवद्गीता के 11वें अध्याय में विराट् पुरुष पर इसी सूक्त का प्रभाव पड़ा है। सांख्य दर्शन में पुरुष बहुलता को भी सम्भवतः यहीं से लिया गया होगा। कुछ विद्वानों का मत है इस सूक्त की रचना कुछ अर्वाचीन है, क्योंकि इसमें एक परम पुरुष की उपासना की गई है और एकदेवतावाद का प्रतिपादन किया गया है।

यह विराट् पुरुष हज़ारों सिरों, आँखों और पैरों वाला है और उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रखा है। वह भूत और भव्य का स्वामी है। उस पुरुष से ही ब्रह्माण्ड, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण उत्पन्न हुए; वसन्त आदि ऋतुएं उत्पन्न हुई; ऋक्, यजुस् और साम उत्पन्न हुए। चारों वर्ण इस पुरुष के चार अंग हैं, सूर्य चक्षु है, वायु प्राण है, अग्नि मुख है और मन चन्द्रमा है। स्वर्ग या नरक की प्राप्ति इस पुरुष रूप यज्ञ द्वारा होती है। पुरुष सूक्त के अनुसार भौतिक जगत् वृक्ष, पशु, तृण, सूर्य, चन्द्र आदि की सृष्टि मनुष्य की सृष्टि से पहले हुई। इसने एक चरण से पृथिवी लोक की रचना की और तीन चरणों को ऊपर रखा। ऋषियों द्वारा इस पुरुष यज्ञ का विस्तार हुआ था। इस सूक्त का रहस्य यही है कि आत्मज्ञान के द्वारा जीवन को सफल बनाना चाहिए।

17. हिरण्यगर्भ

वेदों में पुरुष से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति प्रदर्शित की गई है। पुरुष से जो विराट् उत्पन्न होता है, वही हिरण्यगर्भ हैं हिरण्यगर्भ को प्रजापति भी कहा गया है पुराणों में इसी को ब्रह्मा कहा गया है।

हिरण्यगर्भ और प्रजापति कहीं तो पर्यायवाची है, कहीं हिरण्यगर्भ को प्रजा पति से और कहीं प्रजापति से हिरण्यगर्भ को श्रेष्ठ बताया गया है। वास्तव में दोनों एक ही है। हिरण्यगर्भ सूक्त में इन दोनों की स्तुति की गई है।

सृष्टि के आदि में सबसे पहले हिरण्यगर्भ की स्तुति हुई थी। वह उत्पन्न हुई सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी था। उसने इस पृथिवी और द्युलोक को धारण किया हुआ था और अपने तेज से अन्तरिक्ष में टिका हुआ था। देव लोक और पृथिवी लोक के प्राणी अपनी रक्षा के लिए उसी को पुकारते हैं। प्राण शक्ति को और बल को देने वाला वही है। हिरण्यगर्भ पर्वतों की ऊँचाई और समुद्रों की गहराई को जानता है। द्युलोक उसका सिर है तथा पृथिवी पैर है। हिरण्यगर्भ देवता कर्म फल का प्रदान करने वाला है। इसी हिरण्यगर्भ के आधार पर वेदान्त दर्शन के ''सर्वं खल्विदंब्रह्म'' सूक्त का विकास हुआ था।

हिरण्यगर्भ सूक्त में 10 मन्त्र हैं। 9 मन्त्रों की समाप्ति ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' से हुई है तथा दसवें मन्त्र ''प्रजापते न त्वदेतानि'' में इसका उत्तर दिया गया है।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

प्र॰ 1. ऋग्वेद में देवताओं की संख्या कितनी है?

प्र॰ 2इन्द्र का प्रमुख शस्त्र क्या है?

प्र॰ 3 अग्नि देवता का स्थान क्या है?

प्र॰ 4 ऋग्वेद में सभी लोकों को प्रकाशित करने वाला कौन सा देवता है?

प्र॰ 5 ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति कितने सूक्तों में है?

प्र॰6 ऋग्वेद में देवताओं की संख्या कितनी है?

2.4 सारांश

ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं का वर्णन सृष्टि के कल्याण के लिए किया गया है। इसमें अग्नि पृथ्वीस्थानीय देवता है। ऋग्वेद में 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गई है। ऋग्वेद के मन्त्रों में अग्नि का विशेष सम्बन्ध यज्ञ की अग्नि से है। अग्नि पृथिवी पर प्रमुख देवता के रूप में स्थापित है। इसके बिना कोई गृहस्थ एवं धार्मिक कृत्य नहीं होता है।

2.5 कठिन शब्दावली

देवता –दिव्य शक्ति सम्पन्न

दिवः –द्युलोक का

विश्वस्य –सम्पूर्ण जगत् के

ऋजीषम् –शत्रुओं को भगाने वाले

तमः –अन्धकार

आपः –जल

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आकलन प्रश्न 1**

उ॰ 1. 33	उ॰2. वज्र
उ॰ 3. पृथिवी	उ॰ 4. सूर्य देवता
उ॰ 5. 200 सूक्तों में	उ॰ 6. 33

2.7 अनुशंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

2.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. वैदिक देवताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. अग्नि, विष्णु एवं वरुण देवताओं का सार अपने शब्दों में लिखें।
3. ऋग्वैदिक दृष्टिकोण से सविता, उषा एवं वाक् देवताओं का वर्णन करें।

इकाई – 3

अग्निमारुत सूक्त (1.19) व वरुण सूक्त(1.25)

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अग्निमारुत सूक्त मन्त्र संख्या 1–9 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

3.4 वरुण सूक्त मन्त्र संख्या 10–21 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

3.5 सारांष

3.6 कठिन शब्दावली

3.7 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

3.8 अनुषंसित ग्रन्थ

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में अग्निमारुत एवं वरुण सूक्तों को लिया गया है। अग्निमारुत सूक्त के ऋषि मेघातिथि हैं, देवता अग्नि तथा मरुद्गण हैं, गायत्री छन्द है। अग्नि का परिचय ऋग्वेद में 200 सूक्तों में किया गया है। यहां मरुतों का परिचय भी दिया जा रहा है। मरुत् देवता वेद के महत्त्वपूर्ण देवों में से हैं। इनकी स्तुति ऋग्वेद के 33 सूक्तों में हुई है। अन्य देवों में से इन्द्र के साथ इनकी स्तुति अधिक हुई है और ये इन्द्र के प्रमुख सहायक माने जाते हैं। इनकी स्तुति अग्नि के साथ हुई है। ऋग्वेद के वरुण सूक्त (1.25) को लिया है। इसमें वरुण सूक्त के देवता वरुण, ऋषि शुनःशेप और छन्द गायत्री है। ऋग्वेद में वरुण इन्द्र की भाँति महानतम देवों में से एक हैं।

3.2 उद्देश्य

1 मरुत्गण द्युलोक के समान विस्तार वाले, सूर्य की भाँति आकाश तथा पृथिवी का अतिक्रमण करने वाले हैं।

2. मरुत्गण प्रचण्ड वात के समान गमन, भयंकर ध्वनि करने वाले हैं।

3. मरुतों का अग्नि के साथ सम्बन्ध होना वैद्युताग्नि से उनके सम्बन्ध को स्पष्ट करता है तथा उन्हें अग्नि की आभा वाली विद्युत माना गया है।

4. वरुण देवता का अन्य देवों की भाँति चराचर जगत् में उच्च स्थान है।
5. वरुण सब प्रकार के पापों से मुक्त करने वाले हैं। वे मृत्यु को भी दूर करके किसी को भी जीवनदान दे सकते हैं।
6. वरुण नैतिक तथा भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में नियमों के सर्वोच्च प्रतिपालक हैं।

3.3 अग्निमारुत सूक्त मन्त्र संख्या 1–9 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

अग्निमारुत सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 19)

ऋषि – मेघातिथि, देवता – अग्निमरुतौ, छन्द – गायत्री

संहिता–पाठ

1. **प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि।।**

अन्वय – अग्ने! त्यम् चारुम् अध्वरम् प्रति गोपीथाय प्रहूयसे। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – त्यम् –उस प्रसिद्ध, **चारुम्** –सब अंगों से पूर्ण सुन्दर, **अध्वरम्** –हिंसा से रहित यज्ञ, **गोपीथाय** –सोमपान करने के लिए, **प्रहूयसे** –बुलाए गए हो, **आगहि** –आइए।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! तुमको उस प्रसिद्ध सब अंगों से पूर्ण सुन्दर यज्ञ में सोमपान करने के लिए बार–बार बुलाया गया है। इसलिए हे अग्निदेव! आप मरुत् नायक देवताओं के साथ आइए।

व्याकरण

त्यम् –'त्यत्' सर्वनाम शब्द है और 'तत्' का पर्यायवाची है। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

चारुम् –चर् धातु से ''दृसनिजनिचरीत्यादि०'' (1–3) उणादि सूत्र से ञुण् प्रत्यय। चर्+उ = चारु।

गोपीथाय –गो+पा धातु से ''निशीथगोपीथावगथा०'' (2–9) सूत्र से थक् प्रत्यय = गोपीथ। चतुर्थी विभक्ति का एक वचन = गोपीथाय।

आगहि –आ+गम् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एक वचन (सि को हि आदेश, म् का लोप)।

संहिता–पाठ

2. **नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः। मरुद्भिरग्न आ गहि।।**

अन्वय – अग्ने! महः तव क्रतुम् न हि देवः न मर्त्यः परः। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – मर्त्यः –मनुष्य, **महः** –महान्, **तव** –तुम्हे, **क्रतुम्** –यज्ञ, कर्मविशेष, **नहि परः** –उत्कृष्ट नहीं है अर्थात् उल्लंघन नहीं कर सकता।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! महान् महिमाशाली तुम्हारे यज्ञ को या कर्मविशेष को न तो देवता ही और न मनुष्य ही उल्लंघन कर सकते हैं। आप मरुत् देवताओं के साथ आइए।

व्याकरण

देवः –दिव्+अच् = देव। इस शब्द के चित् होने से यहाँ 'पचाद्यजन्तश्चित्त्वात्' नियम से आन्तोदात्त हुआ।

महः –'महतः' अर्थ है। षष्ठी विभक्ति का एक वचन। वेद में 'त' का लोप होकर महः।

क्रतुः –कृञ् धातु से 'कृञः कतुः' (1–78) उणादि सूत्र से कतु प्रत्यय कृ+कतु=(अनु) = क्रतुः।

संहिता–पाठ

3. ये महो रजसो विदुर्विष्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये महः रजसः विदुः विष्वे देवासः अद्रुहः। मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – महः –महान्। **रजसः** –जल, जल बरसाने का ढंग, **देवासः** –प्रकाशमान्, **अद्रुहः** –द्रोह न करने वाले।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत् गण महान् जल के बरसाने के ढंग को जानते हैं वे सब प्रकाशमान् और द्रोह से रहित हैं। आप उन मरुतों के साथ आइए।

व्याकरण

विश्वे –'विश्' धातु से 'क्वन्' प्रत्यय = विश्व। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

अद्रुहः –'द्रुह्' धातु, 'क्विप्' प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति बहुवचन=द्रुहः। न+द्रुहः=अद्रुहः।

देवासः –देव शब्द, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। वेद में देवाः और देवासः दोनों रूप बनते हैं।

संहिता–पाठ

4. य उग्राः अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये उग्राः अर्कम् आनृचुः ओजसा अनाधृष्टासः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – उग्राः –उग्र, प्रचण्ड, **अर्कम्** –जल को, **आनृचुः** –उत्पन्न करते हैं, **अनाधृष्टास** –तिरस्कृत नहीं होते, **ओजसा** –बल से।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत् गण उग्र होकर जल को वर्षा के द्वारा उत्पन्न करते हैं और बल से किसी से तिरस्कृत नहीं होते, आप उन मरुतों के साथ आइए।

व्याकरण

उग्राः –उत् उपसर्ग पूर्वक 'गृ निगरणे' धातु से या 'गुरी उद्यमने' धातु से निपातनात् उग्र शब्द बनता है।

अर्कम् –अर्क्+क = अर्क (जल)।

आनृचुः –ऋच् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। यह वेद का रूप है। लोक में आनर्चुः रूप बनेगा।

अनाधृष्टासः –न+धृष्+क्त=अधृष्ट प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

संहिता–पाठ

5. ये शुभ्राः घोरवर्पस सुक्षत्रासो रिषादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये शुभ्राः घोरवर्पसः सुक्षत्रासः विषादसः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – शुभ्राः –शोभित होते हैं, **घोरवर्पसः** –भयानक रूप धारण करने वाले, **सुक्षत्रासः** –शोभन धन वाले, **रिषादसः** –हिंसकों के विनाशक हैं, आप उन मरुतों के साथ आइए।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत्गण शोभित होते हैं, भयानक रूप धारण करने वाले हैं, शोभन धन वाले हैं और हिंसकों के विनाशक हैं।

व्याकरण

शुभ्राः –शोभन्ते अर्थ में 'शुभ्' धातु से ''स्फायितांचि०'' सूत्र से उणादि रक् प्रत्यय।

घोरवर्पसः –घोरं वर्पः येषां ते– बहुव्रीहि समास। वृञ् वरणे धातु से 'वृञ्'+असुन् (अस्) (पुक् का आगम) = पर्वस्।

सुक्षत्रासः –शोभनं क्षत्रं येषां ते।

रिषादसः –रिशन्ति हिंसन्ति इति रिशाः। तानदन्तिती इति रिशादसः। यहाँ ''सर्वधातुभ्योऽसुन्'' सूत्र से 'असुन्' प्रत्यय।

संहिता–पाठ

6. ये नाकस्याधिरोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये नाकस्य अधि रोचने दिवि देवासः, मरुद्भि आगहि।

शब्दार्थ – नाकस्य –दुःख से रहित सूर्य लोक के, **अधि** –ऊपर, **रोचने** –प्रकाशमान्, **दिवि** –द्युलोक में, **देवासः** –दीप्तिमान्, **आसते** –स्थित रहते हैं।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत् गण दुःखरहित सूर्य लोक के ऊपर प्रकाशमान् द्युलोक में दीप्तिमान् होते हुए स्थित रहते हैं, आप उन मरुतों के साथ आइए।

व्याकरण

नाकस्य –कः सुखम्। न सुखं यस्मिन् तत् अकम्। न+अकम्=नाकम्। जहाँ दुःख नहीं होता उसे नाक कहते हैं। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

अधि –यह उपसर्ग नहीं है, अपितु, उपसर्ग प्रतिरूपक निपात है, जिसका अर्थ है– ऊपर।

रोचने –'रुच् दीप्तौ' धातु से ''आनुदात्तेतश्च हलादेः'' सूत्र से 'युच्' प्रत्यय। रुच्+युच् (अन) – रोचन।

संहिता–पाठ

7. य ईड्.खयन्ति पर्वतान् तिरःसमुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये पर्वतान् ईड्.खयन्ति अर्णवम् समुद्रम् तिरः, मरुद्भि आगहि।

शब्दार्थ – ईड्.खयन्ति –संचालित करते हैं, **पर्वतान्** –मेघों को, **तिरः** –तिरस्कृत करना, **समुद्रम्** –समुद्र, **अर्णवम्** –जल से भरा हुआ।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत् गण मेघों को संचालित करते हैं और प्रचुर जल से सम्पन्न समुद्र को तिरस्कृत करते हैं, अर्थात् उनमें लहरों को उठाते हैं, आप उन मरुतों के साथ आइए।

व्याकरण

ईड्.खयन्ति –णिजन्त 'ईखि' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

पर्वतान् –'पर्व' शब्द से पूरण अर्थ में उणादि 'तन्' प्रत्यय।

समुद्रम् –सम् पूर्वक 'उन्दी क्लेदने' धातु से ''स्फायितंचि०'' सूत्र से रक् प्रत्यय। सम्+उन्द्+रक् = समुद्र।

अर्णवम् –अर्णासि यस्य सन्ति अर्थ में अर्णस्+व=अर्णव। (स् का लोप)।

तिरस् –यह एक सम्बन्ध वाचक अव्यय है तथा इसका कर्म समुद्र है।

संहिता–पाठ

8. आ ये तन्वन्ति रष्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! ये रष्मिभिः आतन्वन्ति ओजसा समुद्रम् तिरः, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – तन्वन्ति –व्याप्त करते हैं, **रष्मिभिः** –सूर्य की किरणों से।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! जो मरुत् गण सूर्य की किरणों के साथ आकाश को व्याप्त कर लेते हैं और अपने बल से समुद्र को तिरस्कृत करते हैं, उन मरुतों के साथ आप आइए।

व्याकरण

तन्वन्ति –'तनु विस्तारे' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

आ तन्वन्ति –सामान्यतः लौकिक संस्कृत में उपसर्ग और क्रिया के बीच में अन्य किसी शब्द का व्यवधान नहीं होता, परन्तु वैदिक भाषा में इस प्रकार के व्यवधान देखे जाते हैं। 'व्यवहिताश्च' (1.4.81) यह पाणिनीय सूत्र इस नियम को दिखाता है।

संहिता–पाठ

9. अभि त्वां पूर्वऽपीतये सृजामि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि।।

अन्वय – अग्ने! पूर्वपीतये त्वा सोम्यम् मधु अभिसृजामि, मरुद्भिः आगहि।

शब्दार्थ – अभि –अभिमुख, **पूर्वपीतये** –सबसे पहले पान करने के लिए, भोजन से पहले पीने के लिए, **सृजामि** –प्रस्तुत कर रहा हूँ, **सोम्यम्** –सोम सम्बन्धी, **मधु** –मधुर रस।

अनुवाद –हे अग्निदेव! पूर्वकाल में पीने के लिए प्रवृत्त हुए अथवा सब देवताओं में सबसे पहले पान करने के लिए अथवा भोजन से पूर्व पीने के लिए तुम्हारे लिए मैं सोम सम्बन्धी मधुर रस को अर्थात् सोमरस को प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप मरुतों के साथ आइए।

व्याकरण

पूर्वपीतये –पूर्वा चासौ पीति पूर्वपीतिः तस्यै। पा+क्तिन्=पीति।

सोम्यम् –सोम शब्द से 'सोमस् अर्हति' अर्थ में 'अर्हति' सूत्र से यत् प्रत्यय होकर सोम+य=सोम्य।

मधु –'मनु अवबोधने' धातु ''फलिपाटिनमि०'' (उणादि सूत्र 1.19) सूत्र से 'उ' प्रत्यय होकर 'न' को 'ध' होकर मधु।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  प्र॰ 1. अग्निमारुत सूक्त का देवता कौन है?

  प्र॰2. अग्निमारुत सूक्त में ऋषि कौन है?

  प्र॰3. अग्निमारुत सूक्त में कौन सा छन्द है?

  प्र॰4. अग्निमारुत सूक्त ऋग्वेद के किस मण्डल से लिया गया है?

3.4 वरुण सूक्त मन्त्र संख्या 1–21 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

वरुण सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 25)

ऋषि – शुनःशेप, देवता – वरुण, छन्द–गायत्री

संहिता–पाठ

1. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविऽद्यवि।।

अन्वय – वरुण देव! यथा विशः ते व्रतम् यत् चित् हि द्यविद्यवि प्रमिनीमसि।

शब्दार्थ – यत् चित् –जो कुछ, **विशः** –प्रजानन, **व्रतम्** –नियम को, **द्यविद्यवि** –प्रतिदिन, **मिनीमसि** –प्रमाद से उल्लंघन करते हैं।

अनुवाद –हे वरुण देव! जिस प्रकार संसार में प्रजाजन कभी प्रमाद करते हैं, उसी प्रकार हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी प्रतिदिन प्रमाद से उल्लंघन करते हैं, हमारे द्वारा किए गए अपराधों का परिमार्जन करके उन नियमों को पूर्ण बनाइए।

व्याकरण

वरुण –'वृणोति सर्वाणि कार्याणि' अर्थ में वृ+उनन् = वरुण।

मिनीमसि –'मीञ् हिंसायाम्' धातु से लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन। मी+श्ना+मसि। ''मीनातेर्निगमे'' (7.3. 81) सूत्र से मी को ह्रस्व और 'ई हल्यघोः'' सूत्र से 'श्ना' के 'आ' को 'ई'। वैदिक भाषा में 'मसि' भी लगता है, जबकि लोक में केवल 'मस्' लगता है।

द्यविद्यवि –दिवस वाचक 'द्यो' शब्द का सप्तमी का एकवचन = द्यवि। वीप्सा में द्वित्व। दिनेदिने।

संहिता–पाठ

2. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे।।

अन्वय – जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः। हृणानस्य मन्यवे मा।।

शब्दार्थ – मा –मत, **वधाय** –वध के लिए, **हत्नवे** –नाश करने वाले, **जिहीळानस्य** –अनादर या अपमान करने वाले का, **रीरधः** –वध का विषय बनाओ, **हृणानस्य** –कुपित होते हुए का, **मन्यवे** –क्रोध का पात्र।

अनुवाद –हे वरुण देव! उपेक्षा, अनादर या अपमान करने वाले का विनाश करने वाले तुम्हारे द्वारा किए जाने वाले वध के लिए हम यजमानों को वध का विषय मत बनाइए और कुपित होते हुए आप हमें अपने क्रोध का विषय मत बनाइए।

व्याकरण

वधाय –हन्+अप्=वध। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन = वधाय।

हत्नवे –हन्+क्नु (धातु के न् को निपातन से त्) = हत्नु। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन = हत्नवे।

जिहीळानस्य –हेड़ृ अनादरे +कानच् (लिट् लकार में), द्वित्व आदि क्रियाएं होकर जिहीडान। षष्ठी विभक्ति का एकवचन। दो स्वरों के बीच में आने पर प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार 'ड्' को 'ड' हो जाता है। अतः 'जिहीळानस्य' को 'जिहीडानस्य' हुआ।

रीरधः –णिजन्त 'राध् संसिद्धौ' धातु से लुङ्. लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

हृणानस्य –'हृणीङ्. रोषणे लज्जायां च' धातु से 'शानच्' प्रत्यय = हृणान।

संहिता–पाठ

3. वि मृळीकाय ते मनो रथीरष्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि।।

अन्वय – वरुण! रथीः संदितम् अष्वम् न ते मनः मृळीकाय गीर्भिः वि सीमहि।

शब्दार्थ – मृळीकाय –सुख प्राप्त करने के लिए, **रथीः** –रथ का स्वामी, रथ को चलाने वाला, **संदितम्** –दूर जाने से थके हुए, **गीर्भिः** –स्तुतियों द्वारा, **विसीमहिः** –प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद –हे वरुण देव! जिस प्रकार रथ का स्वामी या रथ चलाने वाला दूर गमन से थके हुए घोड़े को घास आदि देकर प्रसन्न करता है, उसी प्रकार हम तुम्हारे मन को सुख प्राप्त करने के लिए स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करते हैं।

व्याकरण

रथीः –'रथ' शब्द से मतुप् अर्थ में वैदिक 'ई' प्रत्यय।

संदितम् –सम् उपसर्ग पूर्वक 'दो अवखण्डेन' धातु से 'क्त' प्रत्यय। ''द्यतिस्यतिमास्थां'' से इ आदेश। (पा. 7.4.40)

विसीमहि –वि उपसर्ग पूर्वक 'षिञ् बन्धने' अथवा 'षिवु सन्ताने' धातु से लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

संहिता–पाठ

4. परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप।।

अन्वय – मे विमन्यवः वस्यः इष्टये हि परापतन्ति। वयः न वसतीः उप।

शब्दार्थ – मे –मेरी, **विमन्यवः** –क्रोध से रहित बुद्धियाँ, **परा पतन्ति** –फैलती है, **वस्यः** –धन से युक्त जीवन की, **इष्टये** –प्राप्ति के लिए, **वयः** –पक्षी, **वसतिः** –निवासस्थान, **उप** –ओर, समीप।

अनुवाद –हे वरुण देव! मेरी क्रोधरहित बुद्धियां अत्यधिक धन से युक्त जीवन की प्राप्ति के लिए निश्चय से परांगमुख होकर उसी प्रकार प्रसरण करती हैं या फैलती है, अर्थात् जब वरुण के प्रति भक्ति का उदय होता है तो जीवन में सुखमय सम्पत्तियां रहती हैं, पक्षी जिस प्रकार सायंकाल होने पर अपने निवास स्थानों की ओर दौड़ते हैं।

व्याकरण

विमन्यवः –विगतः मन्युः याभ्यः ताः।

वस्यः –'वसुमत्' शब्द से 'ईयसुन्' प्रत्यय। मतुप् का, वसु के उ का और ईयसुन् के ई का लोप होकर वस्य।

इष्टये –इष्+क्तिन्=इष्टि। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

वसतीः –वस्+अति=वसति। द्वितीया का बहुवचन=वसतीः।

संहिता–पाठ

5. कदा क्षत्र श्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्।।

अन्वय – क्षत्रश्रियम् उरुचक्षसम् नरम् वरुणम् मृळीकाय कदा आ करामहे।

शब्दार्थ – कदा –कब, **क्षत्रश्रियम्** –शासकीय शक्ति से शोभायमान, **नरम्** –सबका नेतृत्व करने वाला, **आ करामहे** –बुलावेंगे, **उरुचक्षसम्** –सबको देखने वाले, त्रिकालदर्शी।

अनुवाद –हे वरुण देव! शासकीय शक्ति से शोभयमान होने वाले, संसार में सबको देखने वाले या त्रिकालदर्शी और सबका नेतृत्व करने वाले वरुण देवता को हम सुख को प्राप्त करने के लिए कब बुलावेंगे अर्थात् उनके आगमन से कब हमारे कर्मों की पूर्णता होगी और हमें सुख मिलेगा।

व्याकरण

क्षत्रश्रियम् –क्षत्राणि श्रयति अथवा क्षत्रेण श्रीः यस्य तम्।

नरम् –'नृ नये' धातु से ''ॠदोरप्'' सूत्र से 'अप्' प्रत्यय।

करामहे –'कृ' धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन। यहाँ व्यत्यय से 'उ' के स्थान पर 'शप्' हुआ है।

मृळीकाय –'मृळ सुखने' धातु से 'ईकळ' प्रत्यय।

उरुचक्षसम् –उरु चक्षः यस्य तम् अथवा उरु चष्टे तम्।

संहिता–पाठ

6. तदित्समानमाषाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे।।

अन्वय – वेनन्तौ समानम् तत् इत् आशाते। धृतव्रताय दाशुषे न प्रयुच्छतः।

शब्दार्थ – तत् इत् –उस ही को, **समानम्** –समान रूप से, **आशते** –प्राप्त करते हैं, **वेनन्तौ** –शुभ कामना करते हुए, **प्र युच्छतः** –प्रमाद नहीं करते हैं, **धृतव्रताय** –व्रत को धारण करने वाले, अनुष्ठान का पालने करने वाले, **दाशुषे** –हवि प्रदान करने वाले।

अनुवाद –शुभ कामना करते हुए मित्र और वरुण समान रूप से एक सी ही उस ही हवि को प्राप्त करते हैं। व्रत को धारण करने वाले अथवा अनुष्ठान का पालन करने वाले और हवि प्रदान करने वाले यजमान के कल्याण के प्रति कभी प्रमाद नहीं करते।

व्याकरण

आशाते –'अशू व्याप्तौ' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, द्विवचन।

वेनन्ता –'वेन्' धातु से 'शतृ' प्रत्यय करके प्रथमा विभक्ति, द्विवचन=वेनन्तौ। वेद में द्विवचन के 'औ' को 'आ' हो जाता है। जैसे– द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया।

दाशुषे –दाशृ दाने धातु से 'क्वसु' प्रत्यय=दाश्वस्। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

7. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः।।

अन्वय – यः अन्तरिक्षेण पतताम् वीनाम् पदम् वेद। समुद्रियः नावः वेद।।

शब्दार्थ – वेद –जानता है, **वीनाम्** –पक्षियों के, **अन्तरिक्षेण** –आकाश मार्ग से, **पतताम्** –उड़ने वाले, **नावः** –नौका के, **समुद्रियः** –समुद्र में अधिष्ठित वरुण देवता।

अनुवाद –जो वरुण देवता आकाश मार्ग से उड़ने वाले पक्षियों के स्थान को या मार्ग को जानते हैं और समुद्र में अधिष्ठित जो वरुण देवता समुद्र मार्ग से जाने वाली नाव के मार्ग को जानता है। वह हमें बन्धन से छुड़ावे।

संहिता–पाठ

8. वेद मासो धृतव्रतो द्वादष प्रजावतः। वेदा य उपजायते।।

अन्वय – धृतव्रतः प्रजावतः द्वादष मासः वेद। यः उपजायते वेद।।

शब्दार्थ – मासः –महीनों को, **धृतव्रतः** –कर्मविशेष को स्वीकार करने वाला, अधिकृत कर्तव्य का पालन करने वाला, **द्वादष** –बारह, **प्रजावतः** –उत्पन्न होने वाली प्रजा से युक्त, **उपाजायते** –उत्पन्न हो जाता है।

अनुवाद –कर्म विशेष को स्वीकार करने वाला अर्थात् अपने अधिकृत कर्त्तव्य का पालन करने वाला वह वरुण देवता उत्पन्न होने वाली प्रजा से युक्त अथवा दिनों समेत चैत्र से लेकर फाल्गुन तक बारहों महीनों को जानता है और जो तेरहवां मास (तीसरे या चौथे वर्ष बढ़ने वाला मल मास) उत्पन्न हो जाता है, उसको भी वह जानता है।

व्याकरण

प्रजावतः –प्र+जन्+ड+टाप्=प्रजा। प्रजा+मतुप्=प्रजावत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

9. वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते।।

अन्वय – उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिम् वेद। ये अधि आसते वेद।।

शब्दार्थ – वातस्य –वायु के, **वर्तनिम्** –मार्ग को, **उरोः** –विस्तीर्ण, व्यापक, **ऋष्वस्य** –दर्शनीय, **बृहतः** –गुणों से महान्, **अध्यासते** –अधिष्ठित हैं।

अनुवाद –वे वरुण देवता विस्तीर्ण या व्यापक, दर्शनीय और गुणों से महान् वायु के मार्ग को जानते हैं और जो देवता ऊँचे अर्थात् अन्तरिक्ष लोक में अधिष्ठित हैं, इनको भी वे जानते हैं।

व्याकरण

वातस्य –'वा गतिगन्धनयाः' धातु से ''असिहसि०'' इत्यादि उणादि सूत्र से तन् प्रत्यय।

वर्तनिम् –वर्तते प्रवर्तते अनेन अर्थ में 'वृत्' धातु से 'अनि' प्रत्यय।

ऋष्वस्य –'ऋषी गतौ' धातु से मतुप् अर्थ में 'क्वन्' प्रत्यय।

संहिता–पाठ

10. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्याउस्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।।

अन्वय – धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः साम्राज्याय पस्त्यासु आनिषसाद।

शब्दार्थ – निषसाद –अधिष्ठित हुए हैं, **पस्त्यासु** –दिव्य प्रजाओं में, **सुक्रतुः** –श्रेष्ठ कर्मों को करने वाला।

अनुवाद –अपने स्वीकृत नियमों का पालन करने वाले और श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले वरुण देवता प्रजा के साम्राज्य की सिद्धि के लिए दिव्य प्रजाओं में आकर अधिष्ठित हुए हैं।

व्याकरण

निषसाद –नि+सद् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

परत्यासु –निघण्टु के अनुसार 'पस्त्य' शब्द निपातनान् सिद्ध होता है। इसका प्रयोग वेद में ही है।

सुक्रतुः –शोभनः क्रतुः यस्य स। कृ+अतु (औणादिक)=क्रतु।

संहिता–पाठ

11. अतो विष्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा।।

अन्वय – अतः चिकित्वान् विश्वानि अद्भुता अभिपष्यति। सा कृतानि च कर्त्वा।।

शब्दार्थ – विष्वानि –सब, **अद्भुता** –आश्चर्यों को, **चिकित्वान्** –ज्ञानी मनुष्य, **कृतानि** –पहले किए गए, **कर्त्वा** –आगे किए जाने वाले।

अनुवाद –इससे अर्थात् इस वरुण की कृपा से ज्ञानी मनुष्य सब आश्चर्यों को अर्थात् संसार के सभी अद्भुत् पदार्थों को देखता है। जो आश्चर्य पहले किए गए हैं और जो आगे करने योग्य हैं, इन सभी को वह देखता है।

व्याकरण

चिकित्वान् –'कित् ज्ञाने' धातु से क्वसु प्रत्यय = चिकित्वस्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

कर्त्वा –'कृ' धातु से ''तवैकेन्केन्यत्वनः'' (3.4.14) सूत्र से 'त्वन्' प्रत्यय।

चिकित्वाँ अभिपष्यति –वैदिक सन्धि के अनुसार 'न्' को अनुस्वर ँ हुआ।

संहिता–पाठ

12. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्।।

अन्वय – सुकतुः सः आदित्यः नः विष्वाहा सुपथा करत्। नः आयूंषि प्रतारिषत्।

शब्दार्थ – विष्वाहा –सब दिनों में, **आदित्य** –अदिति का पुत्र, **सुपथा** –उत्तम मार्ग से, **करत्** –ले जाए, **आयूंषि** –आयुओं को, **प्रतारिषत्** –बढ़ावे।

अनुवाद –शोभन कर्मों वाले या संकल्प वाले वे अदिति के पुत्र वरुण देवता हमें दिनों में उत्तम मार्ग से ले जावें और हमारी आयुओं को बढ़ावें।

व्याकरण

सुपथा –शोभनश्चासौ पन्या सुपन्थाः तेन सुपथा।

करत् –'कृ' धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। यह वैदिक रूप है। लोक में करोतु रूप होता है।

विश्वाहा –विश्व+अहन्। यह वैदिक अव्यय है। इसके अन्य रूप 'विश्वहा' और 'विश्वह' भी मिलते हैं।

तारिषत् –तृ+णिच् धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

13. बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पषो नि षेदिरे।।

अन्वय – हिरण्यम् द्रापिम् बिभ्रत् वरुणः निर्णिजम् वस्त। स्पषः परिनिषेदिरे।

शब्दार्थ – बिभ्रत् –धारण करता हुआ, **द्रापिम्** –कवच को, **हिरण्ययम्** –सोने का बना हुआ, **वस्त** –ढक लेता है, **निर्णिजम्** –अपने पुष्ट शरीर को, **स्पशः** –चमकदार किरणें, **परि** –चारों ओर, **निषेदिरे** –व्याप्त हो रही है।

अनुवाद –सुवर्ण के बने हुए कवच को धारण करता हुआ वरुण अपने पुष्ट शरीर को ढक लेता है। उसकी चमकदार किरणें चारों ओर व्याप्त हो रही हैं।

व्याकरण

बिभ्रत् –भृ+शतृ=बिभ्रत्।

द्रापिम् –द्रा+णिच् (पुक् का आगम) – द्रापि। द्रापयति ईषत् कुत्सितां गतिं अथवा प्रापयति विफलीकरोति इषुप्रहारान् इति द्रापिः।

हिरण्ययम् –हिरण्यस्य विकारः अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय। 'मयट्' के 'म' का लोप होकर हिरण्यय।

वस्त –'वस् आच्छादने' धातु से लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

संहिता–पाठ

14. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः।।

अन्वय – दिप्सवः यम् देवम् न दिप्सन्ति, जनानाम् द्रुह्वाणः न, अभिमातयः न।

शब्दार्थ – दिप्सन्ति –हिंसा करते हैं, **दिप्सव** –हिंसा करने की इच्छा रखने वाले। **द्रुह्वाण** – द्रोही व्यक्ति, **जनानाम्** –सामान्य मनुष्यों के, **अभिमातय** –पापी लोग।

अनुवाद –हिंसा करने की इच्छा रखने वाले भी जिस वरुण देवता के प्रति हिंसा करने का भाव छोड़ देते हैं, सामान्य मनुष्यों के द्रोहि व्यक्ति भी जिसके प्रतिद्रोह नहीं कर पाते और पापी लोग भी जिसे हानि नहीं पहुँचाते।

व्याकरण

दिप्सन्ति –सन्नन्त 'दम्भ' धातु (दिप्स), लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

दिप्सवः –सन्नन्त 'दम्भ' धातु से 'उ' प्रत्यय=दिप्सु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

द्रुह्वाण –द्रुह्+क्वनिप्=द्रुह्वन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

अभिमातयः –अभि+मन् धातु से निपातनात्=अभिमाति। प्रथम विभक्ति का बहुवचन, अथवा 'मीञ् हिंसायाम्' धातु से 'अभिमन्यते' या 'अभिभूय मिनाति हिनस्ति' अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय करके 'अभिमाति' रूप बनता है।

संहिता–पाठ

15. उत यो मानुषेष्वा यषष्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा।।

अन्वय – उत यः मानुषेषु यश आचक्रे, असामि आ, अस्माकम् उदरेषु आ।

शब्दार्थ – मानुषेषु –मनुष्यों में, **यशः** –अन्न, **आचक्रे** –उत्पन्न किया है, **असामि** –सम्पूर्ण रूप में।

अनुवाद –जिस वरुण देवता ने मनुष्यों में अन्न को उत्पन्न किया और उस अन्न को सम्पूर्ण रूप में उत्पन्न किया तथा जिस वरुण ने हमारे उदरों में उस अन्न को सब प्रकार से किया अर्थात् अन्न को पचाने की शक्ति दी।

व्याकरण

मानुषेषु –'मनोरपत्यम्' अर्थ में मनु+अञ् (षुक् का आगम) =मानुष।

संहिता–पाठ

16. परा मे यन्तिधीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्।।

अन्वय – उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः परायन्ति, गव्यूतीः अनु गावः न।

शब्दार्थ – परायन्ति –जा रही है, **धीतयः** –बुद्धियाँ, भावनाएं, **गावः** –गौयें, **गव्यूतीः अनु** –गोष्ठों को लक्ष्य करके, **इच्छन्तीः** –कामना करती हुई, **उरुचक्षसम्** –बहुतों द्वारा दर्शन के योग्य, व्यापक दृष्टि वाले।

अनुवाद –बहुतों के द्वारा दर्शन के योग्य अथवा व्यापक दृष्टि वाले वरुण के दर्शन की कामना करती हुई मुझ शुनःशेप की बुद्धियां या भावनायें उसके प्रति जा रही हैं, जिस प्रकार गोष्ठों को लक्ष्य करके सायंकाल के समय वहाँ जाने वाली गौयें उनकी ओर दौड़ती जाती हैं।

व्याकरण

धीतयः –ध्या+क्तिन्। 'य्' को वैदिक सम्प्रसारण होकर 'इ', 'आ' का पूर्वरूप और पुनः 'इ' को दीर्घ=धीति। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

गव्यूतीः –'गो+यू' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय। 'गोर्यूतौ छन्दसि' सूत्र से 'ओ' को 'अव' आदेश होकर गव्यूति। प्रथमा विभक्ति एकवचन।

उरुचक्षसम् –उरुभिः चक्षणं यस्य तम्।

संहिता–पाठ

17. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्।।

अन्वय – यतः मे मधु आभृतम्, पुनः नु सम्वोचावहै। होता इव प्रियम् क्षदसे।

शब्दार्थ – सं वोचामहै –प्रेम से आलाप करें, **नु** –निश्चय से, **यतः** –क्योंकि, **मधु** –मधुर होवे, **आभृतम्** –सम्पादित की गई है, **होता इव** –होता के समान, **क्षदसे** –भक्षण करते हो।

अनुवाद –क्योंकि इस अंजःसव नामक यज्ञ में मेरी मधुर हवि आपके लिए सम्पादित की गई है, इसलिए पुनः निश्चय से हम दोनों प्रेम से आलाप करें। आप होता के समान उस प्रिय हवि का भक्षण करते हो।

व्याकरण

आभृतम् –आ+भृ+क्त।

वोचावहै –ब्रू धातु (वच् आदेश), लुङ् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन।

क्षदसे –'क्षद् भक्षणे' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

18. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः।।

अन्वय – विष्वदर्षतम् नु दर्शम्, अधिक्षमि रथम् दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत।।

शब्दार्थ – दर्शम् –देख लिया है, **विष्वदर्षतम्** –सम्पूर्ण विश्व के द्वारा देख सकने योग्य, **रथम्** –रथ को, **अधिक्षमि** –भूमि पर, **जुषत** –ग्रहण कर लिया है, **गिरः** –स्तुतियों को।

अनुवाद –सम्पूर्ण विश्व के द्वारा देख सकने योग्य उस वरुण को निश्चय से मैंने देख लिया है। भूमि पर उस वरुण के रथ को मैंने देख लिया है। उस वरुण देवता ने इन मेरी स्तुतियों को ग्रहण कर लिया है।

व्याकरण

दर्शम् –'दृश् धातु' लुङ्. लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। अङ्. का वैदिक लोप।

विष्वदर्षतम् –विश्व+दृश्+अतच्, विश्वस्य दर्शनीयम्।

संहिता–पाठ

19. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके।।

अन्वय – वरुण। मे इमम् हवम् श्रुधि, अद्य च मृळय। अवस्युः त्वाम् आचके।

शब्दार्थ – श्रुधि –सुनिये, **हवम्** –आह्वान को, **अद्य** –आज, **मृळय** –सुखी कीजिये, **अवस्युः** –संरक्षण का अभिलाषी, **आचके** –पुकार रहा हूँ।

अनुवाद –हे वरुण देवता! मेरे इस आह्वान को सुनिए और आज मुझको सुखी कीजिए। संरक्षण का अभिलाषी होकर मैं तुमको पुकार रहा हूँ।

व्याकरण

श्रुधि –श्रु धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

हवम् –ह्वे+अप् (व् सम्प्रसारण, सन्धि और अव् आदेश)।

मृळय –मृळ धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

अवस्युः –अवस्+क्यच्+उ (अवस्=चाहना)।

चके –'कै शब्दे' धातु, लिट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

20. त्वं विष्वस्य मेधिर दिवष्च ग्मष्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि।।

अन्वय – मेधिर! त्वम् दिवः च ग्मः विष्वस्य राजसि। सः यामनि प्रतिश्रुधि।

शब्दार्थ – विष्वस्य –सम्पूर्ण जगत् के, **मेधिर** –मेधावी, **दिवः** –द्युलोक का, **ग्मः** –पृथिवी लोक का, **राजसि** –प्रकाशित होते हो, **यामनि** –मार्ग में, जीवन यात्रा के मार्ग में, **प्रतिश्रुधि** –प्रत्युत्तर दो।

अनुवाद –हे मेधावी वरुण! तुम द्युलोक के और पृथिवी लोक के और इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् के मध्य में प्रकाशित होते हो। ऐसे हे वरुण देवता! तुम मार्ग में अर्थात् जीवन–यात्रा के मार्ग में मुझे प्रत्युत्तर दो, तुम मेरी रक्षा करोगे, यह प्रत्युत्तर दो।

व्याकरण

मेधिर –मेधा अस्य अस्ति अर्थ में मेधा+इरच्।

ग्मः –'गम्' धातु से पृथ्वी के अर्थ में निपातन से वैदिक 'ग्मा' बनता है। षष्ठी विभक्ति के एकवचन का वैदिक रूप ग्मः।

यामनि –या गतौ धातु से मनिन् प्रत्यय। सप्तमी एकवचन।

संहिता–पाठ

21. उदुत्तमं मुमुग्धि नो विपाषंमध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे।।

अन्वय – नः उत्तमम् पाशम् उन्मुमुग्धि, मध्यमम् विचृत, जीवसे अधमानि अव।

शब्दार्थ – **उत्तमम्** –ऊर्ध्ववर्ती, **उत् मुमुग्धि** –ऊपर को खींच कर छुड़ा दो, **पाषम्** –पाश को, **मध्यमम्** –कमर के, **विचृत** –अलग खींच कर नष्ट कर दो, **अधमानि** –नीचे के, **जीवसे** –जीने के लिए।

अनुवाद –हे वरुण देवता तुम हमारे इन ऊर्ध्ववर्ती अर्थात् सिर के पाशों को ऊपर को खीच कर छुड़ा दो, इन बीच के अर्थात् कमर के पाशों को अलग खींच कर नष्ट कर दो और हमारे जीवन के लिए इन नीचे के अर्थात् पैरों में लगे हुए पाशों को भी खींच कर नष्ट कर दो।

व्याकरण

उत्तमम् – उत्+तमप्।

मुमुग्धि –'मुच्लृ मोचने' धातु से लोट् लकार, मध्यम पुरुष का एकवचन। 'बहुलं छन्दसि' नियम से तुदादि गण का 'श' न होकर जुहोत्यादि गण का 'श्लु' विकरण हुआ।

चृत –'चृती हिंसा ग्रन्थनयोः' धातु से लोट् लेकार, मध्यम पुरुष का एकवचन।

जिवसे –जीव+असे ('तुमुन्' के अर्थ में वैदिक असे प्रत्यय)।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

    प्र॰1. ऋग्वेदीय वरुण सूक्त के ऋषि कौन हैं?

    प्र॰2. वरुण सूक्त ऋग्वेद का कौन सा मण्डल और सूक्त है?

    प्र॰3. धृतव्रत किसे कहा गया है?

    प्र॰4. वरुण किसका प्रतीक है?

3.5 सारांष

मरुतों को समान विचार वाले तथा समान आवास वाले समवयस्क भ्राता वर्णित किया गया है। ये अति द्युतिमान सूर्यतुल्य त्वचा से युक्त तथा अग्नि–जिह्वाओं की कान्ति वाले हैं। इन्हें अप्रतिम द्युति के कारण 'स्वभानु' कहा गया है। ताण्ड्य महाब्राह्मण (14.12.9) में मरुतों को रश्मियाँ माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (6.30) में इन्हें सृष्टि जल स्वीकार किया गया है 'आपो वै मरुतः।' अरविन्द घोष के अनुसार मरुत् वे जीवनी शक्तियाँ और प्रज्ञाशक्तियाँ हैं जो हमारी सभी क्रियाओं के लिए सत्य का अन्वेषण करती हैं। ये हमारी सत्ता की स्नायविक या जीवनी शक्तियाँ हैं जो बुद्धि में चेतन अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होती हैं।

वरुण समस्त देवों तथा मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् की सभी वस्तुओं के स्वामी हैं। अनेक बार अकेले और अधिकांशतः मित्र के साथ उन्हें 'सम्राज्' कहा गया है। सार्वभौम सत्ता का गुण प्रमुखतया वरुण से सम्बद्ध है। ये मित्र के साथ पृथ्वी, आकाश अथवा द्यु लोक तथा वायु को धारण करते हैं। ये समस्त जगत् के अभिभावक हैं। इन्होंने ही जल में अग्नि की, आकाश में सूर्य की और पर्वतों पर सोम की स्थापना की। इन्होंने सूर्य के लिए एक विस्तृत पथ का निर्माण किया। स्वयं सूर्य देवता को भी मित्र, वरुण तथा अग्नि का नेत्र कहा गया है। यह नेत्र दूरद्रष्टा और सर्वद्रष्टा है।

3.6 कठिन शब्दावली

अध्वरम् –हिंसा से रहित यज्ञ,
महः –महान्,
अद्रुहः – द्रोह न करने वाले,
सुक्षत्रासः –शोभन धन वाले,
रिषादसः –हिंसको के विनाशक,
रश्मिभिः –सूर्य की किरणों से,
द्यविद्यवि – प्रतिदिन,
नावः –नौका के,
धृतव्रताय –व्रत को धारण करने वाले,
सुपथा –उत्तम मार्ग से,
स्पशः –चमकदार किरणें,
उदगात् –उदय हुआ,
अनीकम् –समूह,
द्योः –आकाश के,
अदितिः –अखण्डनीय शक्ति वाली देव माता।

3.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. अग्निमारुत

  उ॰2. मेधातिथि

  उ॰3. गायत्री

  उ॰4. प्रथम मण्डल

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  उ॰1. शुनःशेपः

  उ॰2. मण्डल 1, सूक्त 25,

  उ॰3. वरुण

  उ॰4. एक वैदिक देवता जो जल के अधिपति है

3.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)

3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अग्निमारुत देवता का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. ये शुभ्राः घोरवर्पस सुक्षत्रासो रिषादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।
3. अभि त्वां पर्वपीतये सृजमि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।
4. वरुण एवं सूर्य सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।

इकाई – 4
सूर्य सूक्त (1.115)

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सूर्य सूक्त सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

4.4 सारांष

4.5 कठिन शब्दावली

4.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

4.7अनुषंसित ग्रन्थ

4.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में प्रस्तुत सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 115 वाँ सूक्त है। इसकी स्तुति ऋग्वेद के 10 सूक्तों में की गयी है। इसके देवता सूर्य हैं, ऋषि कुत्स हैं और त्रिष्टुप छन्द है। द्यौ को सूर्य का पिता तथा अदिति को माता बताया है। इनकी माता के नाम पर ही इन्हें आदित्य एवं आदितेय कहा गया है। पुरुष सूक्त के अनुसार इसकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के नेत्रों से बतलायी गयी है– चक्षोः सूर्यो अजायत (ऋग्वेद, 10.90.13)। अतः सूर्य का सम्बन्ध चक्षु से है। इसे संसार का चक्षु कहा गया है– सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः। सूर्य देव समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं, अपनी किरणों रूपी पाश के द्वारा अंधकार रूपी शत्रु को पकड़ते हैं तथा मनुष्य के लिये प्रकाशित होकर जनजीवन का कल्याण करते हैं।

4.2 उद्देश्य

1. सूर्य चेतन तथा अचेतन सभी के आत्मा हैं क्योंकि वे ताप व प्रकाश के द्वारा सबकी रक्षा करते हैं।
2. सूर्य द्यु लोक पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक को प्रकाशित करके समस्त सृष्टि का कल्याण करते हैं।
3. सूर्य के उदय होने पर स्थावर एवं जंगम की संसार में वृद्धि होती है।
4. सूर्य देवता उदय होने पर संसार के समस्त पापों का नाश करके समस्त सृष्टि को जीवनदान देते हैं।

4.3सूर्य सूक्त सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

सूर्य सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 115)

ऋषि–कुत्स, देवता–सूर्य, छन्द–त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषष्च।।

अन्वय – देवानाम् अनीकम् चित्रम् मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः सूर्यः उदगात्। द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् आ अप्राः। जगतः तस्थुषः च आत्मा।

शब्दार्थ – देवानाम् –किरणों का, देवताओं का, **चित्रम्** –आश्चर्यजनक, **उदगात्** –उदय हुआ है, **अनीकम्** –समूह, **चक्षु** –प्रकाशक, **आ अप्राः** –भर दिया है, **जगतः** –गतिशील संसार का, **तस्थुषः** –स्थावर संसार का।

अनुवाद –किरणों का या देवताओं का समूह रूप, आश्चर्यजनक और मित्र, वरुण एवं अग्नि का अर्थात् सम्पूर्ण संसार का चक्षु अर्थात् प्रकाशक वह सूर्य देवता उदय हुआ है। उदय होने के बाद उसने द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक को सब ओर से प्रकाश से भर दिया है। वह सूर्य जंगम अर्थात् गतिशील और तस्थुषः अर्थात् स्थावर संसार की आत्मा है। सूर्य के उदय होने पर स्थावर और जंगम संसार में वृद्धि होती है।

व्याकरण

उदगात् –उत्+इण् धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अनीकम् –अन्+ईकक्।

चशुः –चक्षु+उस्।

अप्राः –'प्रा पूरणे' धातु, लड्. लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। प्रथम पुरुष के स्थान पर वैदिक मध्यम पुरुष।

द्यावापृथिवी –द्यौः च पृथिवी च इस द्वन्द्व समास में 'द्यौ' को 'द्यावा' आदेश।

सूर्यः –सरति सारयति वा अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय।

जगत् –गम्+क्विप् (गम् को द्वित्य)।

तस्थुषः –स्था+क्वसु (द्वित्व और सम्प्रसारण)।

संहिता–पाठ

2. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां, मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।

यत्रा नरा देवयन्तो युगानि, वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।।

अन्वय – सूर्यः रोचमानाम् देवीम् उषसम् पश्चात् अभ्येति मर्यः योषाम् न यत्र देवयन्तः नरः प्रतिभद्राय भद्रम् युगानि वितन्वते।

शब्दार्थ – देवीम् –प्रकाशमान होती हुई, **उषसम् –**उषा देवी के, **रोचमानाम् –**दीप्तिमती, **मर्यः –**युवक मनुष्य, **योषाम्** –सुन्दर युवती के, **अभ्येति** –आता है, **देवयन्तः** –सूर्य देव की उपासना करते हुए, सूर्य को अपना बनाने के इच्छुक, **युगानि** –कर्मों को, हल के जुओं को, **वितन्वते** –सम्पन्न करते हैं, जोतते हैं, **भद्राय प्रति –**कल्याणकारी फल को प्राप्त करने के लिए।

अनुवाद –सूर्य प्रकाशमान होती हुई दीप्तिमती उषा देवी के पीछे–पीछे उसी प्रकार आता है, जिस प्रकार कोई युवक मनुष्य किसी सुन्दर युवती के पीछे–पीछे आता है। जिस उषा देवी के उदय होने पर सूर्य देव की उपासना करते हुए अथवा सूर्य को अपना बनाने के इच्छुक भक्त मनुष्य प्रत्येक उषा काल में उत्तम कल्याणकारी फल को प्राप्त करने के लिए कल्याणकारी कर्मो को सम्पन्न करते हैं। अथवा कल्याणकारी फलों को प्राप्त करने के लिए कल्याणकारी हलों के जुओं को जोतते हैं।

व्याकरण

रोचमानाम् –रुच्+शानच्+टाप् (शप् और मुक् का आगम)।

मर्यः –'मृड़. प्राणत्यागे' धातु से 'छन्दसि निष्टर्क्य', आदि सूत्र से निपातनात् यत् प्रत्यय।

युगानि –'युजिर् योगे' धातु से घञ् प्रत्यय। छान्दस गुणाभाव।

देवयन्तः –देवम् आत्मनः इच्छन्तः अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय। वैदिक विशेषता के कारण 'अ' को 'ई' नहीं हुआ।

संहिता–पाठ

3. भद्रा अष्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः।।

अन्वय – भद्राः चित्राः एतग्वाः अनुमाद्यासः हरितः सूर्यस्य अष्वाः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। सद्यः द्यावापृथिवी परियन्ति।

शब्दार्थ – भद्राः –कल्याण करने वाले, **अष्वाः** –घोड़े, **हरितः** –हरे रंग के, हरित् नाम वाले, **चित्राः** –विचित्र, रंग–बिरंगे, अद्भुत अंगों वाले, **एतग्वाः –**तीव्र गति वाले, आकाश में गति करने वाले, **अनुमाद्यासः –**स्तुति करने योग्य, **नमस्यन्तः** –नमस्कार के किए जाते हुए, झुककर चलते हुए, **दिवः** –आकाश के, **आ अस्थुः** –अधिष्ठित हो चुके हैं, **परियन्ति** –परिक्रमा करते हैं।

अनुवाद –कल्याण करने वाले, विचित्र या रंग–बिरंगे अद्भुत अवयवों वाले, तीव्र गति वाले या आकाश में गति करने वाले, एक–एक करके स्तुति या प्रशंसा करने के योग्य हरे रंग के या हरित् इस नाम वाले सूर्य के घोड़े हमारे द्वारा नमस्कार किए जाते हुए या झुक कर चलते हुए आकाश के पृष्ठ पर अधिष्ठित हो चुके

हैं। अथवा इस प्रकार की व्याप्त करने वाले सूर्य की किरणें आकाश को अधिष्ठित कर चुकी हैं। वे घोड़े शीघ्र ही, एक दिन में ही द्युलोक और पृथिवी लोक के चारों ओर परिक्रमा कर लेते हैं।

व्याकरण

अश्वाः –'अश् व्याप्तौ' धातु से 'क्वन्' प्रत्यय।

एतग्वाः –'इण् गतौ' धातु से 'तन्' प्रत्यय होकर एत। 'गम्' धातु से औणादिक 'ड्व' प्रत्यय=ग्व। एतम् एतव्यं प्रति ग्वो गमनं येषां ते एतग्वाः।

अनुमाद्यासः –अनु उपसर्ग पूर्वक मद स्तुतौ धातु से प्रेरणा अर्थ में णिच्। यत् प्रत्यय होकर अनुमाद्य। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। अनुमाद्यासः। अनुमादयितु योग्याः अनुमाद्यासः।

अस्थुः –'स्था' धातु लुङ्. लकार प्रथम पुरुष बहुवचन। लट् के स्थान पर लुङ्. का प्रयोग हुआ है।

संहिता–पाठ

4. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं, मध्या कर्तोविततं सं जभार।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै।।

अन्वय – सूर्यस्य तत् देवत्वम् तत् महित्वम् कर्तोः मध्या विततम् सम् जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते।

शब्दार्थ – देवत्वम् –देवत्व, स्वामित्व, **महित्वम्** –महिमा, **मध्या** –बीच में, **कर्तोः** –कार्य करने वाले का, **विततम्** –फैले हुए, **संजभार** –समेट लेते हैं, **यदा** –जिस समय, **इत्** –निश्चय ही, **अयुक्त** –खोलते हैं, **सधस्थात्** –साथ बैठने वाले रथ से, अधिष्ठित स्थान से, **आत्** –इसके अनन्तर, **वासः** –आच्छादित करने वाले अन्धकार को, **तनुते** –विस्तृत कर देता है, **सिमस्मैः** –सम्पूर्ण विश्व के लिए।

अनुवाद –सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य देवता का देवत्व अर्थात् स्वामित्व है और उस प्रकार की महिमा है कि वे कार्य करने वाले मनुष्यों की क्रियाओं के बीच में ही, अर्थात् उनके कार्यों के समाप्त होने से पहले ही अपने फैले हुए किरणों के जाल को समेट लेते हैं। जिस समय निश्चय ही सूर्य अपने हरे रंग के या हरित् नाम के घोड़ों के साथ बैठने वाले रथ से या अधिष्ठित स्थान से खोलते हैं तो इसके अनन्तर ही रात्रि समपूर्ण विश्व को आच्छादित करने वाले अन्धकार को विस्तृत कर देती है।

व्याकरण

महित्वम् –मह्+इन् = महि। महि+त्व=महित्व।

मध्या –सप्तमी विभक्ति का एकवचन वैदिक रूप। लोक में 'मध्ये' बनता है।

कर्तोः –कृ+तुन्=कर्तु। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

जभार –'हृ' धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' सूत्र से 'ह' को 'भ' आदेश।

अयुक्त –'युजिर्' 'धातु' लुङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन=युक्त (वैदिक रूप) न+युक्त=अयुक्त।

सधस्थात् –सह+स्था से ''घञर्थे कविधानम्'' से क प्रत्यय। ''सधमाधस्थयोश्छन्दसि'' से 'सह' को 'सध' आदेश।

सिमस्मै –सिम शब्द, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। 'सर्व' का पर्यायवाची है।

रात्री –'रात्रि' शब्द से ''रात्रेश्चाजसौ'' से ङीप्।

संहिता–पाठ

5. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरूपस्थे।

अनन्तमन्यद्रुषदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति।।

अन्वय – तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्योः उपस्थे रूपम् कृणुते। अस्य हरितः अन्यत् अनन्तम् रुशत् पाजः सम् भरन्ति, अन्यत् कृष्णम्।

शब्दार्थ – अभिचक्षे –देखने के लिए, **द्योः** –आकाश के, **उपस्थे** –शिखर पर, मध्य में, **अनन्तम्** –अपार, **रुशत्** –चमकदार, **पाजः** –बल को, तेज को, **कृष्णम्** –काले अन्धकार को, **संभरन्ति** –निष्पन्न करती हैं।

अनुवाद –उस समय मित्र और वरुण के अर्थात् उनसे उपलक्षित समग्र विश्व के देखने के लिए, वास्तविक स्वरूप ज्ञान के लिए सूर्य आकाश के शिखर पर, मध्य में अपने तेजोमय रूप प्रकाश को प्रकट करता है। इस सूर्य के हरे रंग के घोड़े या किरणें कभी तो विलक्षण व्यापक अपार चमकदार बल को अर्थात् तेज को निष्पादित करती हैं और कभी तेज से भिन्न काले अन्धकार को निष्पन्न करती है। दिन और रात्रि के चक्र को सूर्य ही प्रवर्तित करता है।

व्याकरण

अभिचक्षे –अभि+चक्ष्+क्विप्। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

द्योः –'द्यो' शब्द की षष्ठी विभक्ति का एकवचन (वैदिक रूप)।

उपस्थ –उप+स्था+क=उपस्थ।

पाजः –'पा रक्षणे' धातु से पा+असुन् (''पातेर्बलेजुट्'' जुट् का आगम)। पाति रक्षति स्वं स्वीयान् वा इति पाजः।

रुशत् –'रुश् दीप्तौ' धातु से शतृ प्रत्यय।

संहिता–पाठ

6. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य, निरंहस पिपृता निरवद्यात्।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।

अन्वय – देवाः! अद्य सूर्यस्य उदिता अंहसः निप्पिपृत अवद्यात् निः। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्।

शब्दार्थ – देवाः –प्रदीप्त होती हुई सूर्य की रश्मियों, **उदिता** –उदय होने पर, **अंहसः** –पाप से, **निःपिपृत** –छुड़ाओ, **अवद्यात्** –निन्द्य कर्म से, **मित्रः** –हिंसा से रक्षा करने वाला सूर्य, **वरुणः** –आवरण शक्ति से युक्त वरुण देव, **ममहन्ताम्** –अनुमोदन करे, **अदितिः** –अखण्डनीय शक्ति वाली देवमाता।

अनुवाद –प्रदीप्त होती हुई हे सूर्य की रश्मियों! आज सूर्य के उदय होने पर तुम हमें पाप से छुड़ाओं और निन्द्य कर्मों से हमें बचाओ और हमारी उस प्रार्थना का मित्र (हिंसा से रक्षा करने वाले सूर्य), वरुण (आवरण शक्ति से युक्त वरुण देव), अदिति (अखण्डनीय शक्ति वाली देवमाता), सिन्धु (स्यन्दनशील जलाभिमानी देवी), पृथिवी (भूलोक की अधिष्ठात्री धारण शील शक्ति) और द्यौ (द्युलोक की अधिष्ठात्री दीप्तियुक्त शक्ति), अनुमोदन करें।

व्याकरण

अद्या –यहाँ 'निपातस्य च' (6.3.126) सूत्र से दीर्घ हुआ।

उदिता –उत्+इण्+क्त=उदित। सप्तमी विभक्ति का एकवचन। वैदिक रूप उदिता।

अंहसः –अम्+हुक्+असुन्=अंहस्। पंचमी विभक्ति का एकवचन।

पिपृता –'पृ पालन पूरणयोः, धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन। ''ऋचितुनु धातु'' सूत्र (6.3.133) से दीर्घ हुआ।

मामहन्ताम् –'मह्' धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

    प्र॰1. सूर्य के लिये किस उपाधि का प्रयोग किया गया है।

    प्र॰2. सूर्य की किरणों को क्या कहा जाता है?

    प्र॰3. सूर्य को चराचर जगत् की क्या कहा गया है?

    प्र॰4. पुरुष सूक्त के अनुसार सूर्य की उत्पत्ति किससे बताई गयी है?

    प्र॰5. सूर्य को वरुण एवं मित्र का क्या कहा गया है?

    प्र॰6. सूर्य का दूसरा नाम क्या है?

    प्र॰7. सूर्य की पत्नी किसे कहा गया है?

    प्र॰8. संसार का गुप्तचर किसे कहा गया है?

4.4 सारांष

सूर्य देवता को उषा की गोद से उत्पन्न हुआ कहा जाता है क्योंकि उषा काल के बाद ही सूर्योदय होता है। उषा को सूर्य की पत्नी भी कहा गया है। मित्र, वरुण तथा अग्नि का नेत्र भी सूर्य को ही बतलाया है– चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। इसे दूरदर्श, सर्वदर्शी व विश्वचक्षु कहा गया है। संसार का गुप्तचर कहा गया है क्योंकि ये सभी प्राणियों के कुकर्मों और सत्कर्मों का अवलोकन करते हैं– ऋजु मर्तेषु वृजिना च

पश्यन्नभिचष्टे सूरो आर्य एवान्। ऋग्वेद, 6.51.2। सूर्य के रथ में 'एतश' नामक एक या असंख्य अश्व या फिर सात अश्व जुते होते हैं जो इसके रथ को खींचते हैं– सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ऋग्वेद, 7.66.15। अर्थात् इनकी सात किरणों को ही सम्भवतः अश्व कहा गया है। वे अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा नभोमण्डल में देदीप्यामान ज्योति पिण्डों को भी थामे रखते हैं। अर्थात् इन्हें देवों का रक्षक भी कहा गया है– पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः इनकी महानता के कारण इनको देवताओं का दिव्य पुरोहित भी कहा गया है– 'आसूर्यः पुरोहितः'। जब सूर्य उदित होते हैं तो इनसे प्रार्थना की गयी है कि मित्र और वरुण के सामने वह मनुष्यों को पापरहित करे। उनके लिये विश्वकर्मा उपाधि का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार सूर्य को सौर देवताओं में साकार देव कहा है और वे प्रकाश का प्रतिनिधित्व हैं।

4.5 कठिन शब्दावली

देवानाम् –किरणों का, देवताओं का

योषाम् –सुन्दर युवती के

भद्राः –कल्याण करने वाले

परियन्ति –परिक्रमा करते हैं

वासः –आच्छादित करने वाले

सिमस्मै –सम्पूर्ण विश्व के लिए

उपस्थे –शिखर पर

अहंस –पाप से

अवद्यात् –निन्द्य कर्म से

अदितिः –अखण्डनीय शक्ति वाली देवमाता

चित्रम् –आश्चर्यजनक

वितन्वते –सम्पन्न करते हैं

अनुमाद्यासः –स्तुति करने योग्य

विततम् –फैले हुए

तनुते –विस्तृत कर देता है

अभिचक्षे –देखने के लिए

रुशत् –चमकदार

निःपितृत –छुड़ाओ

मित्रः –हिंसा से रक्षा करने वाला सूर्य

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

उ॰1. विश्वकर्मा

उ॰2. अश्व

उ॰3. आत्मा

उ॰4. चक्षु

उ॰5. नेत्र

उ॰6. आदित्य

उ॰7. उषा

उ॰8. सूर्य

4.7 अनुशंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

4.8 अभ्यास के लिये प्रश्न

1. सूर्य सूक्त का सार अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
2. किन्हीं चार पदों की व्याकरणिक टिप्पणी लिखें।

   1) देवानाम्, 2) अश्वाः, 3) द्यावापृथिवी, 4) उपस्थे, 5) रुशत्, 6) उदिता, 7) मामहन्ताम्
3. ऋग्वेदीय सूर्य के स्वरूप का वर्णन करें।

इकाई – 5

अग्नि सूक्त (1.143)

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 अग्नि सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

5.4 सारांष

5.5 कठिन शब्दावली

5.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

5.7अनुषंसित ग्रन्थ

5.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में अग्नि सूक्त का वर्णन किया है जो ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 143वां सूक्त है। इसके देवता अग्नि हैं, दीर्घतमा ऋषि हैं, जगती छन्द है एवं अन्तिम मन्त्र में त्रिष्टुप छन्द है। प्रभाव एवं विस्तार की दृष्टि से अग्नि को ऋग्वेद में दूसरा स्थान प्राप्त है। वैदिक मन्त्रों में अग्नि की तीन मुख्य विशेषताएं बताई गयी है जो इस प्रकार हैं– 1. नेतृत्त्व शक्ति से पूर्ण, 2. यज्ञ की आहुतियों को ग्रहण करना तथा, 3. तेज एवं प्रकाश का अधिष्ठाता। इसको जातवेदाः कहा गया है। अर्थात् जो ज्ञान का आगार है तथा उपासना करने वालों का कल्याण करने वाला है। अतः अग्नि की उपासना प्राचीन काल से चली आ रही है। इसको पुरोहित, यज्ञ का देव, ऋत्विक, नेता तथा श्रेष्ठ रत्नों को धारण करने वाला कहा गया है। अग्नि के दो स्थान बताये गये हैं– द्युलोक और पृथ्वी लोक। मानवीय जीवन से अधिक सम्बन्ध रखने के कारण इसको अतिथि और गृहपति कहा गया है।

5.2 उद्देश्य

1. अग्नि देवता के प्रिय भोजन लकड़ी तथा घृत है।
2. अग्नि को त्रिगुणात्मक माना गया है।
3. अग्नि पृथ्वी स्थानीय देवता है।
4. अग्नि को अतिथि तथा गृहपति कहा गया है।
5. अग्नि को जल का पुत्र (अपांनपात्) कहा गया है।

5.3अग्नि सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

अग्नि सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 143)

ऋषि – दीर्घतमा, देवता – अग्नि, छन्द – जगती

अन्तिम मन्त्र में त्रिष्टुप्।

संहिता–पाठ

1. प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये, वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।

अपां नपाद्यो वसुभिः सहप्रियो, होता पृथिव्यां न्यसोददृत्वियः।।

अन्वय – सहसः सूनवे अग्नये तव्यसीम् नव्यसीम् धीतिम् वाचः मतिम् भरे। यः अपाम् नपात् प्रियः होता ऋत्वियः वसुभिः सह पृथिव्याम् नि असीदत्।

शब्दार्थ – तव्यसीम् –अत्यधिक बलवती, बल को बढ़ाने वाली, **नव्यसीम** –अत्यधिक नवीन, **धीतिम्** –यज्ञ रूप कर्म को, **वाचः** –वाणी के, **मतिम्** –स्तुति रूप कर्म को, **सहसः** –बल के, **सूनवे** –पुत्र, **प्रभरे** –प्रस्तुत करता हूँ, **अपां नपात्** –जलों का पौत्र या नाती, **वसुभिःसह** –निवास करने योग्य धनों के साथ, **प्रियः** –प्रेम करने वाला, **नि असीदत्** –स्थित हो रहा है, **ऋत्वियः** –ऋतुओं को जानने वाला।

अनुवाद –बल के पुत्र अर्थात् बल से श्रम से उत्पन्न किए जाने वाले अग्नि देवता के लिए अत्यधिक बलवती बल को बढ़ाने वाली, अत्यधिक नवीन अपूर्व यज्ञ रूप कर्म को और और वाणी से सम्पादित स्तुति रूप कर्म को प्रस्तुत करता हूँ। जो अग्नि देवता जलों का पौत्र या नाती है अथवा जलों की अत्यधिक वर्षा कराने वाला है, प्रेम करने वाला है, यज्ञों का होता है और ऋतुओं का जानने वाला अथवा समय के अनुसार प्राप्त होने वाला है और जो निवास करने योग्य गो आदि धनों के साथ या वसु देवताओं के साथ वेदि रूपी पृथिवी पर स्थित हो रहा है।

व्याकरण

तव्यसीम् –वृद्धयर्थक 'तु' धातु तृच् प्रत्यय=तोतृ। अतिशय अर्थ में 'ईयसुन्' प्रत्यय। तोतृ+ईयस्। ''तुरिष्ठे मे०'' इत्यादि = सूत्र से 'ई' का लोप और 'ओ' का अवादेश=तवीयस्। छान्दस 'ई' का लोप = तव्यस्। स्त्रीलिंग में तव्यसी।

नव्यसीम् –नव+ईयसुन्+ङ्ीप (अ और ई का छान्दस लोप) = नवीयसी।

भरे –'भृ' धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन (आत्मनेपद)।

नपात् –वेद में निपातनात् बनता है।

ऋत्वियः –ऋतु+इ+क = इ ऋत्विय (वैदिक निपातन से)।

संहिता–पाठ

2. स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिष्वने।

अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी आरोचयत्।।

अन्वय – जायमानः सः अग्निः परमे व्योमनि मातरिष्वने आविरभवत्। समिधानस्य अस्य मज्मना क्रत्वा शोचिः द्यावा पृथिवी प्रारोचयत्।

शब्दार्थ – जायमानः –उत्पन्न होता हुआ, **परमे व्योमनि –**सर्वोच्च आकाश में, **आविः अभवत् –**प्रकट हुआ था, **मातरिष्वने** –वायु के लिए, यजमान के लिए, **क्रत्वा** –कर्म से, **समिधानस्य** –ईंधनों से प्रज्वलित होते हुए, **मज्मना** –बल से युक्त, **शोचिः** –चमक ने, **प्र अरोचयत्** –प्रकाशित कर दिया है।

अनुवाद –अरणियों में काष्ठों में उत्पन्न होता हुआ वह अग्नि उत्कृष्ट विविध रक्षक उपायों से रक्षित यज्ञवेदि में अथवा सर्वोच्च आकाश में वायु के लिए या यजमान के लिए प्रकट हुआ था। वायु के संयोग से अग्नि उत्पन्न होती है, यह प्रसिद्ध है। ईंधनों से प्रज्वलित होते हुए इस अग्नि के बल से युक्त कर्म की अर्थात् लपटों से युक्त जलाने की क्रिया की चमक ने द्युलोक और पृथिवी लोक को प्रकाशित कर दिया है।

व्याकरण

व्योमनि –वि+अव् रक्षणे धातु से 'मनिन्' प्रत्यय। सप्तमी विभक्ति का एकवचन।

मातरिष्वने –मातरि श्वसिति अर्थ में निपातनात् मातरिश्वन्। चतुर्थी का एकवचन।

क्रत्वा –'क्रतु' शब्द तृतीया विभक्ति का एकवचन। यह वैदिक रूप है। लोक में 'क्रतुना' होगा।

समिधानस्य –सम्+इन्धी दीप्तौ धातु से शानच्। 'इन्ध्' के 'न' का छान्दस लोप।

संहिता–पाठ

3. अस्यत्वेषा अजरा अस्यभानवः सुसंदृषः सप्रतीकस्य सुद्युतः।

भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः।।

अन्वय – अस्य अग्नेः त्वेषाः अजराः, सुप्रतीकस्य सुद्युतः अस्य भानवः सुसंदृषः। भात्वक्षसः अक्तुः अति सिन्धवः अससन्तः अजराः न रेजन्ते।

शब्दार्थ – त्वेषाः –दीप्तियाँ, **अजराः –**जीर्ण नहीं होती, **भानवः –**किरणें, **सुसंदृषः –**अच्छी प्रकार देखने योग्य, **सुप्रतीकस्य** –सुन्दर मुख वाले, **सुद्युतः** –सुन्दर कान्ति वाले, **भात्वक्षसः** –प्रकाश का बल रखने वाले, **अति अक्तु** –अतिक्रमण करने वाली हैं, **सिन्धवः** –व्यापनशील, **अससन्तः** –विश्राम न करती हुई, **अजराः** –जीर्ण न होती हुई।

अनुवाद –स्तूयमान इस अग्नि की दीप्तियाँ कभी जीर्ण नहीं होती। सुन्दर मुख वाले और सुन्दर कान्ति वाले इस अग्नि की किरणें अच्छी प्रकार से देखने योग्य बनी रहती हैं। प्रकाश का बल रखने वाले अग्नि की

किरणें रात्रि के अन्धकार का अतिक्रमण करने वाली हैं और व्यापनशील होती हुई, कभी विश्राम न करती हुई और कभी जीर्ण न होती हुई वे अपने कार्य से कभी विचलित नहीं होती।

व्याकरण

अक्तुः –अंज्+क्रतुन्।

असस‌न्तः –नञ् पूर्वक 'सम् स्वप्ने' धातु से निपातनात् सिद्ध है।

भात्वक्षसः –भा+त्वक्ष्+असुन्। भाः त्वक्षो यस्य तस्य।

संहिता–पाठ

4. यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।

अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति।।

अन्वय – विष्ववेदसम् यम् भृगवः पृथिव्याः नाभा मज्मना भुवनस्य आ ईरिरे, तम् अग्निम् गीर्भिः स्वे दमे आ हिनुहि यः एकः वरुणः न वस्वः राजति।

शब्दार्थ – आ ईरिरे –स्थापित किया था, **भृगवः** –भृगु कुल में उत्पन्न हुए ऋषि, **विश्व वेदसम्** –सब प्रकार के धनों से सम्पन्न, **नाभा** –मध्य भाग से, **मज्मना** –बल से, **गीर्भिः** –स्तुतियों द्वारा, **आ हिनुहि** –लाइए, **दमे** –घर में, **वस्वः** –धनों का, **राजति** –स्वामी बनता है।

अनुवाद –सब प्रकार के धनों से सम्पन्न जिस अग्नि को भृगु कुल में उत्पन्न हुए ऋषियों ने अथवा पापों को भून देने वाले मुनियों ने पृथिवी रूपी वेदी के मध्य भाग में से अपने बल से संसार के लिए स्थापित किया था उस अग्नि को स्तुतियों द्वारा अपने घर में लाइए अर्थात् बढ़ाइए। यह अग्नि अकेला होता हुआ ही वरुण देवता के समान सम्पूर्ण धनों का स्वामी बनता है।

व्याकरण

ईरिरे –'ईर्' धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन (वैदिक रूप)।

विष्ववेदसम् –विश्वं वेदः यस्य तम्।

नाभा –'नाभि' शब्द, सप्तमी विभक्ति का एकवचन (वैदिक रूप)।

मज्मना –मज्जति मनः यत्र तत् मज्मन् बलम्। मस्ज्+मनस्+ड।

हिनुहि –'हि गतौ वृद्धौ च' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

5. न यो वराय मरुतामिव स्वनः, सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः।

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति, योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते।।

अन्वय – यः अग्निः वराय न, मरुताम् स्वनः इव, सृष्टा सेना इव, दिव्या अषनिः यथा। तिगितैः जम्भैः अत्ति, भर्वति। योधः शत्रून् न स वना न्यृञ्जते।

शब्दार्थ – न वराय –आवृत नहीं किया जा सकता, **मरुताम्** –हवाओं की, **स्वनः** –गर्जना, **सृष्टा** –प्रेरित की गई, **अशानिः** –वज्र, आकाश में उत्पन्न बिजली, **जम्भैः** –दांतों से, दांत रूपी ज्वालाओं से, **तिगितैः** –तीक्ष्ण, **अत्ति** –खा जाता है, **भर्वति** –हिंसा करता है, चबा डालता है, **योधः** –योद्धा, **न** –के समान, **शत्रून्** –शत्रुओं को, **वनानि** –वनों को, **न्यूंजते** –जला डालता है।

अनुवाद –जिस अग्नि को किसी के द्वारा आवृत्त किया या रोका नहीं जा सकता, जिस प्रकार हवाओं की गर्जनाओं को, प्रेरित की गई सेना को और दिव्य वज्र को या आकाश में उत्पन्न बिजली को रोका नहीं जा सकता। वह अग्नि तीक्ष्ण दान्तों रूपी ज्वालाओं से सबको खा जाता है और चबा डालता है। जिस प्रकार योद्धा शत्रुओं की हिंसा करता है, वह वनों को जला डालता है।

व्याकरण

वराय –वृ+अप्=वर।

सृष्टा –सृज्+क्त+टाप्।

जम्भैः –जम्भ्+अच्। तृतीया विभक्ति का बहुवचन।

तिगितैः –तीक्ष्ण+इत् अवस्था में ''पृषोदरादित्वात्'' से निपातित हुआ। अथवा तिज् निशाने धातु से तिज्+क्त=तिगित।

भर्वति –'भर्व् हिंसायाम्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

6. कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्।

चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातयेधियः, शुचिप्रतीकं तमयाधिया गुणे।।

अन्वय – अग्निः नः उचथस्य कुवित् वीः असत्। वसुः वसुभिः कामम् कुवित् आवरत्। चोदः धियः सातये कुवित् तुतुज्यात्। शुचिप्रतीकम् तम् अया धिया गृणे।

शब्दार्थ – कुवित् –अनेक बार, **नः** –हमारे, **उचथस्य** –स्तोत्र का, **वीः** –चाहने वाला, **असत्** –होवे, **वसुः** –बसाने वाला, **वसुभिः** –बसाने वाले धनों से, **कामम्** –इच्छानुसार, **आवरत्** –प्राप्त करावे, **चोदः** –प्रेरणा देने वाला, **तुतुज्यात्** –प्रेरणा दे, **सातये** –सुखलाभ के लिए, **धियः** –कर्मों को, **शुचिप्रतिकम्** –सुन्दर अवयवों वाले, सुन्दर ज्वालाओं वाले, **अया** –इस, **धिया** –बुद्धि से, **गृणे** –स्तुति करता हूँ।

अनुवाद –वह अग्नि हमारे स्त्रोत का अनेक बार चाहने वाला होवे। सबको बसाने वाला वह अग्नि निवास प्रदान करने वाले धनों से इच्छानुसार अभीष्ट वस्तु को प्रचुर मात्रा में प्राप्त करावे। कर्मों को करने के लिए प्रेरणा देने वाला वह अग्नि हमारे कर्मों को सुखलाभ के लिए बहुत अधिक प्रेरणा दे। सुन्दर अवयवों वाले या सुन्दर ज्वालाओं वाले उस अग्नि की मैं इस स्तुति रूप बुद्धि से स्तुति करता हूँ।

व्याकरण

उचथस्य –वच्+अथक् ('व्' को सम्प्रसारण) =उचथ।

असत् –'अस्' धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन। लोट् के अर्थ में लेट् लकार का प्रयोग है।

आवरत् –आ+बृ धातु लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। लोट् के अर्थ में लेट् लकार का प्रयोग हुआ है।

तुतुज्यात् –'तुज्' प्रेरणे धातु विधिलिंग प्रथम पुरुष, एकवचन। छान्दस द्वित्व।

चोदः –'चुद्' प्रेरणे धातु से अच् प्रत्यय।

अया –'इदम्' शब्द, स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति, एकवचन। लोक में 'अनया' होगा।

गृणे –'गृ' संशब्दने धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। ऋ को छान्दस ह्रस्व तथा आत्मनेपद।

संहिता–पाठ

7. घृत प्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्नि मित्रं न समिधान ऋञ्जते।

इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम्।।

अन्वय – समिधानः घृतप्रतीकम् वः ऋतस्य धूर्षदम् अग्निम् मित्रम् न ऋंजते। इन्धानः अक्रः विदथेषु नः धियम् शुक्रवर्णाम् उदुयंसते।

शब्दार्थ – घृतप्रतीकम् –घृत द्वारा परिवर्धित, प्रदीप्त ज्वालाओं वाले, **ऋतस्य** –यज्ञ का, **धूःसदम्** –भार को वहन करने वाला, यज्ञ के अग्रभाग में क्रियाओं को सम्पादित करने वाला, **मित्रम् न** –मित्र के समान, **समिधानः** –समिधाओं से दीप्त होता हुआ, **ऋंजते** –दहन करता है, **इन्धानः** –ईंधन से प्रदीप्त, **अक्रः** –ज्वालाओं से परिवेष्टित, समिधाओं से आवेष्टित, दुर्धर्ष, अनाक्रान्त, **विदथेषु** –यज्ञों में, सभाओं में, **दीद्यत्** –दीप्यमान होता हुआ, **शुक्रवर्णाम्** –उज्ज्वल वर्णवाली, **उदुयसते** –उन्नत बनाता है।

अनुवाद –समिधाओं से दीप्त होता हुआ अग्नि घृत के द्वारा परिवर्धित किए गए अथवा प्रदीप्त ज्वालाओं वाले और तुम्हारे यज्ञ के भार को वहन करने वाले अथवा यज्ञ के अग्रभाग में क्रियाओं को सम्पादित करने वाले अग्नि देवता को मित्र के समान प्रसाधित कर लेता है, आत्मरूप बना लेता है। ईंधन से प्रदीप्त एवं ज्वालाओं से आवेष्टित अथवा समिधाओं से आवेष्टित अथवा दुर्धर्ष अनाक्रान्त, यज्ञों में या सभाओं में दीप्यमान होता हुआ वह अग्नि देव हमारी यज्ञादि विषयक बुद्धि को उज्ज्वल वर्ण वाली करता हुआ उन्नत बनाता है।

व्याकरण

ऋतस्य –ऋ+क्त। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

धूर्षदम् –धुर्+सद्+अच् = धूर्षद। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

मित्रम् –मिनातेः हिंसायाः त्रायते इति मित्रम्।

विदथेसु –विद्+अथच्=विदथ। पीटर्सन के अनुसार इसकी निष्पत्ति 'वि+धा' से हुई है।

दीद्यत् –'दिव्' धातु से निपातनात् सिद्ध होता है।

यंसते –'यम्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। वैदिक रूप है।

संहिता–पाठ

8. अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।

अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नोः जाः।।

अन्वय – अग्ने! अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भिः षिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि। इष्टे। अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः नः जाः परि पाहि।

शब्दार्थ – अप्रचुच्छन् –प्रमाद न करता हुआ, **अप्रचुच्छद्भिः –**प्रमाद न करने वाले, **शिवेभिः –**कल्याण करने वाले, **पायुभिः** –रक्षणों से, **पाहि** –रक्षा करो, **शग्मैः** –सुखकारी, **अदब्धेभिः** –हिंसित न होने वाले, **दृपितेभिः** –पराभूत न होने वाले, **इष्टे** –हे अग्ने, **अनिमिषद्भिः** –आलस्य न करने वाले, **परि** –चारों ओर से, **नः जाः –**हमारी सन्तति की।

अनुवाद –हे अग्नि देवता! हमारी रक्षा करने में प्रमाद न करते हुए आप प्रमाद न करने वाले अर्थात् सावधान रहने के लिए चेतावनी देने वाले, कल्याण करने वाले, सुखकारी रक्षणों के प्रकारों से हमारी रक्षा कीजिए। सब के द्वारा वांछनीय हे अग्नि! आप हिंसित न होने वाले, दूसरों के द्वारा पराभूत न होने वाले और आलस्य न करने वाले साधनों के द्वारा हमारी और हमारी सन्तति की सब ओर से रक्षा कीजिए।

व्याकरण

अप्रयुच्छन् –नञ्+प्र+युच्छ+शतृ। प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

शग्मैः –'शक्' धातु से 'म' प्रत्यय वैदिक रूप, तृतीया विभक्ति का बहुवचन।

शिवेभिः –'अदब्धेभिः' अदृपितेभिः – तृतीया विभक्ति के बहुवचन हैं। छान्दस होने से 'भिस्' को 'ऐस्' नहीं हुआ।

जाः –'जनी प्रादुर्भावे' अर्थ में जन्+ड्+टाप्=जा। लोक में उपसर्ग पहले होने पर भी ए होता है।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  प्र॰1. ऋग्वेद के मन्त्रों के अनुसार अग्नि का विशेष सम्बन्ध किससे है?

  प्र॰2. अग्नि का प्रिय भोजन क्या है?

  प्र॰3. अग्नि के दो स्थान बताये गये हैं?

  प्र॰4. अग्नि को धूमकेतु क्यों कहा गया है?

  प्र॰5. अग्नि को कहां का स्थानीय देवता कहा गया है?

  प्र॰6. दमूनस शब्द किसके लिये प्रयुक्त हुआ है?

  प्र॰7. मानवीय जीवन से अधिक सम्बन्ध रखने के कारण अग्नि को क्या कहा गया है?

  प्र॰8. कविक्रतु किसे कहा गया है?

5.4 सारांष

ऋग्वेद के मन्त्रों में अग्नि का सम्बन्ध विशेष रूप से यज्ञ की अग्नि से है। ऋग्वेद के लगभग 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गयी है। इन्द्र के बाद अग्नि की स्तुति की गयी है। मैकडानल के अनुसार अग्नि नाम भारोपीय परिवार से है। संस्कृति में अग्नि शब्द 'अग' धातु और लैटिन शब्द 'ag'धातु से निष्पन्न है। इसको अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है– ऋत्विक्, होता, पुरोहित, जातवेदस, रत्नधातम, घृतपृष्ठ, घृतलोम, घृतप्रतीक, शोचिषकेश, कविक्रतु, कवि, गृहपति, दमूनस, अंगिरस, चित्रश्रवस्तम्, हव्यवाह, सहस्त्राक्ष, त्रिमूर्द्धा, सप्तरश्मि, दूत, धूमकेतु, मन्दजिह्वा, असुर, विश्वपति, उर्जोनपात्, अपानपात्, रक्तमश्रु, तीक्ष्णदष्ट्र, रुक्तदन्त, वैश्वानर, अंगिरा, सत्यधर्मो तथा नेता।

अग्नि भास्कर ज्वालाओं से युक्त एवं हिरण्यरूप वाले देवता है। अग्नि देवताओं को रथ पर यज्ञ भूमि में लाता है। इसको घौसू व जल का पुत्र भी कहा गया है। अग्नि सूखी अरणियों से उत्पन्न होता है जो उसकी माता (अरणियों) हैं। इसको दश कन्याओं से उत्पन्न माना है जो मनुष्य की दस अंगुलियां हैं, क्योंकि मनुष्य को अग्नि को उत्पन्न करने के लिये जोर लगाना पड़ता है। आर्यों के गृह कार्यों का अधिष्ठाता अग्नि है। इसके बिना कोई भी गृह कार्य सम्पन्न नहीं होता है। सभी मनुष्य इसको चाहते हैं, अतः यह वैश्वानर है। सबके द्वारा स्तुति किए जाने पर इसे नाराशंस कहा गया है। अतः अग्नि का महत्त्व बहुत बताया है और इसकी सार्वभौम शक्तियों की प्रशंसा की गयी है।

5.5 कठिन शब्दावली

अपांनपात् –जलों का पौत्र

मज्मना –बल से युक्त

वस्वः –धनों का

दमे –घर में

मरुताम् –हवाओं की

भर्वति –हिंसा करता है

कुवित् –अनेक बार

ऋंजते –दहन करता है

ऋत्वियः –ऋतुओं को जानने वाला

मानवः –किरणें

गीभिः –स्तुतियों द्वारा

अत्ति –खा जाता है

स्वनः –गर्जना

शुचिप्रतीकम् –सुन्दर ज्वालाओं वाले

ऋतस्य –यज्ञ का

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. यज्ञाग्नि से

  उ॰2. घृत व लकड़ी

  उ॰3. द्युलोक व पृथ्वी लोक

  उ॰4. धुएँ के कारण

उ॰5. पृथ्वीलोक का

उ॰6. अग्नि के लिए

उ॰7. गृहपति

उ॰8. अग्नि को

5.7 अनुशंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37—बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी—5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी—1

5.8 अभ्यास के लिये प्रश्न

1. अग्नि सूक्त का सार लिखो।
2. अग्नि देवता के स्वरूप का विवेचन पठित सूक्त के अनुसार कीजिए।
3. स जायमानः परमे.................. प्र द्यावा शोचिःपृथिवी अरोचयत्। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
4. किन्हीं चार पदों की व्याकरिक टिप्पणी कीजिए।

   1) नपात्, 2) मतिम्, 3) जायमानः, 4) द्यावा, 5) विश्ववेदसम्, 6) सृष्टा, 7) ऋतस्य
5. घृपप्रतीकं व ऋतस्य.......................... नो यंसते धियम्।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई – 6

विष्णु सूक्त (1.154)

संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विष्णु सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रष्न

6.4 सारांष

6.5 कठिन शब्दावली

6.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

6.7अनुषंसित ग्रन्थ

6.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 154वां सूक्त है। इसके देवता विष्णु, ऋषि दीर्घतमा तथा त्रिष्टुप वैदिक छन्द है। ऋग्वेद में विष्णु की स्तुति पांच सूक्तों में की गयी है। अरविन्द घोष के अनुसार अध्यात्मिक दृष्टि से कहा गया है– 'विष्णु समस्त संसार का वृषभ है जो शक्ति की सभी ऊर्जाओं और विचारों के समूह का भोग करने वाला और उन्हें उत्पन्न करने वाला है'। इनके तीन विस्तृत पगों में ही सभी लोकों का निवास बताया गया है– 'यस्योरुषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' ऋग्वेद (1.154.2)। अतः उनके तीन पग तीनों लोकों– पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक को सूचित करते हैं।

6.2 उद्देश्य

1. विष्णु देवता को उरुगाय तथा उरुक्रम की उपाधि दी गयी है।
2. विष्णु के तीन पद (त्रीणि विक्रमणानि) उनके चरित्र की विशेषता है जिसके कारण इसे त्रिविक्रम कहा गया है। विद्वानों के अनुसार विष्णु के तीन पद सूर्य के तीन पदों– सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त का बोध कराते हैं।
3. विष्णु देवता ने तीन ऽगों से तीनों लोकों को नाप लिया था। इनमें से दो ऽगों को तो मनुष्य देख लेता है परन्तु तीसरे ऽग को देखना मनुष्य एवं प्राणी की पहुंच से परे है।
4. विष्णु को परम पद का अधिष्ठाता कहा गया है। उनका परम पद उच्च लोक है।

6.3 विष्णु सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

विष्णु सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 154)

ऋषि – दीर्घतमा, देवता – विष्णु, छन्द – त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरूगायः।।

अन्वय – विष्णोः वीर्याणि नु कम् प्रवोचम्, यः पार्थिवानि रजांसि विममे, यः त्रेधा विचक्रमाणः उरुगायः उत्तरम् सधस्थम् अस्कभायत्।

शब्दार्थ – विष्णु –व्यापनशील विष्णु देवता, **नु** –शीघ्र, **वीर्याणि** –वीर कार्यों का, **प्रवोचम्** –कहता हूँ, **पार्थिवानि** –पृथ्वी सम्बन्धी, **रजांसि** –रजकणों को, लोकों को, **विममे** –विशेष रूप से बनाया, **अस्कभायत्** –स्तम्भित किया, आधार रूप से बनाया, **उत्तरम्** –अति उत्कृष्ट, **सधस्थम्** –साथ रहने का स्थान, **विचक्रमाणः** –लांघते हुए, **त्रेधा** –तीन प्रकार से, या तीन डगों में, **उरुगायः** –महान् पुरुषों से स्तुति किया जाता हुआ।

अनुवाद –हे मनुष्यों! मैं व्यापनशील विष्णु देवता के वीर कार्यों को बहुत शीघ्र कहता हूँ, जिस विष्णु ने पृथिवी सम्बन्धी रजकणों अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य आदि विशेष लोकों की विशेष रूप से रचना की और जिस विष्णु ने तीन प्रकार से या तीन डगों में अपने बनाए हुए लोकों को लांघते हुए एवं महान् पुरुषों से स्तुति किए जाते हुए होकर ऊँचे या अति उत्कृष्ट तीनों लोकों के आश्रयभूत साथ रहने के स्थान को स्तम्भित किया, आधार रूप से बनाया।

व्याकरण

विष्णोः –'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से विष्+नु=विष्णु। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

प्रवोचम् –'प्र+वच्' धातु, लङ्. लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन। छान्दस अट् का अभाव। वर्तमान काल में 'लङ्' का प्रयोग।

पार्थिवानि –पृथिवी+अण्=पार्थिव।

अस्कभायत् –'स्कम्भ्' धातु 'लङ्' लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। यहाँ 'श्ना' को वैदिक 'शायच्' आदेश हुआ। लोक में 'अस्कभ्नात्' रूप होगा।

विचक्रमाणः –'वि+क्रम्' धातु से लिट् के अर्थ में कानच् प्रत्यय।

उरुगायः –'उरुभिः गीयते' अर्थ में उरु+गै+अच्।

संहिता–पाठ

2. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।।

अन्वय – यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति तत् विष्णुः वीर्येण प्रस्तवते, भीमः कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न।

शब्दार्थ – प्रस्तवते –स्तुति किया जाता है, **भीमः** –भयानक, **कुचरः** –कुत्सित हिंसा आदि कार्य करने वाला, स्वतंत्रता पूर्वक भूमि पर विचरण करने वाला, **गिरिष्ठाः** –पर्वतों में रहने वाला, **उरुषु** –विस्तीर्ण, **विक्रमणेषु** –डगों में, **अधिक्षियन्ति** –निवास करते हैं।

अनुवाद –जिस विष्णु के विस्तीर्ण लम्बे तीन डगों से सम्पूर्ण लोक आ जाते हैं या आश्रय लेकर निवास करते हैं, उस विष्णु की वीर कार्यों से स्तुति उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार भयानक, कुत्सित हिंसा आदि कार्य करने वाले या स्वतन्त्रता पूर्वक भूमि पर विचरण करने वाले, पर्वत आदि उन्नत प्रदेशों में रहने वाले एवं विरोधियों को ढूंढ कर मारने वाले हिंसा आदि की स्तुति की जाती है।

व्याकरण

स्तवते –'स्तु' धातु से कर्म कारक में लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन व्यत्यय से 'यक्' के स्थान पर 'शप्' हुआ।

कुचरः –कु+चर्+ट।

मृगः –मार्ष्टि गच्छति अन्विषति अर्थ में मृज्+क=मृग। अथवा मृ+गम्+अ=मृग।

गिरिष्ठाः –गिरिषु तिष्ठति अर्थ में–गिरि+स्था+क्विप्।

विश्वा –विश्व पद प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। लोक में 'विश्वानि' बनेगा।

संहिता–पाठ

3. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम् एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः।।

अन्वय – यः इदम् दीर्घम् प्रयतम् सधस्थम् एकः इत् त्रिभिः पदेभिः विममे, गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे मन्म शूषम् प्र एतु।

शब्दार्थ – शूषम् –बल, **प्र एतु** –प्राप्त होवे, **मन्म** –मननीय, स्तुति के योग्य, **गिरिक्षिते** –वाणियों में निवास करने वाले, उन्नत प्रदेश में रहने वाले, **वृष्णे** –कामनाओं को पूर्ण करने वाले, **दीर्घम्** –विस्तृत, **प्रयतम्** –नियमों में बंधा हुआ, **सधस्थम्** –सबका सम्मिलित स्थान, **विममे** –नाप लिया था।

अनुवाद –जिस विष्णु ने इस दृश्यमान अति विस्तृत नियमों में बंधे हुए सबके सम्मिलित स्थान लोकत्रय को अकेले ही तीन डगों में नाप लिया था, उस वाणियों में निवास करने वाले या उन्नत प्रदेश में रहने वाले, बहुतों के द्वारा स्तुति किए जाने वाले, कामनाओं को पूर्ण करने वाले सर्वव्यापक विष्णु के लिए हमारा यह मननीय या स्तुति के योग्य बल, जो हमारे कृत्यों से उत्पन्न हुआ है, प्राप्त होवे।

व्याकरण

शूषम् –शूष्+घञ्।

मन्म –मन्+मनिन्।

गिरिक्षिते –गिरि+क्षि+क्विप्=गिरिक्षित्। गिरौ क्षयति अर्थ में।

वृष्णे –वृष्+कनिन् (अन्) = वृषन् वेद में चतुर्थी का एकवचन।

संहिता–पाठ

4. यस्यु त्री पूर्णा मधुना पदान्य, अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।

य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्याम् एको दाधार भुवनानि विश्वा।।

अन्वय – यस्य मधुना पूर्णा त्री पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति, य उ एकः पृथिवीम् द्याम् उत त्रिधातु विष्वा भुवनानि दाधार।

शब्दार्थ – पूर्णा –भरे हुए, **मधुना** –दिव्य अमृत से, **अक्षीयमाणा** –क्षीण न होते हुए, **स्वधया** –अन्न के द्वारा, **मदन्ति** –आनन्दित करते हैं, **त्रिधातु** –पृथिवी–जल–तेज तीन धातुओं से युक्त, **उत** –और, **दाधार** –धारण करता है।

अनुवाद –जिस विष्णु के मधुर दिव्य अमृत से भरे हुए तीन पद कभी क्षीण न होते हुए अन्न के द्वारा आनन्दित करते हैं और जो अकेला ही विस्तृत पृथिवी लोक को द्युलोक को और अन्तरिक्ष लोक को, तीन धातुओं पृथिवी, जल, तेज से युक्त बनाता हुआ सभी लोकों को धारण करता है।

व्याकरण

त्री –'जस्' का लोप और 'त्रि' को दीर्घ। वैदिक रूप। लोक में 'त्रीणि' होगा।

पूर्णा –लोक में पूर्णानि होगा।

मदन्ति –'मदी हर्षे' धातु 'लट् लकार' प्रथम पुरुष, बहुवचन। लोक में 'मदयन्ति' या 'माद्यन्ति' रूप होगा।

त्रिधातु –त्रयाणां धातूनां समाहारः।

विश्वा –वैदिक रूप। लोक में 'विश्वानि' होगा।

संहिता–पाठ

5. तदस्य प्रियमभि पाथो अष्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।।

अन्वय – अस्य प्रियम् तत् पाथः अभि अष्याम्, यत्र देवयवः नरः मदन्ति। उरुक्रमस्य विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः। इत्था सः हि बन्धुः।

शब्दार्थ – पाथः –लोक को, **अभि अष्याम्** –प्राप्त करूँ, **देवयवः** –विष्णु देवता के भक्त, **मदन्ति** –आनन्दित होते हैं, **उरुक्रमस्य** –परम पराक्रम वाले, महान् डगों वाले, **इत्था** –इस प्रकार से, **मध्वः** –मधुर अमृत का, **उत्सः** –स्रोत।

अनुवाद –इस विष्णु के प्रिय उस लोक को प्राप्त करूँ, जहाँ उस विष्णु देव के भक्त जन आनन्द का अनुभव करते हैं। परम पराक्रम वाले अथवा महान् डगों वाले सर्वव्यापक विष्णु के परम स्थान में मधुर अमृत का स्रोत है। इस प्रकार से वह विष्णु निश्चय से सबका बन्धु है।

व्याकरण

पाथः –पा+असुन् (थुट् का आगम)।

देवयवः –देव+यु+क्विप् = देवयु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

इत्था –'इत्थम्' का वैदिक रूप।

मध्वः –'मधु' शब्द षष्ठी विभक्ति का एकवचन। लोक में 'मधुनः' बनेगा।

संहिता–पाठ

6. ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयासः।

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि।।

अन्वय – यत्र भूरिषृंगाः गावः अयास वाम् ता वास्तूनि गमध्यै उष्मसि। अत्र अह उरुगायस्य वृष्णाः तत् परमम् पदम् भूरि अव भाति।

शब्दार्थ – वास्तूनि –निवास योग्य स्थान या लोक, **उष्मसि** –कामना करते हैं, **गमध्यै** –जाने के लिए, **गावः** –गौयें, किरणें, **भूरिशृंगा** –बड़े ऊँचे सीगों वाली, अनेक प्रकार से फैलने वाली, **अयासः** –निवास करती हैं, प्रकाश से युक्त हैं, **अह** –निश्चय से, **अवभाति** –प्रकाशित हो रहा है, **भूरि** –अत्यधिक।

अनुवाद –हे यजमान और हे उसकी पत्नी! जहाँ बड़े–बड़े ऊँचे सींगों वाली गौयें अथवा अनेक प्रकार से फैलने वाली किरणें निवास करती है या अत्यधिक प्रकाश से युक्त है, तुम दोनों के उन निवास योग्य स्थानों या लोकों पर जाने के लिए हम कामना करते हैं। यहाँ निश्चय महान्! जनों से या बहुतों से स्तुति किए जाने वाले और कामनाओं को पूरा करने वाले विष्णु देव का परम पद या सर्वोत्कृष्ट अन्तरिक्ष लोक अत्यधिक रूप से प्रकाशित हो रहा है।

व्याकरण

ता –वैदिक रूप है। लोक में 'तानि' होगा।

गमध्यै –'गम' धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में वैदिक अध्यैन् प्रत्यय।

उष्मसि –'वश् कान्तौ' धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन। छान्दस रूप।

अयासः –'इण् गतौ' धातु+अच्=अय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन वैदिक रूप।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  प्र॰1. विष्णु सूक्त का ऋषि, छन्द और देवता कौन है?

  प्र॰2. विष्णु शब्द का अर्थ बताइये?

प्र॰3. वीर्याणि शब्द का अर्थ बतायें?

प्र॰4. कुचरः शब्द का क्या अर्थ है?

प्र॰5. विष्णु की उपाधि क्या है?

प्र॰6. विष्णु कहां के स्थानीय देवता हैं?

6.4 सारांष

विष्णु द्युस्थानीय देवता हैं। इनकी स्तुति ऋग्वेद के पाँच सूक्तों में की गयी है। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पुराणों में इनको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विष्णु शब्द व्याप्त्यर्थक 'विष्' से निष्पन्न है अर्थात् व्यापनशील होने के कारण ये सूर्य वाचक हुये हैं जिसका अर्थ है– तीनों लोकों में अपनो किरणें फैलाने वाला। मैक्डॉनल के अनुसार विष्णु शब्द विश्– क्रियाशील होना से निष्पन्न माना है। अर्थात् विष्णु जो बहुत क्रियाशील हैं जिस कारण उनको एवयावन् (तीव्रगति वाला) कहा है। ऋग्वेद के अनुसार उनको अति विशाल शरीर वाले युवा के रूप में वर्णित किया है– बृहत्छरीरो विमिमान ऋक्वभियुवा कुमारः प्रत्येत्यावहम्, (ऋग्वेद, 1.115.6)। विष्णु जी ने ऋग्वेद के अनुसार तीन पगों में ब्रह्माण्ड को नापने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसी के आधार पर बलि को विष्णु द्वारा छलने की पौराणिक कथा कल्पित है।

विष्णु को 'त्रिविक्रम' शब्द से सम्बोधित किया जाता है जिसका अर्थ है– सूर्य रूप विष्णु पृथ्वीलोक, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष में अपनी किरणों का प्रसार करके सभी प्रकार की सृष्टि– जरायुज, अण्डज और उद्भिज को अनुप्राणित करते हैं। उनको उरुक्रम महाशक्तिशाली तथा उरुगाय अनेक प्राणियों द्वारा स्तुति भी कहा गया है। ऋग्वेद में उरुगाय शब्द का प्रयोग 21 बार मिलता है। विष्णु को इन्द्र का छोटा भाई तथा मित्र के रूप में बताया है। देवताओं में सबसे क्रियाशील हैं तथा उनके सहायक भी हैं। इन्द्र ने जब वृत्र का वध किया था तो विष्णु ने उसकी सहायता की थी। पक्षिराज श्रेष्ठ गरुड़ इनके वाहन हैं। विष्णु को गर्भ के रक्षक के रूप में वर्णित किया गया है जो इनकी विशेषता है। गर्भाधान के निमित्त इनकी स्तुति अन्य देवताओं के साथ की जाती है। इनको परोपकारी, प्रचुर धन प्रदान करने वाले, उदार, सबके रक्षक तथा विश्व का पोषण करने वाले कहा गया है। इनको परम पद का अधिष्ठाता कहा है। परम पद जो उच्च लोक है, वहां पर मधु का सरोवर है और वहां पर बड़े सींगों वाली चंचल गायें रहती हैं। पुराणों में विष्णुलोक को गोलोक कहा गया है। इनकी विशेषतायें– उरुक्रम, उरुगाय, त्रिविक्रम, भीम, कुचर, गिरिष्ठा, गिरिक्षित, गिरिजा, वृष्ण, मातरिश्वा हैं।

6.5 कठिन शब्दावली

विष्णुः –व्यापकशील

उरुगाय –महान् पुरुषों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ

कुचरः –स्वतन्त्रतापूर्वक भूमि पर विचरण करने वाला

गिरिष्ठाः –पर्वतों में रहने वाला

विक्रमणेषु –डगों में

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

उ॰1. दीर्घतमा ऋषि, त्रिष्टुप छन्द और विष्णु देवता।

उ॰2. व्यापकशील

उ॰3. पराक्रम

उ॰4. शत्रुवधादि कुत्सित कार्य करने वाला अथवा दुर्गम प्रदेश में रहने वाला।

उ॰5. त्रिविक्रम

उ॰6. द्युस्थानीय

6.7 अनुशंसित–ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

6.8 अभ्यास के लिए प्रष्न

1. विष्णु सूक्त का सार लिखो।
2. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः .... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
3. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण.......................... भुवनानि विश्वा।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
4. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म....................... विममे त्रिभिरित्पदेभिः।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
5. तदस्य प्रियमभि पाथो.................... विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।

इकाई – 7

इन्द्र सूक्त (2.12)

संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3इन्द्र सूक्त मन्त्र संख्या 1–7 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

7.4इन्द्र सूक्त मन्त्र संख्या 8–15 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

7.5 सारांष

7.6 कठिन शब्दावली

7.7स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

7.8अनुषंसित ग्रन्थ

7.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में ऋग्वेद के इन्द्र सूक्त को लिया गया है जो द्वितीय मण्डल का 12वां सूक्त है। इसके देवता इन्द्र हैं, ऋषि गृत्समद हैं और त्रिष्टुप छन्द है। इन्द्र वैदिक आर्यों के प्रमुख देवता हैं। ऋग्वेद के लगभग 250 सूक्तों में इनकी स्तुति की गयी है जो अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं। यह सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र शासक हैं जिसने कांपती हुयी पृथ्वी तथा पर्वतों को स्थिर किया। सूर्य व उषा को उत्पन्न किया। इनको जल का नेता भी कहा गया है–

'यः सूर्यं य उषस् जजान यो अपां नेता'।

7.2 उद्देश्य

1. इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं तथा वैदिक आर्यों के प्रिय देवताओं में से हैं।
2. इन्द्र अपने अतुलित पराक्रम के लिए जाने जाते हैं। इन्हें सैंकड़ों क्रियाओं से युक्त होने के कारण शतक्रतु कहा है तथा समृद्ध होने के कारण मघवन् या वसुपति कहा जाता है।
3. इन्द्र के लिये वृत्रहा विशेषण प्रयुक्त होता है क्योंकि इन्होंने वृत्र का वध किया था।
4. सोम इन्द्र का प्रिय पेय है, इसलिये इनको सोमपा की संज्ञा दी गयी है।
5. इन्द्र को मरुत् का मित्र होने के कारण मरुत्सखा, मरुत्थान आदि नामों से सम्बोधित किया है।

7.3 मन्त्र संख्या 1–7 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

इन्द्र सूक्त (मण्डल 2, सूक्त 12)

ऋषि – गृत्समद, देवता – इन्द्र, छन्द – त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्, देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – जनासः! यः जातः एव प्रथमः मनस्वान् देवः क्रतुना देवान् पर्यभूषत् यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्, नृम्णस्य मह्ना स इन्द्रः।

शब्दार्थ – जातः –उत्पन्न हुआ, **प्रथमः** –प्रमुख, परम, **मनस्वान्** –मनस्वी, **देवः** –दिव्य गुणों से युक्त, **क्रतुना** –यज्ञ से, कर्म से, **परि अभूषत्** –अतिक्रमण किया, **शुष्मात्** –बल से, **रोदसी** –द्युलोक और पृथिवी लोक, **अभ्यसेताम्** –डरते थे, कांपते थे, **नृम्णस्य** –सेना के, **मह्ना** –महत्त्व से, **जनासः** –हे मनुष्यों, असुरों।

अनुवाद –हे मनुष्यों! अथवा हे असुरों! जो उत्पन्न होते ही सब देवताओं में प्रमुख परम मनस्वी हुआ, दिव्य गुणों से युक्त होते हुए जिसने यज्ञ से या वृत्र के वध आदि कर्मों से अन्य देवताओं को अलंकृत किया या अन्य देवताओं की शक्ति का अतिक्रमण किया, जिसने शारीरिक बल से द्युलोक पृथिवी लोक डरते थे या कांपते थे, महती सेना से महत्त्व से युक्त वह ही इन्द्र है।

व्याकरण

जातः –जन्+क्त।

पर्यभूषत् –'परि+भूष' धातु, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। अथवा परि+भू वैदिक व्यतयय से यहाँ 'शप्' न होकर 'क्स' हुआ।

शुष्मात् –शुष्+मनिन्=शुष्म।

मह्ना –'मह् पूजायाम्' धातु से 'इ' प्रत्यय =महि। तृतीया का एकवचन वैदिक रूप।

नृम्णस्य –नृ+म्ना+क=नृम्ण। नृणां म्नानम् आवृत्तिः। यत्र तत् नृम्णम्।

संहिता–पाठ

2. यः पृथिवीं व्यथमानामदृहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – जनासः! यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः वरीयः अन्तरिक्षम् विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात् स इन्द्रः।

शब्दार्थ – व्यथमानाम् –हिलती हुई, **अदृंहत्** –स्थिर कर दिया था, **प्रकुपितान्** –कुपित हुए, इच्छानुसार इधर–उधर स्वच्छन्द विचरण करते हुए, **अरम्णात्** –नियमित कर दिया था, **वरीयः** –विस्तृत, **अस्तभ्नात्** –थामा हुआ है, **द्याम्** –द्युलोक को।

अनुवाद –हे असुरो! जिसने हिलते हुई पृथिवी को स्थिर कर दिया था अर्थात् जिसने पृथिवी को और उस पार रहने वाले प्राणियों को स्थिरता प्रदान की थी। जिसने कुपित हुए अर्थात् इच्छानुसार इधर–उधर स्वच्छन्द विचरण करते हुए पंखों से युक्त पर्वतों को अपने–अपने स्थान पर नियमित कर दिया था, जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष की रचना की थी या विस्तार किया था और जिसने द्युलोक को थामा हुआ है, वही इन्द्र है।

व्याकरण

व्यथमानाम् –व्यथ्+शानच् (शप् और मुक् का आगम)।

अरम्णात् –'अन्तर्भावित ण्यर्थ रम्' धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। छान्दस परस्मैपद और 'शप्' के स्थान पर 'श्ना'।

प्रकुपिता –अरम्णात् – वैदिक सन्धि होकर 'न्' को 'ँ'।

वरीयः –उरु+ईयसुन्। 'उरु' को 'वर्' आदेश।

अस्तभ्नात् –स्तम्भु रोधने, लड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

3. यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।

यो अष्मनोरन्तरग्नि जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – जनास! यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्, यः वलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान, समत्सु संवृक् स इन्द्रः।

शब्दार्थ – **हत्वा** –मार कर, हटा कर, **अहिम्** –वृत्र को, जल रोकने वाले पर्वत को, **अरिणात्** –बहाया था, **सिन्धून्** –नदियों को, **बलस्य** –बल नामक दैत्य की, **उदाजत्** –बन्धन से मुक्त कर बाहर निकाला था, **अपधा** –रोकी गई, **अष्मनोः** –मेघों के, चट्टानों के, **अन्तः** –मध्य में, **अग्निम्** –विद्युत् अग्नि को, **जजान** –उत्पन्न किया था, **संवृक्** –विनाश किया था, **समत्सु** –युद्धों में।

अनुवाद –हे असुरों! जिस इन्द्र ने वृत्र को मार कर अर्थात् जल रोकने वाले पर्वतों को हटा कर सात नदियों को बहाया था, जिसने बल नामक दैत्य के द्वारा गुफा में रोकी गई गायों को बन्धन से मुक्त कर बाहर निकाला था, जिसने दो मेघों के या चट्टानों के मध्य में विद्युत्–अग्नि को उत्पन्न किया था और जिसने युद्धों में शत्रुओं का अच्छी प्रकार विनाश किया था, वही इन्द्र है।

व्याकरण

अरिणात् –'रीड्. प्रस्रवणे' क्रचादि गण की धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

उदाजत् –'उत्+अज्' धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अपधा –अप+धा+अड्.।

जजान –'जनी प्रादुर्भावे' धातु, लिट लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संवृक् –सम्+वृज्+क्विप्।

संहिता–पाठ

4. येनेमा विष्वा च्यवना कृतानि, यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमादद्, अर्यः पुष्टानि स जनासः इन्द्रः।।

अन्वय – येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि, यः दासम् वर्णम् अधरम् गुहा अकः, यः लक्षम् जिगीवान्, यः अर्यः पुष्टानि श्वघ्नी इव आदत्, जनासः स इन्द्रः।

शब्दार्थ – विश्वा –सम्पूर्ण भुवन, **च्यवना** –नश्वर, **कृतानि** –स्थिर किया है, **दासं वर्णम्** –हिंसा करने वाली जाति को, **अधरम्** –निकृष्ट असुर, **गुहा** –गूढ स्थान, नरक, **अकः** –कर दिया है, डाल दिया है, **श्वघ्नी** –शिकारी, जुआरी, **जिगीवान्** –जीत लिया है, **लक्षम्** –लक्ष्य को, **आदत्** –छीन लिया है, **अर्यः** –शत्रु के, **पुष्टानि** –धनों को।।

अनुवाद –जिसने इन सम्पूर्ण नश्वर भुवनों को स्थिर किया है, जिसने दास अर्थात् शूद्र आदि वर्णों को गुफा आदि गुप्त स्थानों में स्थापित कर दिया है, अथवा हिंसा करने वाली असुर जाति को नरक में डाल दिया है, जिसने लक्ष्य को जीत लिया है और जिसने शत्रुओं के धनों को उसी प्रकार छीन लिया है, जैसे शिकारी या जुआरी छीन लेता है, हे असुरों! वही इन्द्र है।

व्याकरण

च्यवना –च्यु+ल्यु (अन) = च्यवन। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन (नपुंसक लिंग) लोक में च्यवनानि बनेगा।

गुहा –सप्तमी विभक्ति का एकवचन। विभक्ति का छान्दस लोप।

अकः –'कृ' धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। वैदिक रूप है।

जिगीवान् –'जिजये' धातु से क्वसु 'प्रत्यय'।

जिगीवाँ लक्षम् –वैदिक सन्धि होकर 'न्' को 'ँ'।

अर्यः –'अरि' शब्द, षष्ठी विभक्ति का एकवचन। छान्दस रूप। लोक में 'अरेः' रूप बनेगा।

संहिता–पाठ

5. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मैधत्त स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – कुह सः इति यम् घोरम् पृच्छन्ति स्म, उत ईम् एनम् एषः न अस्ति इति आहुः, सः विजः इव अर्यः पुष्टीः आ मिनाति, श्रत् अस्मै धत्त, जनासः स इन्द्रः।

शब्दार्थ – कुह –कहाँ है, **घोरम्** –भयानक, **उत ईम् एनम्** –और निश्चय से जिसके विषय में, **पुष्टीः** –पोषक सम्पत्तियों को, **विजः इव** –विजेता के समान, **आमिनाति** –छीन लेता है, **श्रत्** –श्रद्धा, **धत्त** –धारण करो।

अनुवाद –वह कहाँ है? इस प्रकार जिस भयानक इन्द्र के सम्बन्ध में लोग पूछते रहते हैं और निश्चय जिसके विषय में यह नहीं है इस प्रकार कहते हैं, वह विजेता के समान शत्रु की पोषक सम्पत्तियों गौ आदि को छीन लेता है। इस इन्द्र के लिए श्रद्धा को धारण करो। हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

कुह –किम्+ह (वैदिक प्रत्यय)।

पुष्टीः –पुष्+क्तिन्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

मिनाति –'मीञ् हिंसायाम्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। मी को वैदिक ह्रस्व।

संहिता–पाठ

6. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – यः रध्रस्य चोदिता यः कृषस्य यः नाधमानस्य कीरेः ब्रह्मणः सुशिप्रः यः युक्त ग्राव्णः सुतसोमस्य अविता, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – रध्रस्य –समृद्धि शाली व्यक्ति का, **चोदिता** –प्रेरणा देने वाला, **कृषस्य** –निर्धन का, **ब्रह्मणः** –ब्राह्मण का, **नाधमानस्य** –याचना करने वाले, **कीरेः** –स्तुति करने वाले, **युक्तग्राव्णः** –अभिषव करने के लिए पत्थरों को उद्यत किए हुए, **अविता** –रक्षा करने वाला, **सुशिप्रः** –सुन्दर ठोड़ी वाला, **सुतसोमस्य** –सोमरस को निचोड़ने वाले।

अनुवाद –जो समृद्धिशाली व्यक्ति को प्रेरणा देने वाला है, जो निर्धन को प्रेरणा देने वाला है, जो याचना करने वाले और स्तुति करने वाले ब्राह्मण को प्रेरणा देने वाला है और सुन्दर ठोड़ी वाला जो अभिषव करने के लिए पत्थरों को उद्यत किए हुए सोमरस को निचोड़ने वाले यजमान की रक्षा करता है, हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

रध्रस्य –'रध हिंसासंराद्धयो' धातु से 'र' प्रत्यय।

नाधमानस्य –नाधृ+शानच् (मुक् का आगम)। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

कीरेः –कृ अथवा कीर्त धातु से 'इ' प्रत्यय। वैदिक रूप।

संहिता–पाठ

7. यस्याष्वासः प्रदिषियस्य गावोयस्य ग्रामा यस्य विष्वेरथासः।

यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – अस्य प्रदिशि अष्वासः, यस्य गावः, यस्य ग्रामाः, यस्य विष्वे रथासः, यः सूर्यम् यः उषसम जजान, यः अपाम् नेता, जनासः। स इन्द्रः।

शब्दार्थ – अष्वासः –घोड़ें है, **प्रदिशि** –अनुशासन में, **विष्वे** –सब, **रथासः** –रथ हैं, **जजान** –उत्पन्न किया था, **अपाम् नेता** –मेघों में से जलों का लाने वाला।

अनुवाद –जिसके अनुशासन में घोड़े रहते है, जिसके अनुशासन में गौयें रहती है, जिसके अनुशासन में गाँव रहते है, जिसके अनुशासन में सब रथ रहते हैं, जिसने सूर्य को और जिसने उषा को उत्पन्न किया था एवं जो मेघों में से जलों का लाने वाला है, हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

अश्वासः, रथासः –प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। वैदिक रूप हैं। लोक में अश्वाः रथाः इस प्रकार से रूप होंगे।

प्रदिशि –प्र+दिश्+क्वित्। सप्तमी विभक्ति का एकवचन।

जजान –अन्तर्मावित ण्यर्थ जन् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. इन्द्र देवता का स्थान क्या है?

    प्र॰2. इन्द्र का अस्त्र है?

    प्र॰3. इन्द्र की उत्पत्ति कहां से मानी गयी है?

    प्र॰4. पुरन्दर किसका विशेषता है?

7.4 मन्त्र संख्या 8–15 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

8. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – क्रन्दसी संयती यम् विह्वयेते। परे अवरे उभयाः अमित्राः। समानम् चित् रथम् आतस्थिवांसा नाना हवेते। जनासः। स इन्द्रः।

शब्दार्थ – क्रन्दसि –द्युलोक और पृथिवी लोक, शोर करती हुई दो सेनाएं। **संयती** –मिल कर, **विह्वयते** –आह्वाहन करती हैं, **परे** –उत्तम, **अवरे** –अधम, **उभया** –दोनों प्रकार के, **अमित्राः** –शत्रु, **आतस्थिवांसा** –बैठे हुए, **नाना** –अनेक प्रकार से, **हवेते** –पुकारे जाते हैं।

अनुवाद –शब्द करते हुए द्युलोक और पृथिवी लोक मिल कर जिसका अपनी रक्षा के लिए आह्वान करते हैं अथवा शोर करती हुई परस्पर युद्ध के लिए सामने खड़ी दो सेनाएं सहायता के लिए जिसको पुकारती हैं उत्तम और अधम दोनों प्रकार के शत्रु जिसका आह्वान करते हैं, इन्द्र के रथ के समान रथ पर बैठे हुए दोनों पक्ष अनेक प्रकार से जिस का आह्वान करते हैं एक ही रथ पर बैठे हुए इन्द्र और अग्नि यज्ञ के लिए यजमानों द्वारा पुकारे जाते हैं, असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

क्रन्दसी –'क्रदि' धातु से निपातनात् वैदिक रूप।

विह्वयेते –'वि+ह्वेञ्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, द्विवचन (आत्मनेपद)।

आतस्थिवांसा –आ+स्था+क्वसु। प्रथमा का द्विवचन।

संहिता–पाठ

9. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।

यो विष्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते, युध्यमानाः अवसे यम् हवन्ते, यः विष्वस्य प्रतिमानम् बभूव, यः अच्युतच्युत्, जनासः! स इन्द्रः।

शब्दार्थ – ऋते –बिना, **विजयन्ते** –विजय प्राप्त करते हैं, **अवसे** –रक्षा के लिए, **हवन्ते** –आह्वान करते हैं, **प्रतिमानम्** –प्रतिनिधि, रक्षक, **अच्युतच्युत्** –क्षय रहित पर्वतों का विनाश करने वाला, अचल को चल बनाने वाला।

अनुवाद –जिस इन्द्र के बिना मनुष्य विजय को प्राप्त नहीं करते, युद्ध करते हुए सैनिक अपनी रक्षा के लिए जिसका आह्वान करते हैं, जो सम्पूर्ण जगत् का प्रतिनिधि या रक्षक है, जो क्षय रहित पर्वतों का भी विनाश करने वाला है अथवा अचल को भी चल बनाने वाला है, हे असुरो वही इन्द्र है।

व्याकरण

यस्माद् ऋते –'ऋते' के योग में पंचमी विभक्ति है।

हवन्ते –'ह्वेञ्' या 'हू' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

प्रतिमानम् –प्रति+मा+ल्युट् (अन)।

अच्युतच्युत् –अच्युतानां च्यावयिता। च्यु+क्त=च्युत। न+च्युत=अच्युत। च्यु+क्विप्=च्युत्।

संहिता–पाठ

10. यः शष्वतो मह्येनो दधानान् अमन्यमानांछर्वा जघान।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता सः जनास इन्द्रः।।

अन्वय – यः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् शष्वतः शर्वा जघान, यः शर्धते शृध्याम् न अनुददाति, यः दस्योः हन्ता, जनासः! स इन्द्रः।

शब्दार्थ – शष्वतः –बहुतों का, **महि** –महान्, अत्यधिक, **एनः** –पाप को, **दधानान्** –धारण करने वाले, **अमन्यमानान्** –अवज्ञा करने वाले, **शर्वा** –वज्र से, **जघान** –वध कर दिया था, **शर्धते** –हिंसा करने वाले को, चुनौती देने वाले को, **शृध्याम्** –उत्साह से युक्त कर्म, **हन्ता** –मारने वाला।

अनुवाद –जिसने अत्यधिक पाप को धारण करने वाले और अवज्ञा करने वाले बहुत से व्यक्तियों का बज्र से वध कर दिया था, जो हिंसा करने वाले या चुनौती देने वाले व्यक्तियों को उत्साह से युक्त कर्म को नहीं देता है, जो दस्युओं को मारने वाला है, हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

दधानान् –धा+शानच्। द्वितीया का बहुवचन।

शर्धते –शृधु (शृध्)+शतृ=शर्धत् चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

शृध्याम् –शृध् √ क्यप्+टाप्=शृध्या।

शर्वा –'शरु' शब्द, तृतीया विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

11. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वरिंष्यां शरद्यन्वविन्दत्।

ओजायमानं यो अहिं जघान दानं श्यानं स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – यः पर्वतेषु क्षियन्तम् शम्बरम् चत्वारिंष्याम् शरदि अन्वविन्दत्, यः ओजायमानम् अहिम् दानुम् शयानम् जघान, जनासः। सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – शम्बरम् –शम्बर नाम के असुर को, **क्षियन्तम्** –निवास करने वाले, **चत्वारिंष्याम्** –चालीसवीं, **शरदि** –शरद ऋतु में, **अन्वविन्दत्** –खोज कर पा लिया था, **ओजायमानम्** –बल का प्रदर्शन करते हुए, **अहिम्** –प्रहार करने वाले, **दानुम्** –दनु के पुत्र असुर को, **शयानम्** –सोते हुए को, लेटे हुए को।

अनुवाद –जिसने अपने डर से पर्वतों में छिप कर निवास करने वाले शम्बर नाम के असुर को चालीसवीं शरद् ऋतु में (चालीसवें वर्ष में) खोज कर पा लिया था और जिसने बल का प्रदर्शन करते हुए, प्रहार करने वाले उस दनु के पुत्र असुर को सोते हुए को या लेटे हुए को मार डाला था, हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

क्षियन्तम् –क्षि+शतृ=क्षियत्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

ओजायमानम् –ओजस्+क्यङ्+शानच्=ओजायमान। ओजसोऽप्सरसो नित्यम् से 'स्' का लोप।

दानुम् –दनोः अपत्यम् अर्थ में दनु+अण्।

संहिता–पाठ

12. यः सप्तरष्मिर्वृषभस्तुर्वेष्मान् अवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहर् द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – सप्तरष्मिः वृषभः तुविष्मान् यः सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्, वज्रबाहुः यः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम् अस्फुरत्, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – सप्तरश्मिः –सात प्रकार के मेघों का नियन्ता, **वृषभः** –वर्षा करने वाला, **तुविष्यमान्** –शक्तिशाली, बुद्धिमान्, **अवासृजत्** –प्रवाहित किया था, **सर्तवे** –बहने के लिए, **सप्त** –बहने वाले, **सिन्धून्** –जलों को, **रौहिणम्** –रौहिण नाम के असुर को, **अस्फुरत्** –मारा था, **वज्रबाहुः** –वज्र को बाहु में उठा कर, **आरोहन्तम्** –चढ़ते हुए।

अनुवाद –सात प्रकार के मेघों के नियन्ता, वर्षा करने वाले, शक्तिशाली या बुद्धिमान् जिसने बहने के स्वभाव वाले जलों को बहने के लिए प्रवाहित किया था और वज्र को बाहु में उठा कर जिस इन्द्र ने द्युलोक में चढ़ने हुए रौहिण नाम के असुर को मारा था, हे असुरो! वही इन्द्र है।

व्याकरण

तुविष्मान् –'तु गतौ' धातु से 'असुच्' प्रत्यय =तुविष्। तुविष्+मतुप्।

सर्तवेः –'सृ' धातु से 'तुमुन्' के अर्थ में वैदिक प्रयोग।

संहिता–पाठ

13. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।

यः सौमपा निचितो वज्रबाहुर यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – अस्मै द्यावा चित् पृथिवी नमेते, अस्य शुष्मात् पर्वताः वित् भयन्ते। यः सोमपा निचितः वज्रबाहुः यः वज्रहस्तः, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – नमेते –प्रणाम करने के लिए झुक जाते हैं, **शुष्मात्** –बल से, **भयन्ते** –भय खाते हैं, **सोमपाः** –सोमरस पान करने वाला, **निचितः** –दृढ अंगों वाला, **वज्रबाहुः** –वज्र के समान कठोर भुजा वाला, **वज्रहस्तः** –वज्र को हाथ में धारण करने वाला।

अनुवाद –इस इन्द्र के लिए द्युलोक और पृथिवी लोक भी प्रणाम करने के लिए स्वयं झुक जाते हैं। इसके बल से पर्वत भी भय खाते हैं। जो इन्द्र सोमरस का पान करने वाला है, दृढ़ अंगों वाला है, वज्र के समान कठोर भुजाओं वाला है और जो हाथ में वज्र को धारण किए हुए है, हे असुरो! वही इन्द्र हैं।

व्याकरण

द्यावाविदस्मै पृथिवी –द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिवी। द्वन्द्व समास। वैदिक व्यत्यय के अनुसार समस्त पदों के बीच में 'चिदस्मै' पद आ गए हैं।

भयन्ते –'भी भये' धातु का लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन में वैदिक प्रयोग। लोक में 'बिभ्यति' रूप होगा।

सोमपाः –सोमं पिबति अर्थ में सोम+पा+क्विप्।

निचितः –नि+चि+क्त।

संहिता–पाठ

14. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमुती।

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः।।

अन्वय – यः सुन्वन्तम् अवति, यः पचन्तम्, यः ऊती शंसन्तम्, यः शशमानम्, ब्रह्म यस्य वर्धनम्, यस्य सोम, यस्य इदम् राधः, जनासः सः इन्द्रः।

शब्दार्थ – सुन्वन्तम् –सोम रस निकालने वाले को, **अवति** –रक्षा करता है, **पचन्तम्** –हवियों को पकाने वाले की, **शंसन्तम्** –स्तुति करने वाले की, **शशमानम्** –स्तोत्र पढ़ने वाले की, यज्ञ करने वाले की, **ऊती** –रक्षा करने के लिए, **ब्रह्म** –ब्रह्म नामक स्तोत्र, **वर्धनम्** –बढ़ाने वाला, **राधः** –पुरोडाश आदि अन्न।

अनुवाद –जो सोम का रस निकालने वाले यजमान की रक्षा करता है, जो पुरोडाश आदि हवियों को पकाने वाले यजमान की रक्षा करता है, जो रक्षा करने के लिए स्तुति करने वाले यजमान की रक्षा करता है, जो स्तोत्र पढ़ने वाला या यज्ञ करने वाले यजमान की रक्षा करता है, वृद्धि करने वाले ब्रह्म नामक स्तोत्र जिसको बढ़ाते है, सोम रस जिसका बढ़ाने वाला है, यह सब पुरोडाश आदि अन्न जिसके हैं, हे असुरो! वही इन्द्र हैं।

व्याकरण

सुन्वन्तम् –सु+शतृ (श्नु का आगम और नु के उ को व्), द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

शशमानम् –शम्+कानच्।

ऊती –'अव रक्षणे' धातु से क्तिन्, प्रत्यय और निपातनात् 'ऊति' चतुर्थी का एकवचन वैदिक रूप।

संहिता–पाठ

15. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।

वयं त इन्द्र विष्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम।।

अन्वय – दुध्रः य सुन्वते पचते चित् वाजम् आदर्दर्षि, किल सः सत्यः असि। इन्द्रः वयम् ते प्रियासः सुवीरासः विष्वह विदथम् आ वदेम।

शब्दार्थ – सुन्वते –सोम का अभिषव करने वाले के लिए, **पचते** –हवियों को पकाने वाले के लिए, **दुध्रः** –दुर्धर, असह्य प्रभाव वाला, **वाजम्** –बल, अन्न, **दर्दर्षि** –देता है, **विष्वह** –सब दिनों में, **प्रियासः** –प्रिय होते हुए, **सुवीरासः** –उत्तर पुत्र–पौत्रों से युक्त होते हुए, **विदथम्** –स्तुति को, **आवदेम** –अच्छी प्रकार से गाते रहें।

अनुवाद –दुर्धर अर्थात् असह्य प्रभाव वाला होता हुआ जो इन्द्र सोम अभिषव करने वाले और पुरोडाश आदि हवियों को पकाने वाले यजमान के लिए बल को या अन्न को प्रदान करता है, निश्चय से वह तू सत्य ही है, अर्थात् तेरी सत्ता वास्तविक है। हे इन्द्र हम तुम्हारे प्रिय होते हुए उत्तम पुत्र–पोत्रों से युक्त होते हुए सब दिनों में अर्थात् सदा तुम्हारी स्तुति को अच्छी प्रकार से गाते रहें।

व्याकरण

सुन्वते, पचते –सु+श्नु+शतृ, पच्+शप्+शतृ। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

दुध्रः –दुर्+धृ+क (अ)। निपातनात् 'दुर्' के 'र्' का लोप।

दर्दर्षि –यङ्. लुगन्त 'दृ' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विष्वह –विश्वानि अहानि अर्थ में छान्दस रूप।

विदथम् –'विद्' धातु वैदिक निपातनात् रूप बना।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  प्र॰1. इन्द्र का प्रिय पेय क्या है?

  प्र॰2. वैदिक आर्यों के प्रिय देवता कौन हैं?

  प्र॰3. इन्द्र की स्तुति ऋग्वेद के कितने सूक्तों में है?

  प्र॰4. इन्द्र को किसका मित्र कहा गया है?

  प्र॰5. इन्द्र ने किसका वध किया था?

  प्र॰6. ऋग्वेद के कितने सूक्तों में इन्द्र की स्तुति की गई है?

7.5 सारांष

इन्द्र को ऋग्वेद में सबसे प्रमुख देवता कहा गया है क्योंकि इनकी स्तुति लगभग 250 सूक्तों में की गयी है। इन्द्र अपने महान् गुणों के लिए जाने जाते हैं– महान् कार्यों को पूर्ण करने की शक्ति, पराक्रम तथा असुरों को युद्ध में जीतना। द्यौ को इनका पिता कहा है– 'द्यौरिन्द्रस्य कर्ता'। कहीं पर देवशिल्पी त्वष्टा को इनका पिता कहा है। इनकी माता का नाम– 'निष्टिग्री' है। पुरुष सूक्त के अनुसार इनकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के मुख से बताई है– 'मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च'। यास्काचार्य ने इन्द्र के लिए निरुक्तियां दी हैं–

1. 'इरां दृणाति दारयते वा' – जो अनाज को बीज रूप में अंकुरित करने के लिए तोड़ता है।
2. इन्दवे द्रवति– इन्द्र सोमरस के लिए दौड़ता है।
3. इन्दौरमते– सोररस के लिए प्रसन्न रहने वाला।

इन्द्र के स्वरूप का उल्लेख किया गया है कि यह भूरे रंग के हैं, इनके बाल व दाढ़ी भूरी है। वे सुशिप्र (सुन्दर ठोडी वाला) व लोहे के समान शक्तिशाली व वज्र के समान भुजाओं वाले हैं। अतः इन्द्र को वज्रबाहुः भी कहा है। इन्द्र के अनेक विशेषण हैं– वृत्रहा, सुशिप्र, वज्री, शक्र, पुरन्दर, वज्रहस्त, मरुत्वान्, मरुत्सखा, वज्रबाहु, हरिकेश, हिरण्यबाहु, चित्रभानु, पुरुहूत, वृषा, शचीपति, सोमपा, वसुपति, वज्रिन, शतक्रतु, मनस्वान्। वज्र इन्द्र का अस्त्र है जो देवशिल्पी त्वष्टा द्वारा निर्मित है।

इन्द्र सर्वशक्तिशाली हैं जिन्हें शक्र, शचीपति या शचीवान् कहा है। सैंकड़ों कार्य करने के कारण इसे शतक्रतु कहा है। सोम इनका प्रिय पेय होने के कारण इनको सोमपा की संज्ञा दी है– 'यो सोमपा

निचितो वज्रबाहुः'। इसने कांपती हुयी पृथ्वी को तथा पर्वतों उड़ते हुये पर्वतों को स्थिर किया था। इन्द्र का सबसे शोर्यपूर्ण कार्य वृत्र का वध है जिस कारण इसको वृत्रहा कहा गया है।

7.6 कठिन शब्दावली

रोदसी –द्युलोक और पृथिवी लोक

जिगीवान् –जीत लिया है

प्रदिषि –अनुशासन में

अवसे –रक्षा के लिए

वृषभः –वर्षा करने वाला

क्रतुना –यज्ञ से

जजान –उत्पन्न किया

क्रन्दसी –शोर करती हुयी दो सेनायें

जघन –वध कर दिया था

7.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

उ॰1. अन्तरिक्ष

उ॰2. वज्र

उ॰3. विराट् पुरुष के मुख से

उ॰4. इन्द्र का

स्वयं आंकलन प्रष्न 2

उ॰1. सोम

उ॰2. इन्द्र

उ॰3. 250 सूक्तों में

उ॰4. मरुत् का

उ॰5. वृत्र का

उ॰6. 250 सूक्तों में

7.8 अनुशंसित–ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।

6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

7.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. इन्द्र सूक्त का सार लिखें।
2. इन्द्र के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्.............................. मृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।
4. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो.......................... अपां नेता स जनास इन्द्रः।। इस मन्त्र की व्याख्या कीजिए।
5. यं क्रन्दसी संयती......................... नाना हवेते स जनास इन्द्रः।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।

इकाई – 8

उषस् सूक्त (3.61)

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3उषस् सूक्तमन्त्र संख्या 1–7 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

8.4 सारांष

8.5 कठिन शब्दावली

8.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

8.7अनुषंसित ग्रन्थ

8.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में उषस् सूक्त का वर्णन किया गया है। यह ऋग्वेद के तीसरे मण्डल का 61वां सूक्त है। उषस् सूक्त के ऋषि विश्वामित्र, देवता उषस् तथा त्रिष्टुप छन्द है। ऋग्वेद के लगभग 20 सूक्तों में उषा की स्तुति की गयी है। उन्हें सौन्दर्य की देवी कहा गया है, क्योंकि उनके उदय होते ही आकाश जगमगा उठता है। इसे सूर्य की प्रेयसी कहा गया है। अर्थात् वह पुराणी युवती होते हुये भी एक नई नवेली युवती दिखायी देती है। वह एक नर्तकी के समान अलंकृत होकर चमकीले वस्त्र धारण करके पूर्व दिशा में अपना आकर्षक रूप दिखाती है और सूर्य देव एक रसिक के समान उषा देवी का अनुगमन करते हैं। उन्हें रात्रि की छोटी बहन कहा जाता है। आकाश में उत्पन्न होने के कारण इन्हें स्वर्ग की पुत्री भी कहा गया है। उषा प्रत्येक प्राणी को अपने कार्यों में प्रवृत्त कर देती हैं।

8.2 उद्देश्य

1. उषा सूक्त वैदिक कवियों की एक मनोरम कल्पना है।
2. उषा सूक्त ऋग्वेद के उत्कृष्ट काव्य का प्रतिनिधित्व करता है।
3. उषा देवी को आकाश की पुत्री कहा गया है क्योंकि वह प्रकाश रूपी वस्त्रों से आवृत्त होकर पूर्व दिशा में प्रकट होती हैं– एषा देवो दुहिता प्रत्यदर्षि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् (ऋग्वेद 1.124.3)।
4. उषा को सबकी प्राण और जीवन रूप बताया गया है– विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे (ऋग्वेद, 1.48. 10)।

5. उषा (प्रातःकाल) को रात्रि की छोटी बहन कहा गया है जो आकाश के अन्धकार को दूर करके सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश से जगमगा देती है।

8.3उषस् सूक्त मन्त्र संख्या 1–7 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

उषस् सूक्त (मण्डल 1, सूक्त 61)

ऋषि – विश्वामित्र, देवता – उषस्, छन्द – त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।

पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विष्ववारे।।

अन्वय – वाजेन वाजिनि मघोनि उषः। प्रचेताः गृणतः स्तोमम् जुषस्व। विश्ववारे देवि! पुराणी युवतिः पुरन्धिः व्रतम् अनुचरसि।

शब्दार्थ – वाजेन –अन्न से, **वाजिनि** –अन्नवती, **प्रचेताः** –प्रकृष्टज्ञान वाली, **स्तोमम्** –स्तोत्र को, **जुषस्व** –पुरातनी, **गृणतः** –स्तुति करने वाले के, **मघोनि** –धन से सम्पन्न, **पुराणी** –पुरातनी, **पुरंधिः** –बहुत अधिक बुद्धिशालिनी, **अनुव्रतम्** –व्रत आदि नियमों को लक्ष्य करके, **चरसि** –विचरण करती हो, **विश्ववारे** –विश्व के द्वारा वरणीय।

अनुवाद –अन्न से अन्नवती हुई और धन से सम्पन्न हे उषा देवी! तुम प्रकृष्ट ज्ञानी वाली होती हुई स्तुति करने वाले के स्तोत्र को ग्रहण करो। सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे उषा देवी तुम पुरातनी युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशालिनी हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात् उनका पालन करती हो।

व्याकरण

वाजिनि –वाजः अस्य अस्ति अर्थ में वाज+इनि+ङ्.ीप्। सम्बोधन का एकवचन।

गृणतः –गृ+श्ना+शतृ। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

मघोनि –'मघ' शब्द से 'मतुप्' के अर्थ में वैदिक 'वनिन्' प्रत्यय। 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण और 'ऋन्नेभ्यो ङ्.ीप्' से ङ्.ीप् = मघोनी। सम्बोधन का एकवचन।

पुरंधिः –पुरम् धीः = यस्याः अर्थ में 'कि' प्रत्यय। अथवा पुरु धीः यस्याः अर्थ में ''पुषोदरादित्वात्'' नियम से 'पुरु' को 'पुरम्' आदेश।

विश्ववारे –विश्व+वृ+ण (अ)+टाप्। सम्बोधन का एकवचन।

संहिता–पाठ

2. उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सनृता ईरयन्ती।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये।।

अन्वय – उषः देवि! अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृताः ईरयन्ती विभाहि। पृथुवाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरण्यवर्णाम् त्वा आवहन्तु।

शब्दार्थ – देवि –दिव्य गुण वाली, **अमर्त्या –**मरण धर्म से रहित, **विभाहि –**विशेष रूप से शोभामान बनो, **चन्द्ररथा** –सुवर्णमय रथ पर आरूढ, **सूनृताः** –प्रिय सत्य वाणी को, **ईरयन्ती** –उच्चारण करती हुई, **सुयमासः** –अच्छी प्रकार से नियन्त्रित, **हिरण्यवर्णाम्** –स्वर्ण के समान दीप्तिमान्, **पृथुपाजसः** –अत्यधिक बलशाली।

अनुवाद –हे उषा देविः! दिव्य गुणों वाली तुम मरण धर्म से रहित होती हुई, सुवर्णामय रथ पर आरूढ होती हुई, प्रिय और सत्य वाणियों का उच्चारण करती हुई सूर्य–किरणों के सम्बन्ध से विशेष रूप से शोभमान बनो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियन्त्रित जो तुम्हारे अरुण वर्ण घोड़े हैं, वे स्वर्ण के समान दीप्तिमान् तुमको हमारे सम्मुख लावे।

व्याकरण

ईरयन्ती –ईर्+णिच्+शतृ+ङीप्।

सूनृता –सु+ऋत+टाप् (नुट् का आगम और दीर्घ)।

सुयमासः –सु+यम्+खल्=सुयम। प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप।

संहिता–पाठ

3. उषः प्रतीची भुवनानि विष्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।

समानमर्थ चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व।।

अन्वय – उष! विश्वा भुवनानि प्रतीची अमृतस्य केतुः ऊर्ध्वा तिष्ठसि। नव्यसि! समानम् अर्थम् चरणीयमाना चक्रम् इव आववृत्स्व।

शब्दार्थ – प्रतीची –सम्मुख जाती हुई, **भुवनानि विश्वा** –सम्पूर्ण लोकों के, **ऊर्ध्वा** –ऊपर आकाश में, **तिष्ठसि** –स्थिति होती हो, **अमृतस्य** –मरण से रहित सूर्य की, **केतुः** –ध्वजा, बोधन कराने वाली, **समानम् अर्थम्** –एक ही मार्ग पर, **चरणीयमाना** –विचरण करती हुई, **चक्रम् इव** –चक्र के समान, **नव्यसि** –सदा नवीन रहने वाली, **अववृत्स्व** –पुनः पुनः घूमती रहो।

अनुवाद –हे उषा देवी! तुम सम्पूर्ण लोकों के सम्मुख जाती हुई मरण–धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात् उसका बोधन कराने वाली ऊपर आकाश में स्थित होती हो। सदा नवीन रहने वाली हे उषा! तुम एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के पहिए के चक्र के समान पुनः घूमती रहो।

व्याकरण

प्रतीची –प्रति+अंचु+क्विन्। ''अंचतेश्चोपसंख्यानम्'' से ङीप्। 'अंच्' के 'अ' औरु 'ञ्' का लोप तथा 'प्रति' के 'ई' को दीर्घ।

चरणीयमाना –'चरणम् इच्छति' अर्थ में चरण+क्यच्+शानच्+टाप्।

केतुः –'चाय् पूजायाम्' धातु से चाय्+तुन्। 'चाय' को 'की' आदेश और गुण।

नव्यसि –नव+ईयसुन्+ङीप्। 'नव' के 'अ' और प्रत्यय के 'ई' का वैदिक।

लोप –नव्यसी। सम्बोधन का एक वचन।

संहिता–पाठ

4. अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्व र्जनन्ती सुभगा सुदसा आन्तादि्दवः पप्रथ आ पृथिव्याः।।

अन्वय – मघोनी स्वसरस्य पत्नी उषाः स्यूम इव अवचिन्वती याति। स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसाः दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः आ पप्रथे।

शब्दार्थ – स्यूम् इव = वस्त्र के समान, **अव चिन्वती** –आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई, **मघोनी** –धन सम्पत्ति शालिनी, **स्वसरस्य** –सूर्य की, दिन की, **स्वः जनन्ती** –तेज को उत्पन्न करती हुई, स्वर्ग को सजीव करती हुई, **सुभगा** –सुन्दर धनों वाली, **सुदंसा** –सुन्दर यज्ञ रूप कर्मों वाली, **दिवः आ अन्तात्** –द्युलोक के अन्तिम किनारे से, **आ पृथिव्याः** –पृथिवी के अन्तिम किनारे तक, **आ पप्रथे** –फैल जाती है।

अनुवाद –धनसम्पत्तिशालिनी सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र के से अन्धकार को फैंकती हुई चली जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई अथवा स्वर्ग को सजीव करती हुई, सुन्दर यज्ञ रूप कर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथिवी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

व्याकरण

स्यूम –षिवु तन्तुसन्ताने धातु से मन् प्रत्यय। सिव्+म। 'सिव्' के 'व्' को ''च्छ्वोः शूडनुनासिके च'' से ऊठ् और 'इ' को 'यणादेश'। स्यूम। द्वितीया विभक्ति का एकवचन वैदिक रूप।

स्वसरस्य –'सुष्ठु अस्यति क्षिपाते तमः' अर्थ में 'सु+अस' से 'अरक्' प्रत्यय = स्वसर। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

जनन्ती –णिजन्त 'जन्' धातु से शतृ। 'छन्दस्युमयथा'' से 'णिच्' का लोप।

संहिता–पाठ

5. अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्।।

अन्वय – वः अच्छ विभातीम् देवीम् उषसम् वः नमसा सुवृक्तिम् प्रभरध्वम्। मधुधा दिवि ऊर्ध्वम् पाजः अश्रेत् रण्वसंदृक् रोचना प्ररुरुचे।

शब्दार्थ – अच्छ – स्वच्छ रूप से, **विभातीम्** –प्रकाशित होती हुई, **प्रभरध्वम्** –करो, **नमसा** –नमस्कार के द्वारा, **सुवृक्तिम्** –उत्तम स्तुति, **ऊर्ध्वम्** –ऊर्ध्व अभिमुख होकर, **मधुधा** –स्तुति, सोम या आदित्य को धारण करने वाली, **पाजः** –तेज, बल, **अश्रेत्** –आश्रय लेती है, **रण्वसंदृक्** –दर्शन वाली, **रोचना** –प्रकाशित होने वाले लोकों को, **प्ररुरुचे** –अतिशय रूप से प्रकाशित करती है।

अनुवाद –हे स्तुति करने वालो! तुम्हारे सामने स्वच्छ रूप से प्रकाशित होती हुई देवी उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो। मधु अर्थात् स्तुतियों को या सोम को अथवा आदित्य को धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक में ऊर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेती है और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोकों को अपने तेज से अतिशय रूप से प्रकाशित करती है।

व्याकरण

विभातीम् –वि+भा+शतृ+ङीप्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन। यहाँ लोक में विभान्तीम् रूप से बन सकता है।

सुवृक्तिम् –सु पूर्वक 'वृजी वर्जने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय।

अश्रेत् –श्रिञ्' धातु, अर्थ में मधु+धा+क्विप्।

रण्वसंदृक् –रवि (रण्व्) + अच् = रण्व। सम्+दृश्+क्विप्+संदृक्। रण्वं संदृक् यस्याः सा =रण्वसंदृक्।

संहिता–पाठ

6. ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।

आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविण भिक्षमाणः।।

अन्वय – ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि, रेवती रोदसी चित्रम् या अस्थात्। अग्ने! आयतीम् विभातीम् उषसम् भिक्षमाणः वामम् द्रविणम् एषि।

शब्दार्थ – ऋतावरी –सत्य से युक्त, सत्य नियमों का पालन कराने वाली, **अर्कैः** –तेजः पुंज से, **अबोधि** –जानी जाती है, **रेवती** –धन से युक्त, **चित्रम्** –नाना प्रकार के रूपों से युक्त, **आ अस्थात्** –व्याप्त करके स्थित होती है, **आयतीम्** –अपनी ओर आती हुई, **विभातीम्** –प्रकाशमान, **वामम्** –अभीष्ट, बांटने योग्य, **एषि** –प्राप्त करते ही, **द्रविणम्** –धन, हवि, **भिक्षमाणः** –याचना करते हुए।

अनुवाद –सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन कराने वाली उषा देवी द्युलोक से आने वाले अपने तेजःपुंज से जानी जाती है। धन से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथिवी लोक को नाना प्रकार के रूपों से युक्त होकर व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता! अपनी ओर आती हुई प्रकाशमान उषा देवी से हवि की याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बांटने के योग्य धन को प्राप्त करते हो।

व्याकरण

ऋतावरी –ऋत+वृ+ट (अ)+टाप्। 'त' के 'अ' को वैदिक दीर्घ। अथवा ऋत+वनिन्+ङीप्। ''वनो र च'' से 'न्' को 'र' आदेश।

रेवती –रयि+मतुप्+ङीप् ''रयेर्मतौ छन्दसि'' सूत्र से 'य्' को सम्प्रसारण, पूर्वरूप और गुण होते हैं। 'मतुप्' के 'म्' को 'व' आदेश ''छन्दसीरः'' (पा० 8/2/15) से हुआ।

आयतीम् –आ+इण् गतौ+शतृ+ङीप्। 'इ' यो 'य्' आदेश।

संहिता–पाठ

7. ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा।।

अन्वय – वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन् मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुम् पुरुत्रा विदधे।

शब्दार्थ – ऋतस्य –प्राकृतिक नियमों का, अग्नि होत्र आदि नित्य नियमों का, **बुध्ने** –मूल में, **इषण्यन्** –प्रेरित करता हुआ, चाहता हुआ, **वृषा** –वर्षा करने वाला सूर्य, **मही** –महान्, **आविवेश** –सब ओर से प्रविष्ट हो गया है, **महीमाया** –महती माया, विचित्र शक्ति रूपा उषा देवी, **चन्द्रा इव** –सुनहरी कान्ति के समान, **भानुम्** –सूर्य को, **विदधे** –प्रसारित करती है, **पुरुत्रा** –बहुत से स्थानों में।

अनुवाद –वर्षा करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों के अथवा अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभूत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या उसको चाहता हुआ महान् द्युलोक और पृथिवी लोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया अर्थात् व्याप्त हो गया। मित्र देवता और वरुण देवता की महती माया अर्थात् विचित्र शक्ति रूपा उषा देवी सुनहली कान्ति के समान स्वर्णिम सूर्य को बहुत स्थानों में प्रसारित करती है।

व्याकरण

बुध्ने –बुध्+नङ् =बुध्न। सप्तमी विभक्ति का एकवचन।

इषण्यन् –इच्छति इति इषन्। 'इषन्तमात्मानम् इच्छति' अर्थ में निपातित 'इषण्य्' धातु से शतृ प्रत्यय।

वृषा –वृष्+कनिन् (अन्)=वृषन्।

मही –महत्+ङीप् ('अत्' का वैदिक लोप)।

पुरुत्रा –'पुरु' शब्द से ''देवमनुष्यपुरुष०'' सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. ऋग्वेद के उषा सूक्त के देवता, ऋषि व छन्द कौन हैं?

    प्र॰2. उषा देवी की स्तुति ऋग्वेद के कितने सूक्तों में की गई है?

    प्र॰3. विश्ववारा का क्या अर्थ होता है?

प्र॰4. मघोनी का क्या अर्थ है?

प्र॰5. दुहितादिवः (आकाश से उत्पन्न) किसे कहा है?

प्र॰6. उषा शब्द वस् दीप्तौ धातु से निष्पन्न हुआ है उसका क्या अर्थ है?

प्र॰7. पुराण युवती से किसे सम्बोधित किया गया है?

प्र॰8. उषा को स्वर्ग पुत्री क्यों कहा गया है?

प्र॰9. उषस् सूक्त–61 ऋग्वेद के किस मण्डल से है?

प्र॰10. उषस् सूक्त में वाजिनि शब्द का क्या अर्थ है?

8.4 सारांष

प्रातः काल की देवी उषा द्युस्थानीय देवी हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद के लगभग के लगभग 20 सूक्तों में किया गया है। उषा शब्द वस् दीप्तौ धातु से व्युत्पन्न माना गया है, जिसका अर्थ है– प्रकाशित होना। यास्काचार्य ने उषा की व्युत्पत्ति 'उच्छ्–विवासे से मानी है अर्थात् जो अन्धेरे को समाप्त करती है। प्रकाश तथा सौन्दर्य की देवी उषा जिसका मानवीकरण की अपेक्षा भौतिक रूप ही अधिक स्पष्ट होता है। यह दिव्य वस्त्रों से अलंकृत एक नर्तकी के समान दिखायी देती हैं– अधि पेशांसि वपते नृतूखि (ऋग्वेद, 1.92.4) उषा को पुराणी युवती कहा गया है जो पुरातन होते हुये भी नवयुवती हैं– पुराणी देवी युवतिः (ऋग्वेद, 3.61.1)। उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनको विभिन्न स्थानों पर सूर्य की पत्नी, माता तथा बहन भी कहा गया है। सूर्य, उषा का उसी प्रकार अनुगमन करता है जिस प्रकार कोई पुरुष प्रेमिका का। उसे रात्रि की बड़ी बहन तथा द्यौस् की पुत्री बताया है। उषा के लिए मघोनी, प्रचेता, विश्ववारा, सुभगा, रेवती, मघवती, पुराणयुवती, अमर्त्या, विश्वोर्ध्वा, मधुधा, त्रत्तावरी, ओदती, सुम्नावरी, अश्ववती, गोमती, पुराणी, सूनरी, भास्वती, युवति, अमृत्यकेतु, दिवः दुहिता, सुजाता, ऋतपा, हिरण्यवर्णा– इन सब विशेषणों का प्रयोग किया गया है। उषा की स्तुति प्रायः प्रकाश, धन, पुत्र तथा दीर्घायु के लिए की गयी है। उषा की किरणें ही उसका रथ हैं और ये किरणें प्रातःकाल लाल रंग की होती हैं जो धीरे–धीरे सायंकाल को स्वर्णिम हो जाती हैं। यही कारण है कि इसके घोड़ों को लाल रंग तथा इसके रथ को स्वर्णिम बताया गया है। उषा को उदार कहा गया है क्योंकि वे अपने उपासकों को धन प्रदान करती हैं– ऐसा कहने का अभिप्राय है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाला व्यक्ति परिश्रमी होता है जिससे वह धनवान् होता है। अतः उषा मनुष्य के अन्दर नवस्फूर्ति, नवचेतना, नूतन आशा तथा उत्साह भर देने की सूचक हैं।

8.5 कठिन शब्दावली

मघोनी –धन समृद्धि सम्पन्न

प्रचेता –प्रकृष्ट ज्ञान वाली

पृथुपाजसः –अधिक शक्तिशाली

सूनृताः –प्रिय सत्य वाणी को

ईरयन्ती –उच्चारण करती हुई

केतुः –ध्वजा या बोधन कराने वाली

मधुधा –स्तुति, सोम या आदित्य को धारण करने वाली

ऋतावरी –सत्य से युक्त,सत्य नियमों का पालन करने वाली

रेवती –धन से युक्त

अच्छ –स्वच्छ रूप से

वाजेन –अन्न से

नण्यसि –सदा नवीन रहने वाली

अवप्रथे –फैल जाता है

विभातीम –प्रकाशित होती हुई

प्रतीची –सम्मुख जाती हुई

पुरंधिः –विवेकशालिनी

सुभगा –सुन्दर धनों वाली

विभाहि –विशेष रूप से शोभायमान

8.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

उ॰1. उषस्, विश्वामित्र व त्रिष्टुप छन्द

उ॰2. 20 सूक्तों में

उ॰3. सबके द्वारा वरण की जाने वाली

उ॰4. दानशील

उ॰5. उषा को

उ॰6. प्रकाशित होना

उ॰7. उषा को

उ॰8. आकाश से उत्पन्न होने के कारण

उ॰9. तीसरे मण्डल से

उ॰10. अन्नवती

8.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

8.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. उषस् के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. उषस् सूक्त का सारांश लिखिए।
3. उषा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
   पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे।। इस मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या करें।
5. उषः प्रचीती भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
   समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई – 9

सविता सूक्त (4.54)

संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3सविता सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

9.4 सारांष

9.5 कठिन शब्दावली

9.6स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

9.7अनुषंसित ग्रन्थ

9.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सविता सूक्त को लिया गया है। यह ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल का 54वाँ सूक्त है। इसके ऋषि वामदेव, देवता सविता, छन्द जगती एवं अन्तिम मन्त्र में त्रिष्टुप छन्द है। सविता देवता सूर्य देवता से बहुत समानता रखता है। परन्तु सविता और सूर्य अलग–अलग है। इनका स्वरूप आलोकमय और स्वर्णिम है। सविता दिन तथा रात्रि का स्वामी है। गायत्री मन्त्र में सविता की महिमा का गुणगान किया गया है।

9.2 उद्देष्य

1. सविता देवता का सूर्य से अधिक साम्य है जिस कारण इनको एक माना गया है। तथापि इसका रूप सूर्य से भिन्न कहा गया है।
2. सविता देवता का स्वरूप आलोकमय तथा स्वर्णिम है। सविता दिन और रात का स्वामी है।
3. पवित्र गायत्री मन्त्र में सविता देवता की महत्ता गाई गयी है।
4. वह स्वर्णमय भुजाओं के समान किरणों से आकाश को व्याप्त करके उदित होता है। यह दुःस्वप्नों को दूर भगाता है और दुर्भाग्य को दूर करता है।
5. सविता देवता नियमों का पालन करने वाला है। जल और वायु उसके आश्रित हैं।

9.3सविता सूक्त मन्त्र संख्या 1–6 तक (मूल, अन्वय, व्याख्या)

सविता सूक्त (मण्डल 4, सूक्त 54)

ऋषि – वामदेव, देवता – सविता, छन्द – जगती, अन्तिम मन्त्र में – त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. अभूददेवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।

वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत्।।

अन्वय – सविता देवः अभूत्। नु नः वन्द्यः। इदानीम् अह्नः नृभिः उपवाच्यः। यः मनवेभ्यः रत्ना विभजति। अत्र नः श्रेष्ठम् द्रविणम् यथा दधत्।

शब्दार्थ – अभूत् –उत्पन्न हुए हैं, **सविता** –संसार को कर्मों में प्रेरित करने वाला सविता, **वन्द्यः** –वन्दनीय है, **इदानीम्** –अब, इस यज्ञ के समय में, **अह्नः** –दिन के (तृतीय सवन में), **उपवाच्यः** –स्तुति किए जाते हैं, **रत्ना** –रत्नों को, रमणीय पदार्थों को, **विभजति** –वितरित करता है, **द्रविणम्** –धन को, **आ दधत्** –धारण करावे।

अनुवाद –संसार को कर्मों में प्रेरित करने वाले सविता देवता प्रादुर्भूत हुए हैं। शीघ्र ही वे हमारे लिए वन्दनीय हैं। इस समय यज्ञ–काल में और दिन के तृतीय सवन में हमारे होताओं द्वारा वे स्तुति किए जाते हैं। जो सविता देवता मनुष्यों के लिए रत्नों को अर्थात् रमणीय पदार्थों को वितरित करते हैं, वे यहाँ यज्ञ के अवसर पर हमारे लिए श्रेष्ठ धन को धारण करावें।

व्याकरण

सविता –षू (सू)+तृच् (इट् का आगम)।

उपवाच्यः –उप+ब्रू (वच् आदेश)+ण्यत्। ''ऋहलोर्ण्यत्'' सूत्र से उषधा वृद्धि।

रत्ना –रत्नानि का वैदिक रूप।

दधत् –'धा' धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

2. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।

आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीनाजीविता मानुषेभ्यः।।

अन्वय – हि सवितः! प्रथमम् अज्ञियेभ्यः देवेभ्यः अमृतत्वम् उत्तमम् भागम् सुवसि। आत् इत् दामानम् व्यूर्णुषे मानुषेभ्यः अनूचीना जीविता।

शब्दार्थ – यज्ञियेभ्यः –यज्ञ के भाग को प्राप्त करने वाले, **अमृतत्वम्** –अमरता को प्राप्त कराने वाले, **उत्तमम्** –सबसे उत्कृष्ट, **भागम्** –यज्ञ के भाग को, **सुवसि** –प्रदान करते हो, **आत् इत्** –इसके पश्चात्, **दामानम्** –हवि प्रदान करने वाले यजमान को, **व्यूर्णुषे** –प्रकाशित करते हों, **अनूचीना** –अनुक्रम युक्त, **जीविता** –जीवन।

अनुवाद –हे सविता देवता! तुम पहले तो यज्ञ के भाग को प्राप्त करने वाले देवताओं के लिए अमरता को प्राप्त कराने वाले सबसे उत्कृष्ट यज्ञ–भाग को प्रदान करते हो और उसके पश्चात् हवि प्रदान करने वाले यजमान को प्रकाशित करते हो तथा मनुष्यों के लिए अनुक्रम से युक्त अर्थात् पिता–पुत्र–पौत्र इस क्रम से जीवन को प्रकाशित करते हो अर्थात् जीवन प्रदान करते हो।

व्याकरण

यज्ञियेभ्यः –'यज्ञभागम् अर्हति' अर्थ में 'यज्ञ' शब्द से ''यज्ञर्त्विग्भ्याम्'' से घञ् प्रत्यय। 'घ' को इ इयादेश=यज्ञिय।

दामानम् –दा+मनिन्=दामन्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

अनूचीना –'अन्वग् भवा' अर्थ में अनु+अञ्च्+ख (ईन)=अनूचीन। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। लोक में 'अनूचीनानि' रूप होगा।

संहिता–पाठ

3. अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।

देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः।।

अन्वय – सवितः! दैव्ये जने देवेषु च मानुषेषु च अचित्ती दीनैः दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता यत् चकृम, अत्र त्वम् नः अनागसः सुवतात्।

शब्दार्थ – अचित्ति –अज्ञान से, **चकृम** –किया है (अपराध), **दैव्ये** –दिव्य गुणों से युक्त आपके प्रति, **जने** –जन्म धारण करने वाले आपके प्रति, **दीनैः** –दुर्बल, **दक्षैः** –चतुरता से युक्त, **प्रभूति** –ऐश्वर्य के मद से, **पुरुषत्वता** –पौरुष के मद से, **देवेषु** –देवताओं के प्रति, **मानुषेषु** –सांसारिक मनुष्यों के प्रति, **सुवतात्** –बना दीजिए, **अनागसः** –अपराध रहित।

अनुवाद –हे सविता देवता! हमने दिव्य गुणों से युक्त जन्म धारण करने वाले आपके प्रति और अन्य देवताओं के प्रति एवं सांसारिक मनुष्यों के प्रति अज्ञान से या दुर्बल अथवा बलशाली ऋत्विजों का पुत्र आदियों के द्वारा अथवा ऐश्वर्य के मद से अथवा पौरुष के मद से जो कुछ भी अपराध किया हैं, इस यज्ञ में आप हमें उन अपराधों से अपराध रहित बना दीजिए।

व्याकरण

अचित्ती –नञ्+चित्+क्तिन्। तृतीय विभक्ति का एकवचन, वैदिक रूप।

चकृम –'कृ' धातु लिट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन।

पुरुषत्वता –पुरुष+त्व+तल्+टाप्।

सुवतात् –'षू (सू)' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

4. न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।

यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्.गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत्।।

अन्वय – सवितुः दैव्यस्य तत् न प्रमिये यथा विश्वम् भुवनम् धारयिष्यति। स्वंगरिः पृथिव्याः वरिमन् यत् सुवति आ दिवः वर्ष्मन् अस्य तत् सत्यम्।

शब्दार्थ – प्रमिये –नष्ट होता है, **तत्** –वह जगत् धारण रूप कर्म, **दैव्यस्य** –देवता का, **यथा** –जिन कर्मों द्वारा, **धारयिष्यति** –धारण करता है, **वरिमन्** –श्रेष्ठता, उन्नति, **सु अंगुरिः** –सुन्दर किरणों रूपी अंगुलियों वाला, **वर्ष्मन्** –शरीर धारी, **सुवति** –प्रेरणा देता है।

अनुवाद –सबको उत्पन्न करने वाले या प्रेरणा देने वाले सविता देवता का वह जगत् धारण रूप कर्म कभी नष्ट नहीं होता, जिन कर्मों के द्वारा वह सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। शोभन किरणों रूपी अंगुलियों वाला वह सविता देवता श्रेष्ठता या उन्नति के लिए जो प्रेरणा देता है और उच्च लोकों के निवासी शरीरधारियों के लिए प्रेरणा देता है, इसका वह कर्म वस्तुतः सत्य है अर्थात् तीनों कालों में अबाध्य रूप से रहता है।

व्याकरण

प्रमिये –प्र+मीञ् हिंसायाम् से कृत्य प्रत्यय के अर्थ में 'केन्' प्रत्यय। 'इयङ्' आदेश होकर = प्रमिये।

वरिमन् –उरु+इमनिच्। 'उरु' को 'वर्' आदेश=वरिमन्।

स्वंगुरिः –शोभनाः अंगुरयो यस्य सः।

वर्ष्मन् –उरु+इमनिच्। 'उरु' को 'वर्ष्' आदेश और 'इमनिच्' के इ का लोप।

संहिता–पाठ

5. इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भयः पर्वतेभ्यः क्षयाँएभ्यः सुवसिपस्त्यावतः।

यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्युः सवितः सवाय ते।।

अन्वय – सवितः! इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भयः पर्वतेभ्यः सुवसि एभ्यः पस्त्यावतः क्षयान्। यथा यथा पतयन्तः वियेमिरे एव एव ते सवाय तस्थुः।

शब्दार्थ – इन्द्रज्येष्ठान् –परम ऐश्वर्य से युक्त तुम जिनके पूजनीय हो, इन्द्र जिनका पूजनीय है, **सुवसि** –प्रेरणा देते हो, **क्षयान्** –निवास स्थानों को, **पस्त्यवतः** –घरों से युक्त, **यथा यथा** –जैसे जैसे, **पतयन्तः** –जीवन यापन करने वाले प्राणी, **वियेमिरे** –नियमों में रहते हैं, **एव एव** –वैसे वैसे ही, **सवाय** –नियमों का पालन करने के लिए, **तस्थुः** –अनुशासन में रहते हैं।

अनुवाद –हे सविता देवता! परम ऐश्वर्य से युक्त तुम जिनके पूजनीय हो अथवा इन्द्र जिनका पूजनीय है ऐसे हमको तुम महान् पर्वतों से भी अधिक अर्थात् उनसे भी अधिक उन्नत रूप से प्रेरणा देते हो। इन यजमानों के लिए भवनों से युक्त अर्थात् विशाल निवास स्थानों को प्रेरित करते हो अर्थात् प्रदान करते हो।

जैसे–जैसे जीवन यापन करने वाले प्राणी तुम्हारे नियमों में रहते जाते हैं, वैसे–वैसे ही वे तुम्हारे नियमों का पालन करने के लिए तुम्हारे अनुशासन में रहते हैं।

व्याकरण

क्षयान् –'क्षि निवासे' धातु से 'अच्' प्रत्यय=क्षय।

पस्त्यावतः –'पस्त्यं गृहम् अस्य अस्ति' अर्थ में पस्त्य+मतुप्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

पतयन्तः –णिजन्त 'पत्' धातु से शतृ प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। लोक में पातयन्तः या पतन्तः बनेगा।

वियेमिरे –वि+यम् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

संहिता–पाठ

6. ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो, दिवे दिवे सौभगमासुवन्ति।

इन्द्रो द्यावा पृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्मयंसत्।।

अन्वय – सवितः ये ते सवासः अहन् त्रिः, आसुवन्ति, दिवे दिवे सौभगम्। इन्द्रः द्यावापृथिवी अद्भिः सिन्धुः आदित्यैः अदितिः नः शर्म यंसत्।

शब्दार्थ – त्रिःअहन् –दिन में तीन बार, **सवासः** –सवन करने वाले, **दिवेदिवे** –प्रतिदिन, **सौभगम्** –सौभाग्य को, **आसुवन्ति** –अभिषव करते हैं, **अद्भिःसिन्धुः** –जलों से विशिष्ट सिन्धु, **आदित्यैः अदितिः** –आदित्य गणों के साथ देवमाता, **शर्म** –कल्याण, **यंसत्** –प्रदान करे।

अनुवाद –सबको प्रेरणा देने वाले हे सविता देवता सवन करने वाले जो यजमान तुम्हारे लिए दिन में तीन बार सोम का अभिषव करते हैं अर्थात् प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन करते हैं और जो प्रतिदिन सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए अभिषव करते हैं। इन्द्र, द्यावापृथिवी, जलों से विशिष्ट सिन्धु, आदित्य आदि गणों के साथ देवमाता अदिति हमारे लिए कल्याण प्रदान करें।

व्याकरण

त्रिः –त्रि+सुच्। (त्रिःवरम् अर्थ में)

अहन् –यहाँ सप्तमी विभक्ति का बहुवचन है। यह विभक्ति का लोप छान्दस है।

सवासः –प्रथमा का बहुवचन है। लोक में 'सवाः' रूप होगा।

सौभगम् –सु+भग+अण्। सुभगस्य भावः अर्थ है।

दिवेदिवे –'प्रतिदिनम्' के अर्थ में निपातनात् वैदिक अव्यय।

यंसत् –'यम्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. सविता देवता का साम्य किससे माना गया है।

प्र॰2. सविता देवता की स्तुति किस मन्त्र में की गयी है?

प्र॰3. सविता देवता की स्तुति ऋग्वेद के कितने सूक्तों में की गयी है?

प्र॰4. ऋग्वेदीय सविता सूक्त के देवता एवं ऋषि कौन हैं?

9.4 सारांष

सविता देवता द्युस्थानीय देवता हैं। ऋग्वेद के 11 सूक्तों में इनका गुणगान किया गया है। इसका स्वरूप मुख्य रूप से आलोकमय तथा स्वर्णिम है। सविता सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों से ही सम्बद्ध देवता है क्योंकि उन्हीं के आदेश से रात्रि का आगमन होता है और वे सभी प्राणियों को विश्राम प्रदान करते हैं। यह दुःस्वपनों का नाशक है और दुर्भाग्य को दूर भगाता है। यजमानों की रक्षा करता है, मनुष्य के पापों को भगाता है, राक्षसों, निशाचरों को दूर भगाता है। जल तथा वायु इसी के आश्रित हैं। अन्य देवता भी उसके नेतृत्त्व को स्वीकार करते हैं कोई भी इसकी इच्छा का उल्लंघन नहीं करता। गायत्री मन्त्र में भी मुख्यतः सविता देवता की स्तुति की जाती है। उनके नेत्र, हाथ, जीभ सभी स्वर्णिम हैं, इसलिए उन्हें स्वर्ण नेत्र, स्वर्णपाद, स्वर्णहस्त एवं स्वर्णजिह्व की संज्ञा दी गई है। इसे कहीं पर लौह–जबड़ों वाला भी कहा गया है। इनके केश पीले तथा सुनहरें हैं। इनका रथ (वाहन) स्वर्ण आभा वाला है। रथ को दो या अधिक लाल रंग के घोड़े खींचते हैं एवं इस पर बैठकर ये सारे विश्व का भ्रमण करते हैं। इन्हें असुर (प्राणशक्ति से युक्त) नाम से भी पुकारा जाता है।

9.5 कठिन शब्दावली

द्रविणम् –धन को

ण्यूर्णुषे –प्रकाशित करते हो

दक्षैः –चतुरता से युक्त

प्रमिये –नष्ट होता है

वर्ष्मन् –शरीरधारी

तस्थुः –अनुशासन में रहते हैं

विचमिरे –नियमों में रहते हैं

शर्म –कल्याण

सविता –संसार का कर्मों में प्ररित करने वाला देवता

अचित्ती –अज्ञान से

प्रभूतीः –ऐश्वर्य के मद से

वरिमन् –श्रेष्ठता, उन्नति

सुवति –प्रेरणा देता है

सवाय –नियमों का पालन करने के लिए

दिवेदिवे –प्रतिदिन

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं आंकलन प्रश्न 1

उ॰1. सूर्य देवता

उ॰2. गायत्री मन्त्र

उ॰3. 11 सूक्तों में

उ॰4. सविता देवता, ऋषि वामदेव

9.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

9.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. सविता सूक्त का सारांश अपने शब्दों में लिखें।
2. सविता देवता की वेद प्रतिपादित चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. किन्हीं चार पदों की व्याकरणिक टिप्पणी लिखो–

   1. सविता, 2. अमृतत्वम्, 3. चकृम, 4. प्रभूती, 5. तस्थुः, 6. क्षयान्, 7. दिवेदिवे।
4. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं .... जीविता मानुषेभ्यः।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
5. अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने................. त्वं नो अत्र सुवतादनागसः।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई – 10

पर्यन्य सूक्त (5.83)

संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3पर्जन्य सूक्त मन्त्र संख्या 1–5 (मूल, अन्यय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रश्न**

10.4पर्जन्य सूक्त मन्त्र संख्या 6–10 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रश्न**

10.5 सारांष

10.6 कठिन शब्दावली

10.7स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

10.8अनुषंसित ग्रन्थ

10.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पर्जन्य सूक्त को लिया गया है। यह ऋग्वेद के 5वें मण्डल का 83वाँ सूक्त है। इसमें पर्जन्य सूक्त के ऋषि अत्रि, देवता पर्जन्य, छन्द 1,5,6,7,8 तथा 10 में त्रिष्टुप, 2,3,4 में जगती और 9 मन्त्र में अनुष्टुप छन्द है। इस सूक्त की स्तुति ऋग्वेद के केवल तीन ही सूक्तों में की गयी है। पर्जन्य का अर्थ है– जल को बरसाने वाला मेघ। मेघ को जल भरने का एक बड़ा पात्र कहा गया है, जिसे दृति कहते हैं।

10.2 उद्देष्य

1. पर्जन्य को द्युलोक एवं पृथिवी लोक का पिता कहा गया है।
2. पर्जन्य का अर्थ है– जल बरसाने वाला मेघ जिसे जल भरने का एक बड़ा पात्र भी कहा गया है।
3. पर्जन्य को औषधियों को उत्पन्न करने वाला देवता कहा गया है।
4. पर्जन्य को वृषभ की उपमा दी गयी है, जिसकी सवारी जल से भरे हुए मेघ हैं।
5. पर्जन्य अंकुरों को उत्पन्न करता है और पृथिवी को विस्तृत बनाता है।

10.3पर्जन्य सूक्त मन्त्र संख्या 1–5 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

पर्जन्य सूक्त (मण्डल 5, सूक्त 83)

ऋषि – अत्रि, देवता – पर्जन्य, छन्द – 1,5,6,7,8 और 10 मन्त्र में त्रिष्टुप्, 2,3,4 में जगती तथा 9 में अनुष्टुप्

संहिता–पाठ

1. अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।

कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्।

अन्वय – तवसम् पर्जन्यम् अच्छा वद आभिः गीर्भिः स्तुहि नमसा आविवास। वृषभः जीरदानुः कनिक्रदत् ओशीधीषु गर्भम् रेतः दधाति।

शब्दार्थ – अच्छ –अभिमुख होकर, **वद –**स्तुति करो, **तवसम् –**बलवान्, **गीर्भिः –**स्तुतियों की वाणियों से, **आभिः** –इन, **नमसा** –हवि रूप अन्न से, नमस्कार से, **आविवास** –सब प्रकार से सेवा करो, **कनिक्रदत्** –गर्जना करता हुआ, **जीरदानुः** –शीघ्र दान देने वाला, **वृषभः** –बरसाने वाला, **रेतः** –जल को, **गर्भम्** –गर्भ रूप।

अनुवाद –हे स्तुति करने वाले तुम बलवान् पर्जन्य की ओर अभिमुख होकर प्रार्थना करो। इन स्तुतियों की वाणियों से उसकी स्तुति करो। हवि रूपी अन्न से अथवा नमस्कार के साथ उसकी सब प्रकार से सेवा करो। जलों को बरसाने वाला, शीघ्र दान देने वाला और गरजता हुआ पर्जन्य ओषधियों में गर्भ रूप जल को धारण कराता है।

व्याकरण

पर्जन्यः –पृणन् जनयति अर्थ में पृ+जन्+यत्=पर्जन्य।

आविवास –आ+वि+वास् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

कनिक्रदत् –अतिशयेन क्रन्दति अर्थ में छान्दस रूप निपातनात् बनता है। शतृ प्रत्यय।

वृषभः –वृष्+कभच् (औणादिक प्रत्यय)।

जीरदानुः –जरि+दा+नु=जीरदानु। अथवा 'जीव्' धातु से रदानुक् प्रत्यय।

संहिता–पाठ

2. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विष्वं विभायभुवनं महावधात्।

उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः।।

अन्वय – पर्जन्यः वृक्षान् विहन्ति उत रक्षसः हन्ति महावधात् विश्वम् भुवनम् विभाय। यत् स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति उत अनागाः वृष्ण्यावतः ईषते।

शब्दार्थ – विहन्ति –नष्ट करता है, **रक्षसः** –राक्षसों को, **विभाय** –डरता है, **अनागाः** –निरपराध, **ईषते** –डर कर दूर भागता है, **वृष्यावतः** –बलवान् या बरसते हुए पर्जन्त से, **स्तनयन्** –गरजता हुआ, **दुष्कृत** –पापियों को।

अनुवाद –पर्जन्य वृक्षों को नष्ट करता है और राक्षसों को मारता है। इसलिए इसके महान् वध से मारा संसार डरता है। क्योंकि पर्जन्य गरजता हुआ पापियों को मारता है, इसलिए निरपराध व्यक्ति भी इस बलवान् या बरसते हुए पर्जन्य से डर कर दूर भागते हैं।

व्याकरण

वृष्ण्यावतः –वृष्ण्य+मतुप् (वैदिक दीर्घत्व)। अथवा वृषणं पापम् इच्छति इति।

अनागाः –न आगः यस्य स।

संहिता–पाठ

3. रथीव कशयाष्वाँ अभिक्षिपन् आविर्दतान्कृणुते वर्ष्यौँ 3 अह।

दरात्सिंहस्य स्तनथा उदौरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं 1 नभः।।

अन्वय – कशया अष्वान् अभिक्षिपन् रथी इव अह वर्ष्यान् दूतान् आवि कृणुते। यत् पर्जन्यः नभः वर्ष्यम् कृणुते सिंहस्य स्तनथाः दूरात् उदीरते।

शब्दार्थ – कशया –चाबुक से, **अभिक्षिपन्** –भागता हुआ, **दूतान्** –दूतों जैसे मेघों को, **वर्ष्यान्** –वर्षा करने वाले, **आविः कृणते** –प्रकट करता है, **स्तनथाः** –गर्जनाएं, **उत् ईरते** –उत्पन्न होती हैं, सुनाई देती हैं, **वर्ष्यम्** –वर्षा से युक्त।

अनुवाद –चाबुक से घोड़ों को भगाते हुए रथी के समान अहो यह पर्जन्य वर्षा करने वाले दूतों जैसे मेघों को प्रकट करता है। जब यह पर्जन्य अन्तरिक्ष को वर्षा से युक्त करता है तो सिंह के समान गर्जना करने वाले या हिंसा करने वाले इस मेघ की गर्जनाएं दूर से सुनाई देती हैं।

व्याकरण

अभिक्षिपन् –अभि+क्षिप्+शतृ।

कृणुते –आत्मनेपदी 'कृ' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। छान्दस रूप है। लोक में 'कुरुते' रूप बनता है।

वर्ष्यम् –वर्षा+यत्=वर्ष्य। अथवा वृष्+ण्यत्+वर्ष्य।

स्तनथाः –'स्तन गर्जने' धातु से 'अथच्' प्रत्यय।

संहिता–पाठ

4. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।

इरा विष्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति।।

अन्वय – यत् पर्जन्यः पृथिवीम् रेतसा अवति वाताः प्रवान्ति, विद्युतः पतयन्ति, ओषधीः उत् जिहते, स्वः पिन्वते, इरा विष्वस्मै भुवनाय जायते।

शब्दार्थ – वाताः –हवायें, **प्रवान्ति –**चलती हैं, **पतयन्ति –**गिरती हैं, **उत् जिहते –**अंकुरित होती हैं, बढ़ती हैं, **स्वः** –अन्तरिक्ष, **पिन्वते** –टपकाता है, **इरा** –भूमि, **भुवनाय** –संसार के कल्याण के लिए, **रेतसा** –जल से, **अवति** –रक्षा करता है।

अनुवाद –जब कि पर्जन्य पृथिवी की अपने जल से रक्षा करता है, अर्थात् इसको सींचता है, तब हवायें (वर्षा के लिए) चलती हैं, बिजलियाँ गिरती है, वनस्पतियाँ अंकुरित होती हैं या बढ़ती हैं, अन्तरिक्ष जल की बूंदों को टपकाता हैं और भूमि सम्पूर्ण संसार के हित के लिए समर्थ हो जाती है।

व्याकरण

पतयन्ति –णिजन्त 'पत्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

जिहते –'ओहाङ्. गतौ' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

ओषधीः –वैदिक रूप है। लोक में 'ओषधयः' रूप होगा।

पिन्वते –'पिवि' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

5. यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।

यस्य व्रते ओषधीर्विष्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ।।

अन्वय – यस्य व्रते पृथिवी नन्मीति, यस्य व्रते शफवत् जर्भुरीति, यस्य व्रते विश्वरूपाः ओषधीः, स पर्जन्य नः महि शर्म यच्छ।

शब्दार्थ – व्रते –कर्म में, अनुशासन में, **नन्नमीति –**अत्यधिक झुक जाती है, **शफवत् –**खुरों से युक्त गौ आदि पशु, खुर परिमाण से युक्त स्थान के समान, **जर्भुरीति –**पूर्ण होता है, जल से भर जाती है, **विष्वरूपाः** –नाना प्रकार की, **महि** –महान्, **शर्म** –सुख, **प्रयच्छ** –प्रदान करो।

अनुवाद –जिस पर्जन्य के कर्म में अथवा शासन में रह कर पृथिवी अत्यधिक झुक जाती है, जिस पर्जन्य के कर्म से खुरों से युक्त गौ आदि पशु पूर्ण होते हैं अर्थात् पुष्ट होते हैं, अथवा खुर के परिणाम से युक्त स्थान के समान यह सारी पृथिवी जल से भर जाती है और जिस पर्जन्य के कर्म से नाना प्रकार की वनस्पतियाँ अंकुरित होती हैं, ऐसे हे पर्जन्य तुम हमारे लिए महान् सुख को प्रदान करो।

व्याकरण

नन्नमीति –यङ्. लुगन्त 'नम्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

जुर्भुरीति –यङ्. लुगन्त, 'भृञ् भरणे' धातु अथवा 'भुर्' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

प्र॰1. ऋग्वेदीय पर्जन्य सूक्त के देवता एवं ऋषि कौन हैं?

प्र॰2. पर्जन्य देवता को किसका पिता कहा गया है?

प्र॰3. मुख्य रूप से पर्जन्य देवता का क्या अर्थ है?

प्र॰4. पर्जन्य देवता को वनस्पतियों एवं औषधियों का क्या माना गया है?

10.4 पर्जन्य सूक्त मन्त्र संख्या 6–10 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

6. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अष्वस्यधाराः।

अर्वाङ्तेन स्तनयित्नुनेहि अपो निषिंचन्नसुरः पिता नः।।

अन्वय – मरुतः! दिवः नः वृष्टिम् ररीध्वम्, वृष्णः अष्वस्य धाराः प्रपिन्वत एतेन स्तनयित्नुना अर्वाड्. आ इहि, अपः निषिंचन् असुरः नः पिता।

शब्दार्थ – दिवः –अन्तरिक्ष से, **वृष्टिम्** –वर्षा को, **ररीध्वम्** –प्रदान करो, **प्रपिन्वत** –क्षरित करो, **वृष्णः** –वर्षा करने वाले, **अष्वस्य** –व्यापक मेघ की, **अर्वाड्.** –सम्मुख, **स्तनयित्नुना** –गरजते हुए, **निषिंचन्** –सिंचन करते हुए, **असुरः** –जलों का देने वाला।

अनुवाद –हे मरुतो! तुम अन्तरिक्ष से हमारे लिए वर्षा को प्रदान करो, वर्षा करने वाले व्यापक मेघ की धाराओं को क्षरित करो। हे पर्जन्य! तुम इस गरजते हुए मेघ के साथ हमारे सम्मुख आओ। जलों का सिंचन करते हुए तुम जलों को देने वाले और हमारा पालन करने वाले हो।

व्याकरण

ररीध्वम् –यड्. लुगन्त 'रीड्. गतौ' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

स्तनयित्नुना –णिजन्त 'स्तन्' धातु से 'इष्णुच्' प्रत्यय – स्तनयित्नु। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

असुर –असु+रा+क।

संहिता–पाठ

7. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।

दृतिं सु कर्ष विषितं न्यंचं समा भवन्तूद्वतो निपादाः।।

अन्वय – अभिक्रन्द, स्तनय, गर्भम्, आधाः, उदन्वता रथेन परिहीय, दृतिम् विषितम् न्यंचम् सु कर्ष, उद्वतः निपादाः समाः भवन्तु।

शब्दार्थ – अभिक्रन्द –शब्द करो, **स्तनय** –गर्जना करो, **आधाः** –आधान करो, **उदन्वता** –जल से भरे हुए, **परिदीय** –सब ओर से भ्रमण करो, **दृतिम्** –मशक, **सुकर्ष** –अच्छी प्रकार खींचो, **विषितम्** –अच्छी प्रकार बंधा हुआ, **न्यंचम्** –नीचे की ओर, **समाः** –एक जैसे, **उद्वत्ः** –ऊँचे, **निपादाः** –निचले स्थान।

अनुवाद –हे पर्जन्य! पृथिवी के अभिमुख हो शब्द करो, गर्जना करो, औषधियों में गर्म स्थानीय जल का आधान करो, जल से भरे हुए रथ द्वारा अन्तरिक्ष में सब ओर परिभ्रमण करो, मशक के समान जल से भरे हुए मेघ को, जो अच्छी प्रकार से बन्धा हुआ है नीचे की ओर अच्छी प्रकार से खींचो अथवा नीचे की ओर अच्छी प्रकार से बन्धन से मुक्त करो। पानी के भर जाने से ऊँचे और निचले स्थन एक जैसे हो जावे।

व्याकरण

उदन्वता –उदक+मतुप्। 'उदक' को 'उदन्' आदेश।

निपादाः –नि+पद्+अण्।

संहिता–पाठ

8. महान्तं कोषमुदचा निषिंच स्यन्दतां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।

घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वध्न्याभ्यः।।

अन्वय – महान्तम् कोशम् उदच निषिंच कुल्याः विषिताः पुरस्तात् स्यन्दन्ताम् द्यावापृथिवी घृतेन व्युन्धि अध्न्याभ्यः सुप्रपाणम् भवतु।

शब्दार्थ – कोशम् –जल रूप भण्डार को, **उदच** –ऊपर को उठाओ, **निषिंच** –नीचे की ओर बरसा दो, **कुल्याः** –नदियाँ, **विषिताः** –जल से भरी हुई, **पुरस्तात्** –पूर्व की ओर, **स्यन्दन्ताम्** –बहें, **घृतेन** –जल से, **वि उन्धि** –अच्छी प्रकार भिगो दो, **अध्न्याभ्यः** –गौओं के लिए, **सुप्रपाणम्** –प्रचुर परिणाम में पीने का जल।

अनुवाद –हे पर्जन्य! तुम अपने महान् जल रूप भण्डार को आकाश में ऊपर को उठाओ और नीचे की ओर बरसा दो। नदियाँ अच्छी प्रकार से जल से भरी हुई पूर्व की ओर बहें। द्यु लोक और पृथिवी को तुम जल से अच्छी प्रकार से भिगो दो। गौओं के लिए प्रचुर परिमाण में पीने के लिए जल होवे।

व्याकरण

उदच –उत्+अंचु गतौ धातु, लोट लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

उन्धि –'उन्दी क्लेदने' धातु, लोट लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

सुप्रपाणम् –सु+प्र+पा+युच् (अन)। 'न' को 'ण'।

अध्न्याभ्यः –न+हन्+क्यप्=टाप्। 'हन्' के 'अ' का लोप और 'घ्' आदेश।

संहिता–पाठ

9. यत्पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।

प्रतीदं विश्वं मोदते यत्कि च पृथिव्यामधि।।

अन्वय – पर्जन्य! यत् कनिक्रदत् स्तनयन् दृष्कृतः हंसि, इदम् विष्वम् यत् किम् च पृथिव्याम् अधि प्रतिमोदते।

शब्दार्थ – यत –जब, **कनिक्रदत्** –शब्द करते हुए, **स्तनयत्** –गर्जना करते हुए, **हंसि** –मारते हो, **दुष्कृतः** –दुष्टों को, **मोदते** –प्रसन्न हो जाता है।

अनुवाद –हे पर्जन्य! जब तुम अत्यधिक शब्द करते हुए और गरजते हुए दुष्टों को (वर्षा के बाधक दैत्यों को) मारते हो, यह सारा संसार और जो कुछ भी इस पृथिवी पर है, प्रसन्न हो जाता है।

व्याकरण

कनिक्रदत् –क्रन्द्+शतृ। अतिशयेन क्रदन्ति अर्थ में छान्दस रूप निपातनात्।

दुष्कृतः –दुस+कृ+क्विप्। तुक् का आगम। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

संहिता–पाठ

10. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।

अजीजन ओषधीर्भोजनाय कम् उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम्।।

अन्वय – वर्षम् अवर्षीः, उत् उषू गृभाय धन्वानि अकः अति एतवै उ। भोजनाय कम् ओषधीः अजीजनः, उत प्रजाभ्यः मनीषाम् अविदः।

शब्दार्थ – अवर्षीः –बरसा चुके हो, **वर्षम्** –वर्षा को, **सुगृभाय** –अच्छी प्रकार रोक लो, **अकः** –कर दिया है, **धन्वानि** –जलहीन प्रदेशों को, मरुस्थलों को, **अति एतवै** –पार करने योग्य, **अजीजनः** –उत्पन्न किया है, **भोजनाय** –भोग करने के लिए, **अविदः** –प्राप्त कर चुके हो, **मनीषाम्** –स्तुति को।

अनुवाद –हे पर्जन्य! तुम वर्षा को बरसा चुके हो। अब इस वृष्टि को निश्चय से अच्छी प्रकार से रोक लो। तुमने जलहीन प्रदेशों को मरुस्थलों को जल से युक्त बना दिया है और उनको पार करने योग्य कर दिया है। तुमने भोग करने के लिए वनस्पतियों को उत्पन्न किया है और तुम प्रजाओं से स्तुति को प्राप्त कर चुके हो।

व्याकरण

अवर्षीः –'वृष्' धातु, लृङ् लकार, मध्यम पुरुष का एकवचन।

गृभाय –'ग्रह' धातु लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। यह वैदिक रूप है। लोक में 'गृहाण' रूप होगा।

एतवै –'इण्' गतौ धातु से वैदिक तवै प्रत्यय, तुमुन् के अर्थ में।

अविदः –'विद्' धातु, लोट लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  प्र॰1. पर्जन्य देवता की स्तुति ऋग्वेद के कितने सूक्तों में है?

  प्र॰2. पर्जन्य किसे कहा गया है?

10.5 सारांष

ऋग्वेद में पर्जन्य सूक्त को जल बरवाने वाला मेघ कहा गया है। पर्जन्य देवता की स्तुति ऋग्वेद के केवल तीन सूक्तों में ही की गयी है। पर्जन्य को औषधियों को उत्पन्न करने वाला देवता कहा है तथा दिव्य जलों का पिता कहा गया है। जब जल बरसता है तो पर्जन्य बिजली एवं सिंह की गर्जनाओं के साथ

जलमय रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में विचरण करता है। इसे औषधियों, तृणों और अंकुरों का जन्मदाता कहा गया है। इसके अतिरिक्त इसे द्युलोक तथा पृथिवी लोक का पिता भी कहा गया है। दूसरे स्थान पर द्युलोक को इसका पिता तथा पृथिवी लोक को इसकी पत्नी कहा गया है। पर्जन्य को विशेष रूप से वनस्पतियों को उत्पादक तथा पोषक कहा है। वे केवल पौधों को ही नहीं बल्कि गायों तथा स्त्रियों को भी प्रजनन सामर्थ्य प्रदान करता है। वृष्टि करना पर्जन्य की विशेषता है जिससे वह वृष्टि करके सृष्टि का कल्याण करते हैं। पर्जन्य शब्द का अर्थ हैं– उत्पन्न होने वाले चर व अचर को पूर्ण करने वाला।

10.6 कठिन शब्दावली

तवसम् –बलवान्

कनिक्रदत् –गर्जना करता हुआ

रेतः –जल को

स्तनयन् –गरजता हुआ

इरा –भूमि

कुल्याः –नदियाँ

धन्वानि –जलहीन प्रदेशों को या मरुस्थलों को

अजीजनः –उत्पन्न किया है

गीभिः –स्तुतियों की वाणियों से

वृषभः –बरसाने वाला

वृष्ण्यावतः –बलवान् या बरसते हुये पर्जन्य से

स्वः –अन्तरिक्ष

दृतिम –मशक

मोदते –प्रसन्न हो जाता है

मनीषाम् –स्तुति को

10.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. देवता पर्जन्य एवं ऋषि अत्रि

  उ॰2. द्युलोक एवं पृथिवी लोक

  उ॰2. वृष्टि करना

  उ॰4. उत्पादक एवं पोषक

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  उ॰1. 3 सूक्तों में

  उ॰2. मेघ को

10.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)

3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।

6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

10.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पर्जन्य सूक्त का सार लिखें।
2. पर्जन्य देवता का स्वरूप वर्णन कीजिये।
3. किन्हीं चार पदों की व्याकरणिक टिप्पणी लिखो–

   1. पर्जन्यः, 2. आविवास, 3. बिभाय, 4. ईषते, 5. औषधीः, 6. दुष्कृतः, 7. गृभाय।
4. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति...................... स्तनयन् दृन्ति दृष्कृतः।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिये।
5. प्रा वाता वान्तिपतयन्ति....................... जायते चत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिये।

इकाई – 11

वास्तोष्पति सूक्त (7.54)

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3वास्तोष्पति सूक्त मन्त्र संख्या 1–3 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

11.4 सारांष

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

11.7 अनुषंसित ग्रन्थ

11.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में ऋग्वेद के वास्तोष्पति सूक्त का वर्णन किया गया है। यह ऋग्वेद के 7वें मण्डल का 54वां सूक्त है। इसका देवता वास्तोष्पति है, वसिष्ठ ऋषि है तथा त्रिष्टुप छन्द है। इस सूक्त का वर्णन ऋग्वेद के केवल एक ही सूक्त में हुआ है। गृह्यसूत्रों में गृहप्रवेश से पूर्व वास्तोष्पति देवता की स्तुति करने और उससे पापों को क्षमा करने की प्रार्थना किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है।

11.2 उद्देष्य

1. ऋग्वेद के वास्तोष्पति सूक्त का प्रयोग गृह प्रवेश के समय किया जाता था। जब किसी नए घर में प्रवेश किया जाता है तब वास्तोष्पति देवता की स्तुति की जाती है।
2. वास्तोष्पति निर्मित किए गए घर का अधिपति है तथा उसकी रक्षा करता है।
3. वास्तोष्पति देवता की स्तुति करते हुए यह माना गया है कि हमारे धन की तथा पशुओं की वृद्धि करें, हमारे बुढ़ापे को दूर करें, हमारे लिए गृह जीवन की उपयोगी वस्तुओं को प्रदान करें।

11.3वास्तोष्पति सूक्त मन्त्र संख्या 1–3 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

वास्तोष्पति सूक्त (मण्डल 7, सूक्त 54)

ऋषि–वसिष्ठ, देवता वास्तोष्पति, छन्दः–त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेषो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

अन्वय–वास्तोष्पते! अस्मान् प्रतिजानीहि, नः सु आवेशः अनमीवः भव। यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रतिजुषस्व। नः द्विपदे शम् भव चतुष्पदे शम्।

शब्दार्थ– वास्तोष्पते –घर के रक्षक वास्तोष्पति देवता, **तनुजानीहि** –पहचान लो, **सु आवेशः** –उत्तम आवासों को देने वाला, **अनमीवः** –रोगों से मुक्त कराने वाला, **अनुजानीहि** –पहचान लो, **सु आवेशः** –उत्तम करो, **द्विपदे** –दोपायों के लिए, **चतुष्पदे** –चौपायों के लिए।

अनुवाद –हे घर के रक्षक वास्तोष्पते देवता! तुम हम भक्त लोगों को पहचान लो। हमारे लिए सुन्दर आवासों को देने वाले और रोगों से मुक्त कराने वाले बनो। तुमसे जो कुछ हम याचना करते हैं उसको हमारे लिए प्रदान करो। इस प्रकार हमारे दोपायों अर्थात् पुत्र, पौत्र आदि के लिए और चौपाये पशुओं के लिए कल्याण करने वाले बनो।

व्याकरण –

वास्तोष्पते –वास्तोः गृहस्य पते स्वामिन्। षष्ठी तत्पुरुष। विभक्ति का वैदिक अलुक्। वस्+तुण्=वास्तु।

प्रतिजानीहि –प्रति+ज्ञा, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

जुषस्व –जुष् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

स्वावेशः –शोभनः आवेशः यस्मात्। सु+आवेश=स्वावेश।

2. वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरष्वेभिरिन्दो।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व।।

अन्वय –वास्तोष्पते! नः प्रतरणः गयस्फानः एधि। इन्दो! ते सख्ये गोभिः अश्वेभिः अजरास स्याम। पिता पुत्रान् इव नः प्रति जुषस्व।

शब्दार्थ – प्रतरणः –उन्नति करने वाले, **एधि** –बनो, **गयस्फानः** –धनों का बढ़ाने वाला, **इन्दो** –चन्द्रमा के समान आह्लादक, **अजरासः** –जरा रहित, **प्रतिजुषस्व** –पालन करो।

अनुवाद –हे घर के रक्षक वास्तोष्पति देवता! तुम हमारी उन्नति करने वाले और धनो के बढ़ाने वाले बनो। चन्द्रमा के समान आह्लादक हे घर के देवता! तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हम गौओं, घोड़ों आदि पशुओं सहित जरा से रहित होवें। जिस प्रकार पिता पुत्रों का पालन करता है, उसी प्रकार तुम हमारा पालन करो।

व्याकरण –

प्रतरणः –प्र+तृ+ल्युट् (अन) = प्रतरण।

गयस्फानः –गयस्य धनस्य स्फानः प्रवर्धकः। स्फायी (स्फाय्) +ल्युट् (अन) छान्दस 'य्' का लोप।

सख्ये –सखि+य=सख्य। सप्तमी का एकवचन।

अजरासः –'अजर' शब्द का प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। वैदिक रूप है।

3. वास्तोष्पते शग्मयां संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

अन्वय –वास्तोष्पते! शग्मया रण्वया गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि। क्षेमे उत योगे नः वरम् पाहि। यूयम् स्वस्तिभिः नः सदा पात।

शब्दार्थ – **शग्मया** –सुख देने वाले, **संसदा** –घर रूपी स्थान से, **सक्षीमहि** –संयुक्त होवें, **रण्वया** –रमणीय, **गातुमत्या** –धन से सम्पन्न, **पाहि** –रक्षा करो, **क्षेमे** –प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करने में, **योगे** –अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने में, **वरम्** –अभीष्ट धन, **पात** –रक्षा करो, **स्वस्तिभिः** –कल्याणों के द्वारा।

अनुवाद –घर के रक्षक हे वास्तोष्पते देवता! सुख देने वाले, रमणीय और धन से सम्पन्न तुम्हारे प्रदेय घर स्थान से हम संयुक्त होवें। तुम भी प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करने में और अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने में हमारे अभीष्ट धन की रक्षा करो। तुम कल्याणों के द्वारा हमारी सदा रक्षा करो।

व्याकरण

शग्मया –'शम्' धातु से 'क' प्रत्यय करके निपातनात् शग्म। स्त्रीलिंग में शग्मा। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

रण्वया –'रम्' धातु से निपातनात् सिद्ध होता है।

गातुमत्या –गातु+मतुप्+ङीप – गातुमती। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

संसदा –सम्+सद्+क्विप् – संसद्। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

योगे –युज्+घञ्–योग। सप्तमी का एकवचन।

पाहि –पा रक्षणे, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

पात –पा धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

सक्षीमहि –'सच्' धातु से विधिलिंग उत्तम पुरुष, बहुवचन में वैदिक रूप है।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  प्र॰1. ऋग्वेद के अनुसार गृह प्रवेश के समय किस देवता की स्तुति होती है?

  प्र॰2. वास्तोष्पति सूक्त के देवता एवं ऋषि कौन हैं?

  प्र॰3. वास्तोष्पति देवता की स्तुति ऋग्वेद के अनुसार कितने सूक्तों में की गयी है?

  प्र॰4. वास्तोष्पति को किसका अधिष्ठाता देवता कहा गया है?

11.4 सारांष

वास्तोष्पतिः वास्तोःपति– जिसका अभिप्राय है घर की आधारशिला का अधिष्णातृ देव तथा घर रक्षक देव है। जो वस् धातु, तृण प्रत्यय से निष्पन्न वास्तु शब्द एक प्रातिपदिक है जो वष्ठी एकवचन का रूप है। ऋग्वेद में वास्तोष्पति देवता की स्तुति गृह प्रवेश के उद्देश्य से की जाती है। गृह जीवन के लिए जिन उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन सभी की कामना वास्तोष्पति से की जाती है। गृह्यसूत्रों में गृह

प्रवेश से पूर्ण वास्तोष्पति देवता की स्तुति करने और उससे पापों को क्षमा करने की प्रार्थना किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है। वास्तव में घर की प्रत्येक वस्तु पर वास्तोष्पति का आधिपत्य स्वीकार किया गया है इसलिए गृह प्रवेश के अवसर पर उसका अनुग्रह प्राप्त करना आवश्यक है। वास्तोष्पति देवता से घर को सुखप्रद, कल्याणकारी तथा रोगरहित रखने की प्रार्थना की गयी है–**'अस्मान्त्स्वावेषो अनमीवो भवाः नः' (ऋग्वेद, 7.54)**। वह हमारे धन–धान्य में वृद्धि करे, पुत्र–पौत्रादि तथा पशुओं का भी कल्याण करे तथा जीवनोपयोगी समस्त पदार्थ हमें प्रदान करें। जिस वस्तु की इच्छा हम करें, उसकी प्राप्ति हो जाये–**'यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व' (ऋग्वेद, 7.54.1)**।

वास्तोष्पति को **'इन्दो'** कहकर भी सम्बोधित किया गया है। **'गयस्फानो गोभिरष्वेभिरिन्दो' (ऋग्वेद, 7. 54.5)**। 'इन्दु' शब्द 'इदि' धातु से निष्पन्न माना गया है जिसका अर्थ है– प्रसन्न करने वाला। वेदों में सोम तथा चन्द्रमा के लिए **'इन्दु'** विशेषण का प्रयोग किया गया है क्योंकि ये दोनों ही संसार को आह्लादित और प्रसन्न करते हैं। अतः वास्तोष्पति देवता को यजमानों को सुख–समृद्धि, धन–धान्य, पुत्र–पौत्रादि प्रदान करने के कारण प्रसन्नता एवं आह्लाद प्रदान करने वाला कहा गया है।

जिस प्रकार पित पुत्र की रक्षा, पालन–पोषण निःस्वार्थ करता है, उसकी सुख–सुविधाओं का ध्यान रखना, मार्गदर्शन करना तथा गलत होने पर डांटना– ये सभी वास्तोष्पति का हमारे साथ पुत्रवत् व्यवहार करने की कामना अभिव्यक्त की गयी है–**पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व' (ऋग्वेद, 7.54.2)**। इस सूक्त में स्पष्ट किया गया है कि अपनी सम्पत्ति की रक्षा, उन्नति की कामना करने वालों को वास्तोष्पति की स्तुति करनी चाहिए।

अध्यात्मिक पक्ष के अनुसार शरीर ही घर अर्थात् वास्तु है और इसके अन्दर निवास करने वाले आत्मतत्त्व ऊर्जा, अन्तःशक्ति इत्यादि शरीर रूपी घर के स्वामी **वास्तोष्पति** हैं। अर्थात् वास्तोष्पति सूक्त में इसी आत्मत्त्व, ऊर्जा तथा अन्तःशक्ति से प्रार्थना की है कि ये सब हमारे शरीर को हृष्ट–पुष्ट तथा स्वस्थ रखें। यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलिष्ठ नहीं होगा तो मनुष्य किसी भी प्रकार का सुख एवं आनन्द प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टिकोण से वास्तोष्पति निःसन्देह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता हैं। ऋग्वेद के अनुसार वास्तोष्पति गृह की सम्पत्ति की रक्षा और उन्नति के लिए वास्तोष्पति देवता की उपासना करनी चाहिए।

11.5 कठिन शब्दावली

वास्तोष्पते –घर के रक्ष वास्तोष्पति देवता

अनुजानीहि –पहचान लो

सु आवेशः –उत्तम आवासों को देने वाला

अनमीवः –रोगों से मुक्त कराने वाला

ईमहे –याचना करते हैं

प्रतिजुषस्व –पालन करो

शग्मया –सुख देने वाले

संसदा –घर रूपी स्थान से

गातुमत्या –धन से सम्पन्न

वरम् –अभीष्ट धन

अजरासः –जरारहित

इन्दो –चन्द्रमा के समान आह्लादक

योगे –अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने में

गयस्फानः –धनों को बढ़ाने वाला

पाहि –रक्षा करो

पात –रक्षा करो

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं आंकलन प्रश्न 1

उ॰1. वास्तोष्पति देवता

उ॰2. वास्तोष्पति देवता एवं वसिष्ठ ऋषि

उ॰3. एक सूक्त में

उ॰4. गृह (घर) का अधिष्ठाता देवता

11.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

11.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ऋग्वेदीय वास्तोष्पति सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. वास्तोष्पति प्रति .... शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
3. वास्तोष्पते प्रतरणो न .... पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
4. वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते .... यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
5. निम्नलिखित चार पदों पर व्याकरणिक विषयक टिप्पणी लिखें–

   1. वास्तोष्पते, 2. जुषस्व, 3. सख्ये, 4. योगे, 5. संसदा, 6. पाहि, 7. पात।

इकाई – 12

यम सूक्त (10.14)

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3यम सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

12.4यम सूक्त मन्त्र संख्या 9–16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

12.5 सारांष

12.6 कठिन शब्दावली

12.7 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

12.8 अनुषंसित ग्रन्थ

12.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में यम सूक्त का वर्णन किया गया है। यम सूक्त ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 14वां सूक्त है। इसके देवता यम एवं पितर हैं, ऋषि वैवस्वत मनु हैं। मन्त्र संख्या 1–12 में त्रिष्टुप छन्द है, 13,14,15 मन्त्र में अनुष्टुप छन्द है और 15वें मन्त्र में बृहती छन्द है। यम प्राणों के देवता हैं और वह मृतात्मा को मार्ग दिखाता है।

12.2 उद्देष्य

1. यम प्राणों के देवता हैं और मृतात्मा को मार्ग दिखाते हैं। मनुष्य के मरने के बाद वह जीवों की गति के मार्ग का निर्देशन करते हैं।
2. वैदिक मन्त्रों के अनुसार यम के पिता विवस्वान् हैं तथा त्वष्टा की पुत्री सरण्यू उसकी माता है।
3. यम का अग्नि में विशेष सम्बन्ध है क्योंकि वह मृतात्माओं को यम तक पहुंचाता है। इसलिए अग्नि को यम का मित्र एवं पुरोहित कहा गया है।
4. यम का सम्बन्ध विशेष रूप से पितरों, अंगिरस से है।
5. यम प्रेतात्माओं पर शासन करता है।

12.3यम सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

यम सूक्त (मण्डल 10, सूक्त 14)

ऋषि – वैवस्वत मनु, देवता – यम एवं पितर, छन्द – 1–12 में त्रिष्टुप्, 13, 14, 16 में अनुष्टुप् और 15 में बृहती।

संहिता–पाठ

1. परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थानमनुपस्पषानम्।

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य।।

अन्वय – प्रवतः महीः अनुपरेयिवांसम्, बहुभ्यः पन्थाम् अनुपस्पषानम्, वैवस्वतम्, जनानाम् संगमनम् राजानम् यमम् हविषा दुवस्य।

शब्दार्थ – अनुपरेयिवांसम् –ले जाने वाले, **प्रवतः** –उत्कृष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों को, **महीः** –उनके भोगों के योग्य प्रदेशों में, **अनुपस्यशानम्** –बाधा न डालने वाले, **वैवस्वतम्** –विवस्वान् का पुत्र, **संगमनम्** –गन्तव्य, ले जाने वाला, **हविषा** –हवि से, **दुवस्य** –पूजा करो।

अनुवाद –हे यजमान! अथवा हे अन्तरात्मा! तुम उत्कृष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों को उनके कर्मों के भोगों के योग्य प्रदेशों की ओर ले जाने वाले (मृत्यु के बाद), बहुत से स्वर्ग के चाहने वाले पुण्यशीलों के लिए स्वर्ग के मार्ग में बाधा डालने वाले, विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र रूप में प्रसिद्ध पापी मनुष्यों के गन्तव्य अर्थात् पापियों को अपने लोक में जाने वाले पितरों के राजा यम का हवि आदि सामग्रियों से पूजन करो।

व्याकरण

परेयिवांसम् –परा+इण् गतौ+क्वसु (वस्)=परेयिवस्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

महीः –'मह्' धातु से या 'महत्' शब्द से निपातनात् सिद्ध होता है।

अनुपस्पषानम् –अनु+स्पश्+कानच्=अनुपस्पशान।

दुवस्य –वैदिक 'दुवस्' धातु, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

2. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः।।

अन्वय – प्रथमः यमः नः गातुम् विवेद। एषा गव्यूतिः अपभर्तवै उ न। यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः, एना जज्ञानाः स्वाः पथ्याः अनु।

शब्दार्थ – गातुम् –कर्म को, मार्ग को, **प्रथमः** –सबसे प्रमुख, **विवेद** –जानता है, **गव्यूतिः** –मार्ग, पद्धति, **अपभर्तवै न** –अपहरण नहीं हो सकता, **परेयुः** –गए हैं, **एना** –इसी मार्ग से, **जज्ञानाः** –उत्पन्न होने वाले, **स्वाः** –अपने कर्मों के अनुसार, **पथ्याःअनु** –पथिक होकर जाएंगे।

अनुवाद –सबसे प्रमुख यम हमारे शुभ अशुभ कर्मों को या मार्ग को जानता है। यम के इस मार्ग का या पद्धति का कोई निश्चय ही अपहरण नहीं कर सकता। जिस मार्ग पर हमारे पूर्वज, पितृगण गए हैं, इसी मार्ग से उत्पन्न होने वाले हम सब प्राणी अपने–अपने कर्मों के अनुसार पथिक हो जावेंगे।

व्याकरण

गातुम् –'गाङ्. गतौ' से तुमुन् प्रत्यय। अथवा 'इण् गतौ' धातु से तुमुन् प्रत्यय और 'इ' को 'गा' आदेश। एति येन सा गातु=मार्ग। अथवा गा+तु=गातु।

गव्यूतिः –1/25/16 में इसकी व्याख्या दी जा चुकी है।

अपभर्तवै –अप+भृ+तवै (तुमुन् के अर्थ में वैदिक 'तवै' प्रत्यय) अथवा अप+हृ+तवै। 'ह' को 'भ' आदेश।

एना –'एनेन' का वैदिक रूप।

जज्ञानाः –'जनी प्रादुर्भावे' धातु से 'कानच्' प्रत्यय।

संहिता–पाठ

3. मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर् बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।

यांष्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति।।

अन्वय – मातली कव्यैः वावृधानः, यमः अंगिरोभिः, बृहस्पतिः ऋक्वभिः। देवाः च यान् ववृधुः ये च देवान्, अन्ये स्वाहा मदन्ति अन्ये स्वधया।

शब्दार्थ – मातली –मातलि नामक सारथि वाले इन्द्र देवता, **कव्यैः** –कव्य नामक पितरों से, **ववृधानः** –वृद्धि को प्राप्त होते हैं, **वधृधुः** –बढ़ाते हैं, **स्वाहा** –स्वाहा के द्वारा, **स्वधया** –स्वधा के द्वारा। **मदन्ति** –प्रसन्न होते हैं।

अनुवाद –मातलि नामक सारथि वाले इन्द्र देवता कव्य नाम पितरों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यम अंगिरा नामक पितरों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, बृहस्पति ऋक्व नामक स्तुति करने वाले पितरों से बृद्धि को प्राप्त होते हैं। वहाँ इन्द्र आदि देवता जिन पितरों को बढ़ाते हैं और जो पितर इन्द्र आदि देवताओं को बढ़ाते हैं, उनमें से दूसरे अर्थात् इन्द्र आदि देवता स्वाहा के द्वारा अर्थात् यज्ञों में स्वाहा ध्वनि के साथ अर्पित की गई हवि आदि के द्वारा और दूसरे अर्थात् पितर स्वधा के द्वारा प्रसन्न होते हैं।

व्याकरण

मातली –मातलिः सारथिः यस्य स। मातलि+इनि=मातलिन्।

ववृधानः –वृध्+कानच्।

स्वाहा – स्वाहा, तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप।

स्वधा – स्वधा, तृतीया एकवचन।

संहिता–पाठ

4. इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।

आ त्वा मन्त्राः कविषस्ता वहन्त्व् एना राजन्हविषा मादयस्व।।

अन्वय – यम! अंगिरोभिः पितृभिः संविदानः इमम् प्रस्तरम् आसीद। हि कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आवहन्तु। राजन्! एना हविषा मादयस्व।

शब्दार्थ – प्रस्तरम् –यज्ञ में बिछे हुए आसन पर, **आसीद** –आकर बैठो, **अंगिरोभिः पितृभिः** –अंगिरा नाम के पितरों के साथ, **संविदानः** –एकमत होता हुआ, मिलकर, **कविषस्ताः** –कवियों द्वारा गाए गए, **आवहन्तु** –आवाहन करें, **एना** –इसलिए, **मावयस्व** –हर्षित करो।

अनुवाद –हे यम! अगिंरा नाम के इन पितरों के साथ एक मत होता हुआ या मिलकर इस विस्तृत यज्ञ विशेष में बिछे हुए आसन पर आकर बैठो। क्योंकि कवियों अर्थात् ऋषियों द्वारा प्रयुक्त किए गए या गाये गये मन्त्र तुम्हारा आवाहन करें, इसलिए हे राजन् यम इस हवि के द्वारा सन्तुष्ट होकर तुम यजमानों को हर्षित करो।

व्याकरण

प्रस्तरम् –प्र+स्तृ+अच् =प्रस्तर।

संविदानः –सम्+विद्+शानच्=संविदान।

कविषस्ताः –कविभिः शंसिताः। कवि+शंस्+क्त। अनुस्वार का लोप।

मन्त्राः –मन्+ष्ट्रन्=मन्त्र।

मादयस्व –णिजन्त 'मद्' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

5. अंगिरोभिरा गहि यज्ञियोभिर् यम वैरूपैरिह मादयस्व।

विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य।।

अन्वय – यमः वैरूपैः यज्ञियेभिः अंगिरोभिः आगहि, इह मादयस्व। यः ते पिता अस्मिन् यज्ञे विवस्वन्तम् हुवे बर्हिषि आ निषद्य।

शब्दार्थ – आगहि –आओ, **यज्ञियेभिः** –यज्ञ के योग्य, **वैरूपैः** –विविध रूपों को धारण करने वाले, **मादयस्व** –प्रसन्न करो, **हुवे** –आह्वान करता हूँ, **बर्हिषि** –कुशासन पर, **आ निषद्य** –बैठकर।

अनुवाद –हे यम! विविध रूपों को धारण करने वाले यज्ञ के योग्य अंगिरा नामक पितरों के साथ इस यज्ञ में आओ और आकर यजमानों को प्रसन्न करो। जो विवस्वान् (सूर्य) नामक तुम्हारे पिता हैं, इस यज्ञ में उन विवस्वान् का मैं आवाहन करता हूँ। वे बिछे हुए कुशासन पर बैठे कर यजमानों को आनन्दित करें।

व्याकरण

गहि –'गम्' धातु, लोट लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन को वैदिक रूप।

यज्ञियेभिः –'यज्ञम् अर्हति' अर्थ में यज्ञ+घ (इय)=यज्ञिय। तृतीया के बहुवचन में वैदिक रूप। लोक में 'यज्ञियैः' रूप होगा।

वैरूपैः –विरूपस्य भावः अर्थ में विरूप+ अण्=वैरूप।

निषद्य –नि+सद्+क्त्वा (ल्यप्)।

संहिता–पाठ

6. अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम् अपि भद्रे सौमनसे स्याम।।

अन्वय – अंगिरसः अथर्वाणः, भृगवः नः पितरः नवग्वाः सौम्यासः। वयम् तेषाम् यज्ञियानाम् सुमतौ स्याम अपि सौमनसे भद्रे।

शब्दार्थ – अंगिरसः –अंगिरा नाम के, **नवग्वाः** –नवीन गमन वाले, **अथर्वाणः** –अथर्वा नाम के, **भृगवः** –भृगु नाम के, **सोम्यासः** –सोमपान के अधिकारी, चन्द्रमा के समान आह्लादक, **सुमतौ** –पूर्ण बुद्धि में, **यज्ञियानाम्** –यज्ञ के योग्य, **भद्रे** –कल्याण के, **सौमनसे** –प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले।

अनुवाद –अंगिरा नाम के अथर्वा नाम के और भृगु नाम के हमारे पितर नवीन गमन वाले अर्थात् नई वस्तु के समान सदा प्रसन्नता देने वाले और सोम पान के अधिकारी अथवा चन्द्रमा के समान आह्लादक हैं। हम सब उन यज्ञ के योग्य पितरों की कृपा से पूर्ण बुद्धि में सदा रहें और प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले कल्याण के भागी बनें।

व्याकरण

नवग्वाः –नव+गम्+औणादिक ड्वन् (व) प्रत्यय 'टि' का, 'गम्' के 'अम्' का लोप होने पर=नवग्व।

सौम्यासः –सोमम् अर्हति अर्थ में सोम+यत्=सोम्य। प्रथमा के बहुवचन में वैदिक रूप। लोक में 'सोम्याः' रूप होगा।

सौमनसे –'शोभनं मनः=सुमनस्। सुमनसः भावः अर्थ में सुमनस्+अण्।

संहिता–पाठ

7. प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।।

अन्वय – यत्र नः पूर्वे परेयुः, पूर्व्येभिः पथिभिः प्रेहि प्रेहि। स्वधया मदन्ता राजाना यमम् वरुणम् च उभा देवम् पश्यासि।

शब्दार्थ – प्रेहि –शीघ्र जाओ, **पूर्व्येभिः** –प्राचीन पीतामह आदि के, **पूर्वे पितरः** –प्रचीन पितामह आदि, **परेयुः** –गए हैं, **राजाना** –दीप्तिमान् होते हुए, **स्वधया** –भोग्य पदार्थों से, **मन्दता** –तृप्त होते हुए।

अनुवाद –जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गए हैं पूर्वकाल में बने हुए अर्थात् सनातन काल से चले आने वाले उन मार्गों से, हे मेरे पिता तुम शीघ्र जाओ, शीघ्र जाओ। वहाँ जाकर तुम पितरों के योग्य भोज्य पदार्थों से तृप्त होते हुए और दीप्तिमान् होते हुए वरुण और यम इन दोनों देवो को देखो।

व्याकरण

पूर्व्येभिः –पूर्वं भवैः अर्थ में 'यत्' प्रत्यय। पूर्व+य=पूर्व्य। तृतीया का बहुवचन वैदिक रूप।

परेयुः –परा+इण् गतौ धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

उभा, राजानाः –प्रथमा विभक्ति, द्विवचन। वैदिक रूप। लोक में–उभौ, राजानौ।

मदन्ता –'मदि हर्षे' धातु, 'शतृ' प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति, द्विवचन। वैदिक रूप।

पश्यासि –दृश् (पश्य्) धातु, लेट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

8. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापर्तेन परमे व्योमन्।

हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चा।।

अन्वय – परमे व्योमन् पितृभिः संगच्छस्व, सम् यमेन, इष्टापूर्तेन। अवद्यम् हित्वाय पुनः अस्तम् आ अहि। सुवर्चाः तन्वा संगच्छस्व।

शब्दार्थ – संगच्छस्व –मिलो, **इष्टापूर्तेन** –श्रुति–स्मृति विहित दान आदि धर्म के अनुष्ठानभूत फलों से, **परमे व्योमन्** –उत्कृष्ट पितृलोक में, **हित्वाय** –छोड़ कर, **अवद्यम्** –पाप को, **अस्तम्** –घर, **तन्वा** –शरीर से, **सुवर्चाः** –दीप्ति युक्त।

अनुवाद –हे मेरे पिता! उस उत्कृष्ट पितृ लोक में तुम अपने पूर्वजों से मिलो, यम देवता से मिलो और श्रुति–स्मृति विहित दान आदि धर्म के अनुष्ठान भूत फलों से मिलो। पाप को छोड़कर पुनः इस व्रियमाण घर में आओ और यहाँ सुन्दर दीप्ति से युक्त शरीर से संयुक्त होओ अर्थात् सुन्दर शरीर प्राप्त करो।

व्याकरण

इष्टापूर्तेन –इष्टं च पूर्त च तयोः समाहारः। द्वन्द्व समास। इष्ट के 'अ' को दीर्घ।

व्योमन् –सप्तमी विभक्ति का एकवचन। वैदिक विभक्ति का लोप।

हित्वाय –हा+क्त्वा=हित्वा का वैदिक रूप। ऋग्वेद में हित्वा, हित्वी, हित्वाय ये तीन रूप मिलते हैं। हित्वाय में 'क्त्वो यक्'' सूत्र से यक् प्रत्यय जोड़ा गया है।

सुवर्चाः –शोभनं वर्चः यस्य तत्। तृतीया का एकवचन। वैदिक विभक्ति का लोप।

अस्तम् –अस्यते क्षिप्यते स्वँ वस्तु जातमस्मिन् अर्थ में अस्+त=अस्त। घर।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. वैदिक मंत्रों के अनुसार यम के पिता कौन हैं?

प्र॰2. यम का सम्बन्ध किससे हैं?

12.4यम सूक्त मन्त्र संख्या 9—16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता—पाठ

9. अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।

अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै।।

अन्वय – अतः अपेत, वीत, विसर्पत च। अस्मै पितरः एतम् लोकम् अक्रन्। यमः अस्मैः अहोभिः अद्भिः अक्तुभिः व्यक्तम् अवसानम् ददाति।

शब्दार्थ – अपेत –हट जाओ, **वीत** –विशेष रूप से चले जाओ, **विसर्पत** –सरक जाओ, **अस्मै** –एक मृत यजमान के लिए, **अक्रन्** –बनाया है, **अद्भिः** –जलों के द्वारा, **अक्तुभिः** –रात्रियों द्वारा, **व्यक्तम्** –पवित्र किए गए, **अवसानम्** –स्थान को।

अनुवाद –हे श्मशान में रहने वाले पिशाचादिको! इस स्थान से हट जाओ, विशेष रूप से चले जाओ और इस स्थान को छोड़कर सरक जाओ। पितरों ने इस मृत यजमान के लिए इस लोक को अर्थात् दहन–स्थान को बनाया है। यम ने इस मृत यजमान के लिए अनेक दिवसों से, जलों के द्वारा और रात्रियों के द्वारा पवित्र किए गए स्थान को दिया है।

व्याकरण

अक्रन् –'कृ धातु', लुङ्. लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

व्यक्तम् –वि+अंज्+क्त।

अक्तुभिः –अनक्ति सिंचति अवश्यायेन पृथिवीम् इस अर्थ में अब्ज्+क्तु = अक्तु। तृतीया का बहुवचन।

अवसानम् –अव+षो अन्तकर्मणि+ल्युट् (अन)।

संहिता—पाठ

10. अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।

अथा पितृन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति। |

अन्वय – साधुना पथा चतुरक्षौ शबलौ सारमेयौ श्वानौ अति द्रव। अथ सुविदत्रान् पितृन् उपेहि ये यमेन सधमादं मदन्ति।

शब्दार्थ – सारमेयौ –सरमा के पुत्र, **अतिद्रव** –पार करा दो, **चतुरक्षौ** –चार आँखों वाले, **शब्लौ** –चितकबरे, **सुविदत्रान्** –अच्छे ज्ञान वाले, **उपेहि** –प्राप्त करो, **सधमादम्** –सहर्ष, **मदन्ति** –आनन्द को प्राप्त करते हैं।

अनुवाद –हे अग्ने! तुम उत्तम मार्ग से चार आँखों वाले, चितकबरे, सरसा (देवताओं की कुतिया) के पुत्र दोनों कुत्तों को बचा कर इस पिता को पार करा दो। हे पिता! इस सुन्दर मार्ग से जाने के बाद तुम अच्छे ज्ञान वाले पितरों को प्राप्त करो, जो यम के साथ सहर्ष आनन्द को प्राप्त करते हैं।

व्याकरण

सारमेयौ –सरमायाः अपत्यम् अर्थ में सरमा+ठक् (एय)=सारमेय।

द्रव –'द्रु' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

सुविदत्रान् –विद्+अत्रच्=विदत्र। शोभनं विदत्रं यस्य स सुविदत्रः।

सधमादम् –मदी हर्षे+घञ्=मद। मादेन सह=सधमादम् 'ह' को 'ध' आदेश।

संहिता–पाठ

11. यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।

ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि।।

अन्वय – यम! यौ ते चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ रक्षितारौ श्वानौ, राजन्! ताभ्याम् एनम् परिदेहि, अस्मै स्वस्ति च अनमीवम् च धेहि।

शब्दार्थ – रक्षितारौ –यम के घर की रक्षा करने वाले, **पथिरक्षी** –मार्ग की रक्षा करने वाले, **नृचक्षसौ** –मनुष्यों से बताए जाने वाले, **परि देहि** –रक्षा करो, **अनमीवम्** –नीरोगता।

अनुवाद –हे यम! जो तुम्हारे चार आँखों वाले, मार्ग की रक्षा करने वाले, श्रुति–स्मृति–पुराणों द्वारा मनुष्यों से बताए जाने वाले, यम के घर की रक्षा करने वाले दो कुत्ते हैं, हे राजन् यम उन कुत्तों से इस प्रेत मनुष्य की रक्षा करो और प्रेत को कल्याण एवं नीरोगता प्रदान करो।

व्याकरण

पथिरक्षी –पथिन्+रक्ष्+इनि=पथिरक्षिन्। द्वितीया का द्विवचन।

नृचक्षसौः –नरः मनुष्याः चक्षते यौ तौ। नृ+चक्ष्+असुन्=नृचक्षस्।

अनमीवम् –अमीवायाः अभावः।

संहिता–पाठ

12. उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।

तावस्मभ्यं दृषये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्।।

अन्वय – उरूणसौ असुतृपौ उदुम्बलौ यमस्य दूतौ जनान् अनुचरतः। तौ सूर्याय दृषये अद्य इह अस्मभ्यम् पुनः भद्रम् असुम् दाताम्।

शब्दार्थ – उरूणसौ –बड़ी नासिका वाले, **असुतृपौ** –प्राणों से तृप्त होने वाले, **उदुम्बलौ** –महान् बलशाली, **दृषये** –देखने के लिए, **दाताम्** –प्रदान करो।

अनुवाद –बड़ी नासिका वाले, प्राणों से तृप्त होने वाले, महान् बलशाली यम के दूत रूप वे दोनों कुत्ते मनुष्यों के पीछे–पीछे सब जगह घूमते हैं। वे दोनों सूर्य को देखने के लिए अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त कराने के लिए आज के दिन इस कर्म से हमारे लिए पुनः कल्याणकारी प्राणों को प्रदान करें।

व्याकरण

उरूणसौ –उरू प्रबले नासिके ययोः तौ। 'नासिका' को 'नस' आदेश।

असुतृपौ –असुभिः तृप्यन्तौ। असु+तृप्+क्विप्। प्रथमा का द्विवचन।

उदुम्बलौ–उरु बलं ययोः तौ। 'र्' को 'द्' आदेश और 'मुम्' का आगम छान्दस।

दृषये –दृश्+कि=दृशि। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

दाताम् –'दा' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'दात्ताम्' बनता है।

संहिता–पाठ

13. यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।

यमं ह यज्ञो गच्छत्य् अग्निदूतो अरंकृतः।।

अन्वय – यमाय सोमम् सुनुत, यमाय हविः जुहुत। अग्निदूतः अरंकृतः यज्ञः यमम् ह गच्छति।

शब्दार्थ – सुनुत –अभिषव करो, **जुहुत** –हवन करो, **अग्निदूतः** –अग्नि रूप दूत वाला, **अरंकृत** –नाना प्रकार के द्रव्यों से अलंकृत।

अनुवाद –हे ऋत्विजो! यम देवता के लिए सोमरस का अभिषव करो अर्थात् सोमलता को कूट कर उसका रस निकालो तथा यम के लिए हवि से हवन करो अर्थात् आहुतियों को हवन में डालो। अग्नि रूप दूत वाला और नाना प्रकार के द्रव्यों से अलंकृत यज्ञ यम को ही निश्चय से प्राप्त होता है।

व्याकरण

सुनुत –'षुञ् अभिषवे' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

अरंकृतः –अरम्+कृ+क्त। यह वैदिक रूप है, जिसका रूपान्तर संस्कृत में 'अलंकृत' है।

संहिता–पाठ

14. यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।

स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे।।

अन्वय – यमाम घृतवत् हविः जुहोत प्रतिष्ठत च। देवेषु स प्रजीवसे नः दीर्घम् आयुः आ यमत्।

शब्दार्थ – घृतवत् –घी से युक्त, **जुहोत** –हवन करो, **प्रतिष्ठत** –दीर्घ जीवन के लिए।

अनुवाद –हे ऋत्विजो! तुम यम देवता के लिए घी से युक्त हवि से हवन करो और उस यम की उपासना करो। देवताओं के मध्य में वह यम दीर्घ जीवन के लिए हमें दीर्घ आयु को प्रदान करे।

व्याकरण

प्रतिष्ठत –प्र+स्था, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

यमत् –'यम्' धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

प्रजीवसे –प्र+जीव्+असे। 'तुमुन्' के अर्थ में 'असे' प्रत्यय हुआ है।

संहिता–पाठ

15. यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।।

अन्वय – राज्ञे यमाय मधु मत्तमम् हव्यम् जुहोतन। पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ऋषिभ्यः इदम् नमः।

शब्दार्थ – मधुमत्तमम् –अतिशय मधुर, **पूर्वजेभ्यः** –सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले, **पूर्वेभ्यः** –हमसे पहले होने वाले, **पथिकृद्भ्यः** –शोभनमार्ग का दर्शन कराने वाला।

अनुवाद –हे ऋत्विजो! राजा यम के लिए अतिशय मधुर हवि का हवन करो। सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले और हमसे पहले होने वाले शोभन मार्ग का दर्शन कराने वाले ऋषियों के लिए यह नमस्कार है।

व्याकरण

मधुमत्तमम् –मधु+मतुप्=मधुमत्। अतिशयेन मधुमत्=मतुमत+तमप्।

हव्यम् –हु+यत्=हव्य।

जुहोतन –'हु' धातु, लोट लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

पथिकृद्भ्यः –पथिन्+कृ+क्विप्=पथिकृत्।

16. त्रिकद्रुकेभिः पतति पलुर्वरिकमिद् बृहत्।

त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता।।

अन्वय – त्रिकद्रुकेभिः पतित। षट् उर्वीः एकम् इत् बृहत्। त्रिष्टुप्, गायत्री छन्दांसि ता सर्वा यमे आहिता।

शब्दार्थ – त्रिकद्रुकेभिः –तीन कद्रुको, ज्योति, आयु और गौ नामक तीन यज्ञ विशेषों को, **पतति** –प्राप्त करता है, **षड्डुर्वीः** –छः भूमियों–द्यौः, पृथिवी, आपः ओषधयः, ऋक् और सूनृता को, **बृहत्** –विराट्, **आहिता** –निहित हैं।

अनुवाद –वह यमराज तीन कद्रुकों अर्थात्, ज्योति, आयु और गौ नामक तीन यज्ञ विशेषों को प्राप्त करता है अथवा रक्षा करता है। वह यम छः भूमियों–द्यौ, पृथिवी, आपः, ओषधयः, ऋक् और सूनृता तथा एक मात्र इस विराट् संसार की भी रक्षा करता है। त्रिष्टुप्, गायत्री आदि सभी छन्द उस यम में निहित हैं, अर्थात् यजमान और ऋत्विक् इन छन्दों में यम की स्तुति करते हैं।

व्याकरण

त्रिकद्रुकेभिः –त्रि+क+द्रु+कन् (क) =त्रिकद्रुक। तृतीया के बहुवचन में वैदिक रूप। यहाँ द्वितीया के अर्थ में वैदिक व्यत्यय से तृतीया का प्रयोग हुआ है।

अहिता –आ+धा+क्त=अहित। सर्वा, ता, आहिता में नपुंसकलिंग में प्रथमा का बहुवन है और ये वैदिक रूप हैं। लोक में सर्वाणि, तानि और आहितानि रूप बनेंगे।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

1. यम सूक्त में सर्वश्रेष्ठ यान किसे कहा है?

प्र॰2. यम का अन्य नाम क्या है?

प्र॰3. यम का निवास स्थान कहां है?

प्र॰4. यम से सम्बन्धित सूक्तों का पाठ कब किया जाता है?

12.5 सारांष

ऋग्वेद में यम देवता को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। निरुक्त के अनुसार यम शब्द की व्युत्पत्ति है–**'यमो गच्छतीति सतः' (निरुक्त, 10.19)।** यहां पर यम शब्द यम धातु से कर्ता में निष्पन्न है जिसका अर्थ है जो प्राणियों को उपरमण करता है अर्थात् प्राणियों के प्राणों को छुड़ाकर ले जाता है। यम सूक्त में मृतक की दो गतियां बताई गई हैं– पितृयान एवं देवयान। इनमें से देवयान अधिक श्रेष्ठ हैं। यम दोनों मार्गों में मृतक की रक्षा करता है और उसको लोक–लोकांतरों में पहुंचाता है। अर्थात् जीव अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न लोकों में जाता है। यम जीवों के कर्मों का निर्णय करता है। वह पुण्य आत्माओं को प्रकाश वाले स्थानों पर भेजता है। यम का निवास सुदूर अन्तरिक्ष में बताया गया है। यम से सम्बन्धित सूक्तों का पाठ दाह–संस्कार के समय किया जाता है। इससे पता चलता है कि वैदिक युग से ही भारतीयों में शव दाह की प्रथा रही है। यम ने ही परलोक की खोज की थी। उसी के द्वारा प्राचीन पितरों के स्थान तक पहुंचा जा सकता है। मृत्यु ही यम मार्ग है। उल्लू और कबूतर यम के दूत हैं तथा दो चतुरक्ष, दीर्घघोण, सारमेय श्वान उसके सेवक हैं। वे मार्ग की रक्षा करते हैं और मृतक को यम के पास ले जाते हैं। दाह–संस्कार के समय अग्नि और सोम से प्रार्थना की जाती है कि वे इस शरीर को पशुओं, पक्षियों, चींटियों और सर्पों से बचाए। यम शब्द का अर्थ युगल भी है। यम–यमी सूक्त में यम और यमी परस्पर वार्तालाप करते हैं। इनको कुछ विद्वानों के द्वारा पति–पत्नी तथा भाई–बहन बताया गया है। कई विद्वानों का कहना है कि यम नाम प्राण वायु का है। इसके निरोध को प्राणायाम कहा गया है और वह हठयोग का आधार है।

12.6 कठिन शब्दावली

प्रवतः –उत्कृष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों को

गातुम –कर्म को, मार्ग को

मातली –मातलि नामक सारथि वाले इन्द्र देवता

हुवे –आह्वान करता हूँ

स्वधया –भोग्य पदार्थों से

संगच्छस्व –मिलो

सुवर्चा –दीप्ति युक्त

सुविदत्रान् –अच्छे ज्ञान वाले

संगमनम् –गन्तव्य, ले जाने वाला

आगहि –आओ

बर्हिषि –कुशासन पर

प्रेहि –शीघ्र जाओ

मदन्ता –तृप्त होते हुये

अवद्यम् –घर

अद्भिः –जलों के द्वारा

अवमीवम् –नीरोगता

जुहोत –ध्वम करो **प्रतिष्ठत** –उपासना करो

12.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. विवस्वान्

  उ॰2. पितरों से

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  उ॰1. देवयान

  उ॰2. प्राण वायु

  उ॰3. अन्तरिक्ष में

  उ॰4. दाह–संस्कार के समय

12.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

12.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. यम सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. यम का स्वरूप स्पष्ट कीजिये।
3. मो नो गातुं प्रथमो .... जज्ञानाः पथ्या३अनु स्वाः।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
4. अंगिरोभिरा गहि .... तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करो।
5. यमाय सोम सुनुत .... गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करो।
6. किन्हीं चार पदों पर व्याकरणिक टिप्पणी करें–

   1. पन्थाम्, 2. प्रवतः, 3. स्वाहा, 4. मदन्ती, 5. दाताम्, 6. अरंकृतः, 7. प्रतिष्ठत।

इकाई – 13

पुरुष सूक्त (10.90)

संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3पुरुष सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

13.4पुरुष सूक्त मन्त्र संख्या 9–16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रश्न

13.5 सारांष

13.6 कठिन शब्दावली

13.7 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

13.8 अनुषंसित ग्रन्थ

13.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त को लिया गया है। यह ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 90वां सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि नारायण हैं, देवता पुरुष हैं तथा इसमें 1–15 मन्त्रों तक अनुष्टुप छन्द हैं, 16वें मन्त्र में त्रिष्टुप छन्द हैं। इसका देवता महदादि लक्षणों से युक्त पुरुष है। इस सूक्त में सृष्टि के पदार्थों की रचना का वर्णन किया गया है।

13.2 उद्देष्य

1. सृष्टि की मूल रूप से रचना करने वाला पुरुष है, जिसके सभी अंग सृष्टि के विभिन्न अंग बन जाते हैं। सृष्टि की रचना एक यज्ञ का रूप है।
2. सृष्टि उत्पत्ति विषयक समस्या का समाधान करने वाले सूक्तों में पुरुष सूक्त प्रथम है।
3. पुरुष सूक्त एकेश्वरवाद को प्रतिपादित करने वाले दार्शनिक सूक्तों में से एक महत्त्वपूर्ण सूक्त है।
4. पुरुष सूक्त विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन करता है।
5. पुरुष सूक्त में एक परम पुरुष की उपासना की गई है।

13.3पुरुष सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

पुरुष सूक्त (मण्डल 10, सूक्त 90)

ऋषि–नारायण, देवता – पुरुष, छन्द – अन्तिम, मन्त्र में त्रिष्टुप् तथा अन्य सबमें अनुष्टुप्।

संहिता–पाठ

1. सहस्रषीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमि विष्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दषांगुलम्।।

अन्वय – पुरुषः सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपात्। सः भूमिम् विष्वतः वृत्वा दषांगुलम् अत्यतिष्ठत्।

शब्दार्थ – सहस्रशीर्षाः –हजारों सिर वाला, **सहस्राक्षः** –हजारों आँखों वाला, **सहस्रपात्** –हजारों पैरों वाला, **विश्वतः** –चारों ओर से, **वृत्वा** –व्याप्त करके, **अति अतिष्ठत्** –पार करके स्थित है, **दशांगुलम्** –दस अंगुल परिमाण में।

अनुवाद –वह परम पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों (अनन्त) सिर वाला, हजारों आँखों वाला और हज़ारों पैरों वाला है। वह भूमि को चारों ओर से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए हैं।

व्याकरण

स्हस्रशीर्षाः –सहस्रं शिरांसि यस्य स।

सहस्राक्षः –सहस्रं अक्षीणि यस्य स। सहस्र+अक्षि। समासान्त 'षच्' प्रत्यय और 'टि' का लोप – सहस्राक्ष।

सहस्रपात् –सहस्रं पादाः यस्य। सहस्र+पाद। ''पादस्य लोपोऽह – स्त्यादिभ्यः'' सूत्र से 'पाद' के 'अ' का लोप।

पुरुषः –पुरि शेते अर्थ में पुर+शी+क। वैदिक निपातनात् रूप बनता है।

दशांगुलम् –दशानाम् अंगुलीनाम् समाहारः। दश+अंगुली। समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'टि' का लोप = दशांगुल।

2. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भुतं यच्च भव्यम्।

उतामृतत्वस्येषानो यदन्नेनातिरोहति।।

अन्वय – इदम् सर्वम् पुरुषः एव। यत् भूतम् यत् च भव्यम्। उत अमृतत्वस्य ईषानः यत् अन्नेन अतिरोहति।

शब्दार्थ – भूतम् –हो चुका है, **भव्यम्** –होगा, **अमृतत्वस्य** –देवताओं का अमरत्व का, **ईशानः** –स्वामी है, **अन्नेन** –अन्न से, भोग्य पदार्थों से, **अतिरोहति** –बढ़ता है।

अनुवाद –यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, अर्थात् भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरुष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। जो पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त होता है।

व्याकरण

भव्यम् –भूत+यत्=भव्य।

अमृतत्वस्य –न+मृ+क्त=अमृत। अमृतस्य भावः अर्थ में त्व प्रत्यय।

संहिता–पाठ

3. एतावानस्य महिमातो ज्यायांष्च पूरुषः।

पादोऽस्य विष्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।

अन्वय – एतावान् अस्य महिमा। पुरुषः च अतः ज्यायान्। विश्वा भूतानि अस्य पादः। अस्य त्रिपात् अमृतम् दिवि।

शब्दार्थ – एतावान् –इतनी, **ज्यायान्** –अधिक विराट है, **पादः** –चौथाई अंश, **विष्वा** –सम्पूर्ण, **भूतानि** –प्राणी, **त्रिपात्** –तीन चौथाई, **अमृतम्** –अविनाशी रूप से, **दिवी** –द्युलोक में।

अनुवाद –इतनी इसकी महिमा है, अर्थात् भूत–भविष्यत्–वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है, इसका स्वरूप नहीं और इसलिए यह पुरुष तो इससे भी अधिक विराट् ही है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् तो इसका केवल एक पाद (चौथाई अंश) है। इसके तीन पाद (तीन चौथाई अंश) अविनाशी रूप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रूप में अवस्थित रहते हैं।

व्याकरण

एतावान् –एतद्+मतुप्। 'आसर्वनाम्नः'। सूत्र से आकार आदेश।

महिमा –महत्+इमनिच्=महिमन्। प्रथमा एकवचन।

ज्यायान् –अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः अर्थ में 'ईयसुन्' के 'ई' को 'आ' आदेश।

त्रिपात् –त्रयाणां पादानां समाहारः। ''पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः'' सूत्र से 'पाद' के 'अ' का लोप।

संहिता–पाठ

4. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साषनानषने अभि।।

अन्वय – त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्। अस्य पादः इह पुनः अभवत्। ततः साषनानषने अभि विष्वङ्. व्यक्रामत्।

शब्दार्थ – त्रिपात् –तीन पादों वाला, **ऊर्ध्वः** –जगत् से ऊपर, **उदैत्** –उठा हुआ है, **इह** –इस भौतिक जगत् के रूप में, **पुनः** –बार–बार, **अभवत्** –होता है, **विष्वङ्.** –विविध रूपों वाला, **वि अक्रामत्** –व्याप्त करके स्थित है, **साशनानषने** –भोजन करने वाले और भोजन न करने वाले, चेतन और अचेतन।

अनुवाद –संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है अर्थात् विश्व के गुण दोषों से रहित है। इसका एक पाद इस भौतिक जगत् के रूप में बार–बार होता है, अर्थात् इसमें सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होते रहते हैं। इसके बाद अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने पर भोजन करने वाले और

भोजन न करने वाले अर्थात् चेतन अचेतन जगत् को लक्ष्य करके विविध रूपों वाला पुरुष व्याप्त करके स्थित है।

व्याकरण

साशनानषने –अश्+ल्युट् (अन)=अशन। अशनेन सहितः साशनः। अशनेन रहितः अनशनः। साशनश्च अनशनश्च साशनानशने।

विष्वङ्. –विषु सर्वत्र अंचति अर्थ में विषु+अंच्+क्विप्।

5. तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।

अन्वय – तस्मात् विराट् अजायत। विराजः अधि पुरुषः। सः जातः अत्यरिच्यत। पश्चात् भूमिम् अथो पुरः।

शब्दार्थ – विराट् –ब्रह्माण्ड देह, व्यक्त जगत्, **अधिपुरुषः** –जीवात्मा, **अत्यरिच्यत** –सबसे आगे बढ़ गया, **पुरः** –शरीरों को।

अनुवाद –उस आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड देह, व्यक्त जगत्) उत्पन्न हुआ। ब्रह्माण्ड देह का आश्रय लेकर उससे पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सबसे आगे बढ़ गया अर्थात् पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के रूप में चेतनता को प्राप्त करके अन्य जगत् से बढ़ कर था। पश्चात् उस पुरुष ने भूमि और शरीरों को बनाया।

व्याकरण

विराट् –विशेषेण राजते अर्थ में– वि+राज्+क्विप्।

अरिच्यतः –रिचिर् (रिच्) धातु, कर्मकारक में लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

पुरः –पूर्यन्ते सप्तभिः धातुभिः अर्थ में पुर्+क्विप्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

6. यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।

अन्वय – यत् देवाः पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत वसन्तः अस्य आज्यम् आसीत्, ग्रीष्यः इध्मः, शरत् हविः।

शब्दार्थ – पुरुषेण हविषा –पुरुष रूप हवि के द्वारा, **अतन्वत** –किया, **आज्यम्** –घृत, **इध्मः** –ईंधन, **हविः** –हवन।

अनुवाद –जब, अर्थात् सृष्टि के रचना क्रम के इस प्रकार प्रारम्भ होने पर देवताओं ने सृष्टि के क्रम को आगे बढ़ाने के लिए पुरुष रूप हवि द्वारा यज्ञ को (सृष्टि रचना रूपी यज्ञ को मानसिक यज्ञ को) किया अर्थात् आगे सृष्टि की रचना का आरम्भ किया तो वसन्त ऋतु इस यज्ञ का घृत था, ग्रीष्म ईंधन हुआ और शरद् ऋतु हवन बनी। अर्थात् विभिन्न ऋतुएं उत्पन्न हुईं।

व्याकरण

यत् –यह 'यदा' का वैदिक रूपान्तर है।

अतन्वत –'तनु विस्तारे' धातु, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

आज्यम् –'अंज्' धातु से ''ऋहलोर्ण्यत्'' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय।

इध्मः –इन्ध् धातु से निपातनात् बनता है।

संहिता–पाठ

7. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

अन्वय – अग्रतः जातम् यज्ञम् तम् पुरुषम् बर्हिषि प्रौक्षन्। तेन देवाः ये च साध्याः ऋषयः च अयजन्त।

शब्दार्थ – बर्हिषि –मानसिक यज्ञ में, यज्ञ की वेदी पर, **प्रौक्षन्** –जल छिड़का, **अग्रतः** –सबसे पहले, **अयजन्त** –यजन किया, **साध्याः** –सृष्टि–उत्पत्ति के साधनभूत प्रजापति।

अनुवाद –सबसे पहले अर्थात् सृष्टि से पूर्व उत्पन्न हुए, यजनीय या यज्ञ रूप उस पुरुष रूप पशु पर यज्ञ की वेदी पर देवताओं ने जल छिड़का अर्थात् उसको जल छिड़क कर पवित्र किया। उस प्रोक्षित पुरुष रूप पशु से देवताओं ने, साध्य अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के साधनभूत प्रजापति आदियों ने और मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यजन किया।

व्याकरण

प्रौक्षन् –प्र+उक्ष् सेचने, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

साध्याः –साध्+ण्यत्=साध्य।

8. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।

पशूंताश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान्ग्राम्यांश्च ये।।

अन्वय – सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् पृष्दाज्यम् संभृतम्। वायव्यान्, आरण्यान्, ये, च ग्राम्याः तान् पशून् चक्रे।

शब्दार्थ – सर्वहुतः –जिसमें सभी कुछ आहुत कर दिया जाता है, **संभृतम्** –उत्पन्न हुआ, **पृषादाज्यम्** –दही से युक्त घी, **वायव्यान्** –वायु में विचरण करने वाले, **आरण्यान्** –जंगलों में रहने वाले, **ग्राम्यान्** –गाँवों में रहने वाले।

अनुवाद –जिस यज्ञ में सभी कुछ अथवा सब का आत्मरूप पुरुष आहुत कर दिया जाता है, ऐसे उस यज्ञ से दही से युक्त घी उत्पन्न हुआ अर्थात् बनाया गया और उसने वायु या अन्तरिक्ष में विचरने वाले पशु अर्थात् पक्षी, जंगलों में रहने वाले हरिण आदि पशु और जो गाँवों में रहने वाले अश्व, गौ आदि पशु हैं, वे भी बनाए।

व्याकरण

सर्वहुतः –सर्व+हु+क्विप्=सर्वहुत्। पंचमी विभक्ति का एकवचन।

पृषदाज्यम् –पृषत् च आज्यम् च तयोः समाहारः।

वायव्यान् –वायु+यत्=वायव्य।

आरण्यान् –अरण्य+ण (अ) =आरण्य।

ग्राम्याः –ग्राम+यत्=ग्राम्य।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. सहस्त्रशीर्षा एवं सहस्त्राक्षः किसे कहा गया है?

    प्र॰2. पुरुष सूक्त में मंत्रों की संख्या कितनी हैं?

    प्र॰3. पुरुष सूक्त कैसा सूक्त है?

    प्र॰4. सृष्टि का मूल उपादान कारण क्या है?

13.4 पुरुष सूक्त मन्त्र संख्या 9–16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

9. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।

अन्वय – सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि। तस्मात् यजुः अजायत।

शब्दार्थ – ऋचः –ऋग्वेद, **सामानि** –सामवेद, **जज्ञिरे** –उत्पन्न हुए, **छन्दांसि** –गायत्री आदि छन्द, **यजुः** –यजुर्वेद।

अनुवाद –जिस यज्ञ में सभी कुछ अर्थात् सबका आत्मरूप पुरुष आहुत कर दिया जाता है, ऐसे उस यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए उससे गायत्री आदि छन्द उत्पन्न हुए। उससे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

व्याकरण

ऋचः –ऋच्+क्विप्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

सामानि –षो (सो) + मनिन्=सामन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

जज्ञिरे –'जनी प्रादुर्भावे' धातु लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

यजुः –यज्+उस्।

अजायत –'जनी प्रादुर्भावे' धातु, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संहिता–पाठ

10. तस्मादष्वा अजायन्त ये केचोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः।।

अन्वय – तस्मात् अष्वाः अजायन्त। ये के च उभयादतः। तस्मात् ह गावः जज्ञिरे। तस्मात् अजावयः जाताः।

शब्दार्थ – अजायन्त –उत्पन्न हुए, **उभयादतः** –ऊपर नीचे दोनों ओर दान्तों वाले, **अजावयः** –भेड़ें और बकरियाँ।

अनुवाद –उस यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुए और जो घोड़ों के अतिरिक्त ऊपर–नीचे दोनों और दान्तों वाले गधे, खच्चर आदि पशु हैं, वे उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से गायें उत्पन्न हुई और उस यज्ञ से बकरियाँ और भेड़ें उत्पन्न हुई।

व्याकरण

उभयादतः –उभयतः दन्ताः येषां ते अर्थ में उभय+दन्त। 'उभय' के अन्तिम 'अ' को दीर्घ और 'दन्त' को 'दत्' आदेश/प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

अजावयः –अजाश्च अवयश्च अजावयः। द्वन्द्व समास।

संहिता–पाठ

11. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते।।

अन्वय – यत् पुरुषम् व्दधुः, कतिधा व्यकल्पयन्? अस्य मुखम् किम्, कौ बाहु, कौ ऊरू पादौ उच्येते?

शब्दार्थ – व्यदधुः –विभाजित किया, **कतिधा** –कितने रूपों में, **व्यकल्पयन्** –विविध प्रकार से कल्पित किया, **ऊरू** –जांघें, **उच्येते** –कहे जाते हैं।

अनुवाद –प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने जब उस विराट् रूप पुरुष को विभाजित किया तो उसको कितने रूपों में विविध रूप से कल्पित किया? इस पुरुष का मुख कौन सा था, कौन सी भुजायें थीं, कौन सी जंघाएं थीं और कौन से पैर कहे जाते हैं?

व्याकरण

व्यदधुः –वि+धा, लङ्. लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

कतिधा –कति+धा।

संहिता–पाठ

12. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैष्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

अन्वय – अस्य मुखम् ब्राह्मणः आसीत्। बाहू राजन्यः कृतः। अस्य यद् ऊरू तद् वैष्यः। पद्भ्याम् शूद्रः अजायत।

शब्दार्थ – अस्य –इस पुरुष का, **राजन्यः** –क्षत्रिय, **ऊरू** –जांघें, **पद्भ्याम्** –पैरों से।

अनुवाद –इस पुरुष का मुख ब्राह्मण हुआ अर्थात् ब्राह्मण इसके मुख से उत्पन्न हुए। भुजाओं को क्षत्रिय बनाया गया, अर्थात् क्षत्रिय इसकी भुजाओं से उत्पन्न हुए। जो इसकी जांघें थीं वे वैश्य हुए, अर्थात् वैश्य इस पुरुष की जांघों से उत्पन्न हुए और इसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।

व्याकरण

ब्राह्मण – ब्रह्मन्+अण्।

राजन्यः –राजन् शब्द से 'राजश्वसुराद्यत् सूत्र से यत् प्रत्यय।

संहिता–पाठ

13. चन्द्रमा मनसो जातश् चक्षोः सूर्यो अजायत।

मुखादिन्द्रष्चाग्निष्च प्राणाद्वायुरजायत।।

अन्वय – मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत।

शब्दार्थ – मनसः –मन से, **जातः** –उत्पन्न हुआ, **चक्षोः** –आँख से, **अजायत** –उत्पन्न हुआ।

अनुवाद –इस प्रजापति रूप पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

व्याकरण

चक्षोः –'चक्षु' शब्द, पंचमी विभक्ति, एकवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'चक्षुषः' रूप होगा।

संहिता–पाठ

14. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

पदभ्या भूमिर्दिषः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्।।

अन्वय – नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्, शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत। पद्भयाम् भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, तथा लोकान् अकल्पयन्।

शब्दार्थ – नाभ्या –नाभि से, **शीर्ष्णोः** –सिर से, **समवर्तत** –उत्पन्न हुआ, **अकल्पयत्** –रचना की।

अनुवाद –उस प्रजापति रूप परम पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक बना, सिर से द्यु लोक उत्पन्न हुआ, दोनों पैरों से भूमि उत्पन्न हुई और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुई। इस प्रकार उस पुरुष से देवताओं ने लोगों की रचना की।

व्याकरण

नाभ्याः –नाभि शब्द, पंचमी विभक्ति, एकवचन।

शीर्ष्णः –'शिरस्' शब्द को वैदिक 'शीर्षन्' आदेश। पंचमी विभक्ति का एकवचन।

लोकाँ अकल्पयत् –वैदिक संधि के अनुसार 'न्' को 'ँ' हुआ।

संहिता–पाठ

15. सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिः समिधः कृताः।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नम् पुरुषं पशुम्।।

अन्वय – यज्ञं तन्वानाः यत् देवाः पुरुषम् पशुम् अब्ध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः।

शब्दार्थ – तन्वानाः –सम्पादन करते हुए, **अबध्नम्** –बाँधा।

अनुवाद –सृष्टि उत्पत्ति रूप मानस यज्ञ रूप का सम्पादन करते हुए जब देवताओं ने विराट् पुरुष रूपी पशु को बाँधा अर्थात् स्वीकार किया तो इस यज्ञ की सात परिधियाँ और इक्कीस समिधाएं बनाई गई।

व्याकरण

परिधयः –परि+धा+कि =परिधि। प्रथम विभक्ति का बहुवचन।

समिधः –सम्+इन्ध्+क्विप् = समिध्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

तन्वानाः –तनु+उ+शानच् = तन्वान। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

संहिता–पाठ

16. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास् तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

अन्वय – देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त। तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। महिमानः ते ह नाकं सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति।

शब्दार्थ – यज्ञेन –संकल्प रूप मानस यज्ञ के द्वारा, **यज्ञम्** –परम पुरुष यज्ञ रूप प्रजापति का, **अयजन्त** –यजन किया था, **धर्माणि** –नियम, सृष्टि उत्पत्ति के विधान, **प्रथमानि** –सबसे मुख्य, **नाकम्** –दिव्य स्वर्ग को, **महिमानः** –महिमा को प्राप्त करने वाले, **पूर्वे** –प्राचीन काल के, **साध्याः** –सिद्धि को प्राप्त करने वाले, **सचन्त** –प्राप्त करते हैं।

अनुवाद –देवताओं ने उस संकल्प रूप मानस यज्ञ के द्वारा उस यज्ञ रूप परम पुरुष प्रजापति का यजन (पूजन) किया था। उससे उत्पन्न हुए उनके वे धर्म (नियम या सृष्टि उत्पत्ति के विधान) सबसे मुख्य हुए। महिमा को प्राप्त करने वाले वे देवता उस दिव्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, जहाँ प्राचीन काल में सिद्धि को प्राप्त करने वाले देवता रहते हैं।

व्याकरण

धर्माणि –धृ+मनिन् (मन्)=धर्म। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

नाकम् –कमिति सुखम्। न+कःअकः दुःखम्। न+अकः नाकः सुखम्।

महिमान –महत्+इमनिच्=महिमन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

सचन्त –षच् (सच्) धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष का बहुवचन। वैदिक रूप है धातु के पूर्व का 'अ' लुप्त है। वर्तमान के अर्थ में लड्. लकार।

साध्याः –साध् + ण्यत् =साध्य।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 2**

प्र॰1. पुरुष सूक्त के ऋषि एवं देवता कौन हैं?

प्र॰2. पुरुष सूक्त में किसके स्वरूप का वर्णन किया गया है?

प्र॰3. चारों वर्णों की उत्पत्ति किससे मानी गई है?

प्र॰4. पुरुष को उपनिषदों में क्या कहा गया है?

13.5 सारांष

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसमें परम पुरुष की उपासना की गई है और एक देवतावाद का प्रतिपादन किया गया है। एकेश्वरवाद को प्रतिपादित करने वाले। 12 दार्शनिक सूक्तों में से एक महत्त्वपूर्ण सूक्त है। इस सूक्त का प्रभाव भगवद्गीता के 11वें अध्याय के विराट् पुरुष पर पड़ा है। विराट् पुरुष हज़ारों सिरों, आँखों और पैरों वाला है और उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रखा है। इस पुरुष से सभी वर्णों की उत्पत्ति हुई है, बसन्त आदि ऋतुएं, ऋक्, यजुस् और साम उत्पन्न हुए हैं। पुरुष सूक्त के अनुसार भौतिक जगत्– वृक्ष, पशु, तृण, सूर्य, चन्द्र आदि की सृष्टि मनुष्य की सृष्टि से पहले हुई है। ऋषियों के द्वारा इस पुरुष यज्ञ का विस्तार हुआ था। इस सूक्त का रहस्य आत्मज्ञान के द्वारा जीवन को सफल बनाना है।

इस सूक्त में पुरुष की हवि से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। इसके अनुसार पुरुष का शरीर ही मूल सामग्री है। यह (पुरुष) सृष्टि का उपादान कारण है। देवता केवल सहायक उपकरण हैं। इसके अन्तर्गत विराट् पुरुष तथा उसके अंगों का वर्णन किया गया है। इसे वैदिक ईश्वर का स्वरूप माना गया है। यह सम्पूर्ण जगत् पुरुष है और भूत तथा भविष्य जगत् है, वह भी पुरुष है।

पुरुष सूक्त में दार्शनिक तथ्यों को देखते हुए पुरुष का अर्थ व्यापक अर्थ में ही करना अधिक उपयुक्त एवं प्रासंगिक है। यही पुरुष उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म कहलाया है।

13.6 कठिन शब्दावली

सहस्त्रशीर्षाः –हजारों सिर वाला

विश्वतः –चारों सिर वाला

ईशानः –स्वामी है

विराट् –ब्रह्माण्ड देह, व्यक्त जगत्

पुरः –शरीर को

आज्यम् –घृत

बर्हिषि –मानसिक यज्ञ में, यज्ञ की वेदी पर

संभृतम् –उत्पन्न हुआ

व्यदधुः –विभाजित किया

ऊरू –जाँघें

राजन्य –क्षत्रिय

समवर्तत –उत्पन्न हुआ

अकल्पयन् –रचना की

नाकम् –दिव्य स्वर्ग को

सचन्त –प्राप्त करते हैं

13.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  उ॰1. विराट् पुरुष

  उ॰2. सोलह

  उ॰3. दार्शनिक सूक्त

  उ॰4. पुरुष

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 2**

  उ॰1. ऋषि नारायण, देवता पुरुष

  उ॰2. विराट् पुरुष

  उ॰3. विराट् पुरुष से

  उ॰4. ब्रह्म

13.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

13.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पुरुष सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. पुरुष सूक्त का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।
3. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः .... वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
4. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं .... यदन्नेनातिरोहति।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।
5. निम्नलिखित चार पदों पर व्याकरणिक टिप्पणी लिखें–

   1. भव्यम्, 2. ईशानः, 3. विराट्, 4. अग्रजन्त, 5. समिधः, 6. नाकम, 7. साध्याः।

इकाई – 14
हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121)

संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3हिरण्यगर्भ सूक्त मन्त्र संख्या 1–5 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रश्न**

14.4हिरण्यगर्भ सूक्त मन्त्र संख्या 6–10 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रश्न**

14.5 सारांष

14.6 कठिन शब्दावली

14.7 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

14.8 अनुषंसित ग्रन्थ

14.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हिरण्यगर्भ सूक्त का वर्णन किया गया है जो ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 121वां सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि हिरण्यगर्भ, देवता 'क' संज्ञक प्रजापति और त्रिष्टुप छन्द है। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ सूक्त से बताई गई है। इस सूक्त के अनुसार सृष्टि से पूर्व सर्वत्र जल ही जल व्याप्त था। उन जलों में बृहद् अण्डाकार तत्त्व उत्पन्न हुआ जो हिरण्यगर्भ कहलाया।

14.2 उद्देष्य

1. वेदों में पुरुष हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति मानी गई है। पुरुष से जो विराट् उत्पन्न होता है वही हिरण्यगर्भ है।
2. हिरण्यगर्भ को प्रजापति भी कहा गया है। पुराणों में इसी को ब्रह्म कहा गया है।
3. सृष्टि के आदि में सबसे पहले हिरण्यगर्भ की स्तुति हुई। वह ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी था।
4. हिरण्यगर्भ तथा प्रजापति दोनों एक ही हैं।

14.3हिरण्यगर्भ सूक्त मन्त्र संख्या 1–5 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

हिरण्यगर्भ सूक्त (मण्डल 10, सूक्त 121)

ऋषि – हिरण्यगर्भ, देवता – क संज्ञक प्रजापति, छन्द – त्रिष्टुप्

संहिता–पाठ

1. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत। जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्। स पृथिवीम् उत इमाम् द्याम् दाधार। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – हिरण्यगर्भः –परमात्मा का हिरण्य गर्भ रूप, **समवर्वत** –उत्पन्न हुआ, **जातः** –उत्पन्न होते ही, **भूतस्य** –सभी प्राणियों को, **दाधार** –धारण किए हुए हैं, **कस्मै** –सुख स्वरूप, 'क' इस नाम वाले, **हविषा** –हवि के द्वारा, **विधेम** –पूजन करते हैं।

अनुवाद –परमात्मा का वह हिरण्यम गर्भ रूप सबसे पहले, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से भी पूर्व उत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होते ही वह सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ। वह पृथिवी और द्यु लोक को धारण किए हुए है। सुख स्वरूप अथवा 'क' इस नाम वाले दिव्य गुणों से युक्त उस हिरण्यगर्भ का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

हिरण्यगर्भः –हिरण्यस्य हिरण्मयस्य गर्भः गर्भभूतः। षष्ठी तत्पुरुष समास।

हिरण्य –हिरण्य+मयट्। 'हिरण्य' के 'य' और 'मयट्' के 'म' का छान्दस लोप।

कस्मै –'क्रियागहणं कर्तव्यम्' से द्वितीया के अर्थ में चतुथी। किम्+उ=क। चतुर्थी का एकवचन।

संहिता–पाठ

2. य आत्मदा बलदा यस्य विष्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – यः आत्मदा, बलदाः यस्य प्रशिषम् विश्वे उपासते यस्य देवाः। अमृतम् यस्य छाया, मृत्युः यस्य। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – आत्मदा –आत्माओं का देने वाला, **उपासते** –मानते हैं, **प्रशिषम्** –शासन को, **अमृतम्** –अमृतत्व, दिव्य लोक, **छाया** –छाया के समान वशवर्ती।

अनुवाद –जो हिरण्यगर्भ प्रजापति आत्माओं का अर्थात् जीवन का देने वाला है और बल का देने वाला है, जिसके शासन को सभी प्राणी मानते हैं, जिसके शासन को देवता भी मानते हैं, अमृतत्व या दिव्य लोक जिसके छाया के समान वशवर्ती हैं और मृत्यु भी छाया के समान जिसकी वशवर्ती है सुख स्वरूप या 'क' संज्ञक दिव्य गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

आत्मदाः –आत्मानं ददाति अर्थ में आत्मन्+दा+क्विप्। अथवा आम्न्+दैप् शोधने+क्विप्।

प्रशिषम् –प्र+शास्+क्विप् ''शास इदङ्हलोः'' सूत्र से 'इत्य' और ''शासिवसिघसीनां च'' सूत्र से 'स्' को 'ष्' आदेश। प्रशिष्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

3. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।

य ईशे अस्य द्विपदष्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – यः एकः इत् महित्वा प्राणतः निमिषतः जगतः राजा बभूव। यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – प्राणतः –श्वास–प्रश्वास लेने वाले, **निमिषतः** –पलकों का संचालन करने वाले, **महित्वा** –महिमा से, **जगतः** –गतिशील जगत् का, **ईशे** –स्वामी है, **द्विपदः** –दोपायों का, **चतुष्पदः** –चौपायों का।

अनुवाद –जो हिरण्यगर्भ प्रजापति अकेला ही अपनी महिमा से श्वास–प्रश्वास लेने वाले और पलकों का संचालन करने वाले सम्पूर्ण गतिशील जगत् का राजा हुआ है, जो इस दृश्यमान जगत् के दो पैरों वाले मनुष्य आदि प्राणियों तथा चार पैरों वाले गाय–घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी है, सुखस्वरूप अथवा 'क' संज्ञक उस हिरण्यगर्भ प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

प्राणतः –प्र+अन प्राणने+शतृ=प्राणत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

निमिषतः –नि+मिष्+शतृ=निमिषत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

महित्वा –महत्+त्व=महित्त्व। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप।

द्विपदः –द्वौ पादौ यस्य अर्थ में द्विपाद्। षष्ठी का एकवचन।

चतुष्पदः –चत्वारः पादाः यस्य = चतुष्पाद्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

4. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः, रसया सह समुद्रम् यस्य, इमाः प्रदिशः यस्य, बाहू यस्य, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – हिमवन्तः –बर्फीले पर्वत, **महित्वा** –महिमा को, **रसया सह** –नदियों के साथ, **प्रदिशः** –प्रधान दिशाएं (पूर्व आदि चार), **बाहू** –बाहू के समान कोण दिशाएं (आग्नेय आदि चार)।

अनुवाद –ये बर्फीले पर्वत जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति की महिमा को कहते हैं, नदियों सहित समुद्र जिसकी महिमा को कहते हैं, ये प्रधान दिशाएं (पूर्व आदि चार दिशाएं) और बाहू के समान कोण दिशाएं (आग्नेय आदि चार कोण दिशाएं) जिसकी महिमा को कहती हैं, सुख स्वरूप या संज्ञक दिव्य गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

हिमवन्तः –हिम+मतुप्=हिमवत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

रसया –रसः जलम् अस्य अस्ति=रस+अच् (मतुप् अर्थ में)+टाप्=रसा। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

5. येन द्यौरूग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दुळहा, येन स्वः स्तभितम्, येन नाकः, यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – उग्रा –ऊपर उठाया हुआ है, **दुळहा** –स्थिर कर दिया है, **स्वः** –स्वर्गलोक को, **स्तभितम्** –ऊपर थामा हुआ है, **नाकः** –सूर्य को, **रजसः** –जलों को, **विमानः** –बनाने वाला है।

अनुवाद –जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति ने द्यु लोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवि को स्थिर कर दिया है जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है, सुख स्वरूप अथवा क संज्ञक दिव्य गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

उग्रा –उद्+गुरी उद्यमने+क (अ) +टाप्=उग्रा।

स्तभितम् –स्तम्भ् धातु से निपातनात् 'क्त' होकर निष्पन्न होता है।

विमानः –विविधं मानं निर्माणं यस्य सः विमानः। वि+मा+ल्युट् (अन)।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

    प्र॰1. ब्रह्मा को हिरण्यगर्भ क्यों कहा जाता है?

    प्र॰2. हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि से पूर्व सर्वत्र क्या था?

    प्र॰3. पुराणों में हिरण्यगर्भ को क्या कहा गया है?

    प्र॰4. हिरण्यगर्भ सूक्त में मंत्रों की संख्या कितनी है?

14.4हिरण्यगर्भ सूक्त मन्त्र संख्या 6–10 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

6. यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – अवसा तस्तभाने रेजमाने क्रन्दसी यम् मनसा अभ्यैक्षेताम्, यत्र अधि सूरः उदितः विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – क्रन्दसी –द्युलोक और पृथिवी लोक, **अवसा** –रक्षा करने के हेतु से, **तस्तभाने** –स्थिर किए गए हैं, **ऐक्षेताम्** –देखते हैं, **रेजमाने** –प्रकाशमान होते हुए, **सूरः** –सूर्य, **विभाति** –शोभायमान होता है।

अनुवाद –संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किए गए और प्रकाशमान होते हुए द्यु लोक और पृथिवी लोक जिस हिरण्यगर्भ प्रजापति को अपने मन से देखते हैं, अर्थात् हमारी महिमा उसी से है इस प्रकार देखते है, जिस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है, सुखस्वरूप या क संज्ञक दिव्य गुण सम्पन्न उस प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

क्रन्दसी –क्रन्द्+असुन्=क्रन्दस्, स्त्रीलिंग में प्रथमा का द्विवचन।

तस्तभाने –स्तम्भ्+कानच्+टाप्=तस्तभाना। प्रथमा का द्विवचन।

रेजमाने –राज्+कानच्+टाप्=रेजमाना। ''फणांच सप्तानाम्'' नियम से एत्व और अभ्यास का लोप।

संहिता–पाठ

7. आपो ह यद्बृहतीर्विष्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – यत् गर्भम् दधानाः अग्निम् जनयन्तीः बृहतीः आपः ह विष्वम् आयन्, ततः देवानम् एकः असुः समवर्तत। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – आपः –जलों ने, **बृहतीः** –महान्, **आयन्** –व्याप्त किया हुआ था, **गर्भम्** –हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को, **जनयन्तीः** –उत्पन्न करते हुए, **देवानाम्** –देवताओं का, इन्द्रियों को, **समवर्तत** –उत्पन्न हुआ, **असुः** –प्रणाभूत वायु।

अनुवाद –जिस हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को गर्भ के रूप में धारण करते हुए, अग्नि को (अग्नि के उपलक्षण से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पांच महाभूतों का ग्रहण किया जाता है) उत्पन्न करते हुए महान् जलों ने निश्चय ही सृष्टि के प्रारम्भ में सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया हुआ था, उसके बाद देवताओं (इन्द्रियों) का प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ, सुख स्वरूप अथवा 'क' संज्ञक उस हिरण्यगर्भ प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

बृहतीः –'बृहती शब्द' प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। वैदिक रूप है। लोक में 'बृहत्यः' रूप होगा।

आयन् –'इण् गतौ' धातु, लड्. लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

संहिता–पाठ

8. यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्क्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – यः चित् यज्ञम् जनयन्तीः दक्षम् दधानाः आपः महिमा पर्यपष्यत् यः देवेष्वधि एकः देवः आसीत्, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – महिना –महिमा से, **पर्यपश्यत्** –देखता है, **दक्षम्** –दक्ष प्रजापति को, **दधानाः** –धारण करते हुए, **जनयन्तीः** –उत्पन्न करते हुए, **देवेषु अधि** –देवताओं के बीच में।

अनुवाद –जो हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि–उत्पत्ति रूप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले और सृष्टि–उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपनी महिमा से देखता है और जो सभी देवताओं के मध्य में उनका स्वामी अद्वितीय देव है, सुख स्वरूप अथवा क संज्ञक उस प्रजापति का हम हवि के द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

आपः –यहाँ द्वितीया के अर्थ में प्रथमा हुई है। 'अपः' अर्थ होता है।

आसीत् –वर्तमान काल में लड्. लकार है।

संहिता–पाठ

9. मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जनान।

यष्चापष्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अन्वय – नः मा हिंसीत् यः पृथिव्याः जनिता, यः वा सत्यधर्मा दिवम् जनान यः च चन्द्राः बृहतीः अपः जनान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – मा हिंसीत् –हिंसा न करे, **जनिता** –उत्पन्न करने वाला, **दिवम्** –द्युलोक को, **सत्यधर्मा** –सत्य नियमों को धारण करते हुए, वास्तविक धारण क्षमता से युक्त, **चन्द्राः** –आनन्द प्रदान करने वाले, **बृहतीः** –महान्।

अनुवाद –वह हिरण्यगर्भ प्रजापति हमारी हिंसा न करे, जो पृथिवी लोक को उत्पन्न करने वाला है और जिसने सत्य नियमों को धारण करते हुए अथवा वास्तविक धारण क्षमता से युक्त होकर द्युलोक को उत्पन्न किया था और जिसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया, सुख स्वरूप अथवा क संज्ञक उस प्रजापति का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं।

व्याकरण

हिंसीत् –'हिंस्' धातु, लुड्. लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। ''न माङ्.योगे'' सूत्र से 'मा' के योग में 'अट्' का अभाव।

जनिता –जन्+णिच्+तृच्। 'इट्' का आगम' ''जनिता मन्त्रे'' नियम से 'णिच्' का लोप = जनितृ। प्रथमा विभक्ति का एकवचन। लोक में 'जनयिता' रूप होगा।

सत्यधर्मा –सत्यम् धर्म यस्य स। बहुब्रीहि समास।

चन्द्रः –'चदि आह्लादे' धातु से 'अच्' और 'नुम्' का आगम।

संहिता–पाठ

10. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विष्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।

अन्वय – प्रजापते! त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परिबभूव। यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु। वयम् रयीणाम् पतयः स्याम।

शब्दार्थ – प्रजापते –हिरण्यगर्भ रूप प्रजापते, **विश्वा जातानि** –सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों को, **परिबभूव** –व्याप्त किए हुए है, **यत्कामाः** –जिस फल की कामना करते हुए, **जुहुमः** –आहुति देते हैं, **पतयः** –स्वामी, **रयीणाम्** –ऐश्वर्यों के।

अनुवाद –हे हिरण्यगर्भ प्रजापति! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त किए हुए नहीं है अर्थात् तुम ही इन सबको व्याप्त करते हो। जिस फल की कामना करते हुए हम तुम्हारे लिए आहुतियाँ देते हैं, वह फल हमें प्राप्त हो। हम ऐश्वर्यों के स्वामी होवें।

व्याकरण

विश्वा, ता –वैदिक रूप हैं। विभक्ति का लोप हुआ है। लोक में विश्वानि और तानि रूप बनते हैं।

जातानि –जन्+क्त=जात। नपुंसकलिंग में द्वितीया का बहुवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

प्र०1. ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ सूक्त का मण्डल एवं सूक्त क्रम लिखें।

प्र०2. हिरण्यगर्भ सूक्त के ऋषि कौन हैं?

प्र०3. हिरण्यगर्भ का अन्य नाम क्या है?

प्र०4. क तथा प्रजापति किसके नाम हैं?

14.5 सारांष

सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ विद्यमान था और वह समस्त जगत् का एक मात्र स्वामी था। उसने पृथिवी तथा इस द्युलोक को धारण किया हुआ था। वह आत्मा तथा बल का दाता है। सम्पूर्ण देव उसके

शासन का पालन करते हैं। देवलोक व पृथिवी लोक के प्राणी अपनी रक्षा के लिए इसकी स्तुति करते हैं। हिरण्यगर्भ पर्वतों की ऊँचाई और समुद्र की गहराई को जानता है। द्युलोक उसका सिर है तथा पृथ्वी उसका पैर। हिरण्यगर्भ देवता श्रेष्ठ कर्मफल को प्रदान करने वाला है।

हिरण्यगर्भ रूपी गर्भ को धारण करने वाले जो विशाल जल सर्वत्र व्याप्त थे उनमें से देवताओं का भी प्राणरूप हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। यहां पर उन आदिम जलों की तरफ संकेत है जिनमें से हिरण्यगर्भ को उत्पन्न होना था–

यदिष्दापो महिना पर्यपष्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्..........। (ऋग्वेद, 10.121. 8)

अतः यहां पर जलों से उत्पन्न हुए उस हिरण्यगर्भ का वर्णन है जिसने समस्त संसार को उत्पन्न किया और जो देवताओं का भी अधिष्ठाता देव था। यही हिरण्यगर्भ दो भागों में विभाजित हुआ था जिससे उसके एक रजतमय भाग से पृथ्वी का निर्माण हुआ और दूसरे सुवर्णमय भाग से द्युलोक का निर्माण हुआ। इस प्रकार से हिरण्यगर्भ ही समस्त सृष्टि का मूलभूत कारण है।

हिरण्यगर्भ सूक्त में हिरण्यगर्भ को 'क' नाम से बोध कराया है। इसके प्रथम नौ मन्त्रों में 'कस्मै' का प्रयोग है, 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। दसवें मन्त्र में प्रजापति के नाम का उल्लेख हैं–**'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विष्वा जातानिपरिता बभूव।'** अतः स्पष्ट है कि हिरण्यगर्भ, व और प्रजापति– ये तीनों एक–दूसरे के पर्याय हैं एवं एक ही शक्ति के बोधक हैं।

इस समस्त सृष्टि का आदि स्त्रोत हिरण्यगर्भ ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। उसी ने पृथ्वी और स्वर्ग लोक को धारण किया। समस्त प्राणियों को स्वरूप और बल प्रदान करने वाला भी वही है। जीवन और मृत्यु उसी के अधिकार में है। देव, मनुष्य, पशु–पक्षी ये सभी उसी के अधिकार में हैं। छोटी से छोटी क्रियाएं भी उसी की प्रेरणा से सम्पन्न होती हैं। पर्वत, समुद्र, नदियां, पृथ्वी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, विद्युत, सूर्य, जल, प्रत्यक्ष तथा परोक्ष– सभी उन्हीं हिरण्यगर्भ की महिमा से हैं, उन्हीं के अधीन हैं। उन्हीं महिमामय प्रजापति से प्रार्थना की गई है कि वे हमारी मनोकमनाओं पूर्ण करें। इस प्रकार यह सूक्त एकेश्वरवाद को प्रतिपादित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सूक्त है।

14.6 कठिन शब्दावली

हिरण्यगर्भः –परमात्मा का हिरण्यगर्भ रूप

समवर्तत –उत्पन्न हुआ

कस्मै –सुख स्वरूप, 'क' नाम वाले

विधेम –पूजन करते हैं

प्रशिषम् –शासन को

रसया सह –नदियों के साथ

प्रदिशः –प्रधान दिशाएं

नाकः –सूर्य को

रजसः –जलों को

उग्रा –ऊपर उठाया हुआ है

क्रन्दसी –द्युलोक और पृथ्वीलोक

विभाति –शोभायमान होता है

असुः –प्राणभूत वायु

चन्द्राः –आनन्द प्रदान करने वाले

रयीणाम् –ऐश्वर्यों के

अवसा –रक्षा करते हेतु

आयन् –व्याप्त किया हुआ था

गर्भम् –हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति को

जुहुमः –आहुति देते हैं

बृहतीः –महान्

14.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. स्वर्ण बृहद् अण्डाकार के कारण

  उ॰2. जल

  उ॰3. ब्रह्म

  उ॰4. दस

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  उ॰1. 10.121

  उ॰2. हिरण्यगर्भ

  उ॰3. प्रजापति

  उ॰4. हिरण्यगर्भ के

14.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

14.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. हिरण्यगर्भ सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखो।
2. हिरण्यगर्भ सूक्त का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।

3. 'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व .... कस्मै देवाय हविषा विधेम्' मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

4. यं क्रन्दसी अवसा .... विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

5. निम्नलिखित शब्दों की व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी लिखें–

   1. हिरण्यगर्भ, 2. बलदाः, 3. प्राणतः 4. क्रन्दसी, 5. दधानाः, 6. आपः 7. जुहुमः।

इकाई – 15

वाक् सूक्त (10.125)

संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3वाक् सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रष्न

15.4 सारांष

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

15.7 अनुषंसित ग्रन्थ

15.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में वाक् सूक्त का वर्णन किया गया है। यह सूक्त ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 125वां सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि वाक्, देवता परमात्मा तथा त्रिष्टुप तथा जगती छन्द हैं। ऋग्वेद में वाक् की वाणी की देवी के रूप में स्तुति की गई है। जो वाक् ब्रह्मा का ही एक रूप है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार वाक् के पिता का नाम ऋम्भण ऋषि बताया गया है। इस सूक्त में उन सभी विशेषताओं का वर्णन किया गया है जो वाणी में है।

15.2 उद्देष्य

1. वाक् ब्रह्म का ही एक रूप है। वह देवताओं की प्रेरक और उनको कर्त्तव्य के पालन में सहायता देती है।
2. वाणी के महत्त्व को जानने के लिए तथा वाक् शक्ति के विकास के लिए वाक् सूक्त का अध्ययन करना चाहिए।
3. वाक् सूक्त में वाणी के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूपों का वर्णन किया गया है।
4. वाक् सूक्त का अध्ययन करने वाले को वाणी अपने तेज से ऋषि, ब्राह्मण तथा विद्वान् बना देती है।

15.3 वाक् सूक्त मन्त्र संख्या 1–8 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

वाक् सूक्त (मण्डल 10, सूक्त 125)

ऋषि – वाक्, देवता – परमात्मा, छन्द – दूसरे मन्त्र में जगती और सबमें त्रिष्टुप्।

संहिता–पाठ

1. अहं रुद्रेभिर्वसुभिष्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिद्राग्नी अहमष्विनोभा।।

अन्वय – अहम् रुद्रेभिः चरामिः वसुभिः। अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः। अहम् मित्रावरुणा उभा बिभर्मि। अहम् इन्द्राग्नी अहम् उभा अश्विना।

शब्दार्थ – रुद्रेभिः –ग्यारह रुद्रों के रूप में, **वसुभिः** –आठ वसुओं के रूप में, **चरामि** –विचरण करती हूँ, **आदित्यैः** –बारह आदित्यों के रूप में, **बिभर्मि** –धारण करती हूँ।

अनुवाद –जगत् के कारण रूप ब्रह्म के साथ तादात्मय का अनुभव करती हुई अम्भृण ऋषि की पुत्री मैं वाक् ग्यारह रुद्रों के रूप में विचरण करती हूँ, मैं आठ वसुओं के रूप में विचरण करती हूँ, मैं बारह आदित्यों के रूप में और विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण इन दोनों देवताओं को धारण करती हूँ। मैं इन्द्र और अग्नि को धारण करती हूँ और दोनों अश्विनी देवताओं को धारण करती हूँ।

व्याकरण

रुद्रेभिः –तृतीया का बहुवचन वैदिक रूप है। लोक में 'रुद्रैः रूप होगा।

मित्रावरुणा, उभा, अश्विना –द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में वैदिक रूप हैं। विभक्ति के स्थान पर 'ए' हुआ है। लोक में मित्रावरुणौ, उभौ और अश्विनौ रूप बनेंगे।

संहिता–पाठ

2. अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते।।

अन्वय – आहनसम् सोमम् अहम् बिभर्मि। अहम् त्वष्टारम्, पूषणम् उत भगम्। अहम् हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यज्ञमानाय द्रविणम् दधामि।

शब्दार्थ – सोमम –सोम रस को, सोम देवता को, **आहनसम्** –कूट पीस कर अभिषवन करने योग्य, शत्रुओं का वध करने वाले, **त्वष्टारम्** –निर्माण करने वाले देवता को, **पूषणम्** –पोषण करने वाले सूर्य देवता को, **भगम्** –ऐश्वर्य देवता भग को, **द्रविणम्** –यज्ञ के फल रूप धन को, **हविष्मते** –हवि से युक्त हवि प्रदान करने वाले, **सुप्राव्ये** –देवताओं के लिए सुन्दर हवि पहुँचाने वाले, **सुन्वते** –सोम का अभिषव करने वाले।

अनुवाद –कूट पीस कर अभिषवन (निचोड़ने) योग्य सोम रस को अथवा शत्रुओं का वध करने वाले द्यु लोक में विद्यमान सोम देवता को मैं ही धारण करती हूँ। मैं त्वष्टा (निर्माण करने वाला देवता), पूषा (पोषण करने वाला सूर्य देवता) और भग (भग नामक ऐश्वर्य का देवता या ऐश्वर्य) को मैं ही धारण करती हूँ। मैं हवि से युक्त या हवि प्रदान करने वाले, देवताओं के लिए सुन्दह हवि पहुँचाने वाले और सोम का अभिषव करने वाले यजमान के लिए यज्ञ के फल रूप धन को धारण करती हूँ।

व्याकरण

आहनसम् –आ+हन् धातु से वैदिक असुन् (अस्) प्रत्यय=आहनस्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

त्वष्टारम् –त्वक्ष्+तृच्=त्वष्ट्ट। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

हविष्मते –हविष्+मतुप्=हविष्मत्। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

सुप्राव्ये –सु+प्र+अव् धातु से ''अवितृस्तृतन्त्रिभ्यः'' इस उणादि सूत्र से 'ई' प्रत्यय = सुप्रावी। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

3. अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।

अन्वय – अहम् राष्ट्री वसूनाम् संगमनी चिकितुषी यज्ञियानाम् प्रथमा। ताम् भूरिस्थात्राम् भूरि आवेशयन्तीम् मा देवा पुरुत्रा व्यदधुः।

शब्दार्थ – राष्ट्री –जगत् की ईश्वरी, **संगमनी** –प्राप्त कराने वाली, **वसूनाम्** –धनों की, **चिकितुषी** –ज्ञान से सम्पन्न, ब्रह्म को जानने वाली, **प्रथमा** –सबसे प्रमुख, **यज्ञियानाम्** –यजन करने योग्य व्यक्तियों में, **व्यदधुः** –रखा है, **पुरुत्रा** –विभिन्न स्थानों में, **भूरिस्थात्राम्** –अनेक रूपों में अवस्थित, **भूर्यावेशयन्तीम्** –बहुत सी वस्तुओं को अपने अन्दर आवेशित करने वाली।

अनुवाद –मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ, धनों को प्राप्त कराने वाली हूँ, खोज करने वाली, ज्ञान से सम्पन्न या ब्रह्म को जानने वाली हूँ और यजन करने योग्य व्यक्तियों में सबसे प्रमुख हूँ। ऐसे गुण से युक्त उस अनेक रूपों में अवस्थित और बहुत सी वस्तुओं को अपने अन्दर आवेशित करने वाली मुझको देवताओं ने विभिन्न स्थानों में रखा है। अर्थात् भिन्न देवताओं की जो पूजा की जाती है, वह वस्तुतः मेरी ही पूजा है।

व्याकरण

राष्ट्री –'राष्ट्र' शब्द से मतुप् अर्थ में इनि। स्त्रीलिंग में राष्ट्री।

संगमनी –सम्+गम्+ल्युट् (अन)+ङीप्।

चिकितुषी –कित्+क्वस् प्रत्यय+ङीप्।

यज्ञियानाम् –यज्ञम् अर्हति अर्थ में यज्ञ+घ (इय)=यज्ञिय।

पुरुत्राः –पुरु+त्रल्+टाप् पुरुत्रा।

भूरिस्थात्राम् –भूरि+स्था+तृच्+टाप्। लोक में 'ङीप' होकर 'भूरिस्थात्री' रूप होगा।

संहिता–पाठ

4. मया सो अन्नमत्ति यो विपष्यति यः प्राणिति य ई शृणोत्युक्तम्।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।

अन्वय – यः अन्नम् अत्ति यः मया, यः विपष्यति, यः प्राणिति, यः ईम् उक्तम् शृणोति। ये माम् अमन्तवः उपक्षियन्ति। श्रुत! श्रुधि; श्रद्धिवम् ते वदामि।

शब्दार्थ – अन्नम् अत्ति –अन्न को खाता है, सांसारिक भोगों को भोगता है, **प्राणिति –**श्वास लेता है, **अमन्तवः** –न मानने वाले, न जानने वाले, **उपक्षियन्ति** –हीनता को प्राप्त होते हैं, **श्रुधि** –सुनो, **श्रुत** –विद्धान्, **श्रद्धिवं –**श्रद्धा से प्राप्त होने योग्य वचन को।

अनुवाद –इस जगत् में जो भी व्यक्ति अन्न को खाता है अर्थात् सांसारिक भोगों को भागता है वह मेरे द्वारा ही अन्न का भोग करता है, जो देखता है वह मेरे द्वारा ही देखता है, जो श्वास लेता है वह मेरे द्वारा लेता है और जो भी कहे गए वचन को सुनता है, वह मेरे द्वारा सुनता है। जो व्यक्ति इस प्रकार से अन्तर्यामी रूप से अवस्थित मुझको नहीं जानते या मानते वे संसार में हीनता को प्राप्त होते हैं। हे विद्वान् मित्र! सुनो। श्रद्धा से प्राप्त होने योग्य वचन का मैं उपदेश देती हूँ।

व्याकरण

अमन्तवः –न+मन् धातु से औणदिक 'तु' प्रत्यय=अमन्तु। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

श्रुधि –'श्रु' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। वैदिक रूप।

श्रद्धिवम् –श्रत् सत्यं दधाति अर्थ में श्रत्+धा+कि=श्रद्धि। श्रद्धिः अस्य अस्ति अर्थ में व प्रत्यय = श्रद्धिव।

संहिता–पाठ

5. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

अन्वय – अहम् स्वयम् एव देवेभिः, उत मानुषेभिः जुष्टम् इदम् वदामि। यम् कामये तम् तम् उग्रम् कृणोमि। तम् ब्रह्माणम्, तम् ऋषिम्, तम् सुमेधाम्।

शब्दार्थ – जुष्टम् –सेवित, **कामये –**चाहती हूँ, **उग्रम् –**प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ, **ब्रह्माणम् –**सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा, **ऋषिम्** –भूत–भविष्य का दृष्टा ऋषि, **सुमेधाम्** –उत्तम बुद्धि वाला।

अनुवाद –मैं स्वयं ही इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा और मनुष्यों के द्वारा सेवित इस ब्रह्म का उपदेश करती हूँ। मैं जिस पुरुष को चाहती हूँ, उस को प्रचण्ड या सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ। उसको मैं सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा, भूत–भविष्य का द्रष्टा ऋषि और उत्तम बुद्धि वाला बना देती हूँ।

व्याकरण

जुष्टम् –जुष्+क्त=जुष्ट।

देवेभिः, मानुषेभिः –वैदिक रूप है। लोक में देवैः, मानुषैः रूप होंगे।

कृणोमि –वैदिक रूप है। लोक में 'करोमि' रूप होता है।

सुमेधाम् –वैदिक रूप है। लोक में 'सुमेधसम्' रूप बनेगा।

संहिता–पाठ

6. अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।

अन्वय – ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै अहम् रुद्राय धनुः आतनोमि। अहम् जनाय समदम् कृणोमि। अहम् द्यावापृथिवी आविवेश।

शब्दार्थ – आतनोसि –प्रत्यंचा को चढ़ाती हूँ, **ब्रह्मद्विषे** –ब्रह्म, वेदों या ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले, **शरवे** –हिंसक असुर के, **हन्तवै** –मारने के लिए, **समदम्** –युद्ध, **कृणोमि** –करती हूँ, **आविवेश** –व्याप्त हो रही हूँ।

अनुवाद –ब्रह्म से अर्थात् वेदों से या ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले हिंसक त्रिपुरनिवासी असुरों को मारने के लिए मैं रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा को चढ़ाती हूँ। अर्थात् रुद्र को मैं यह प्रेरणा देती हूँ कि हिंसक असुरों को मारने के लिए वह धनुष को चढ़ावे। मैं अपने जनों के लिए अर्थात् उनका कल्याण करने के लिए उनके शत्रुओं के साथ युद्ध करती हूँ। अर्थात् उनको युद्ध के लिए प्रेरित करती हूँ। मैं ही द्यु लोक और पृथिवी लोक में व्याप्त हो रही हूँ।

व्याकरण

रुद्राय –यहाँ वैदिक व्यत्यय से षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी है।

ब्रह्मद्विषे –ब्रह्म द्वेष्टि अर्थ में ब्रह्म+द्विष+क्विप्। चतुर्थी का एकवचन।

शरवे –'शृ हिंसायाम्' धातु से ''शृस्वृस्निहि०'' उणादि सूत्र में 'उ' प्रत्यय। शरु। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

हन्तवै –'हन्' धातु से 'तुमुन्' के अर्थ में वैदिक 'तवै' प्रत्यय।

समदम् –समानं माद्यन्ति अस्मिन् अर्थ में स+मद्+क्विप्=समद्। द्वितीय विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

7. अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।

अन्वन्य : अस्य मूर्धन् पितरम् अहम् सुवे। समुद्रे अप्सु अन्तः मम योनिः। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठे। उत अमूम् द्याम् वर्ष्मणा उपस्पृशामि।

शब्दार्थ – सुवे –उत्पन्न करती हूँ, **पितरम्** –द्युलोक को, आकाश को, **मूर्धन्** –शिरोस्थानीय, **योनिः** –कारण रूप है, **अप्सु अन्तः** –व्यापनशील बुद्धियों में, जलों में, **समुद्रे** –परमात्मा में, समुद्र में, **अनुवितिष्ठे** –विविध रूप से व्याप्त किए हुए हूँ, **भुवना** –भुवनों में, पंच महाभूतों में, **विश्वा** –सम्पूर्ण, **वर्ष्मणा** –सर्वत्र व्याप्त होने वाले कारणभूत शरीर से, **उपस्पृषामि** –स्पर्श कर रही हूँ।

अनुवाद –इस ब्रह्म के शिरोस्थानीय द्युलोक को अथवा इस ब्रह्म के सिर पर आकाश को मैं उत्पन्न करती हूँ। समुद्र अर्थात् परमात्मा में जो अप् अर्थात् व्यापनशील बुद्धियाँ हैं, उनमें मेरा ही कारण है। अथवा समुद्रों में, जलों में मैं ही कारण रूप से विद्यमान हूँ। अथवा समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष और जलशरीर देवों में कारण हूँ। इसलिए सम्पूर्ण भुवनों अर्थात् पंचमहाभूतों में प्रविष्ट होकर मैं ही उनको विविध रूप से व्याप्त किए हुए हूँ और इस द्युलोक को मैं सर्वत्र व्यापक होते हुए अपने कारण भूत शरीर से स्पर्श कर रही हूँ।

व्याकरण

मूर्धन् –सप्तमी विभक्ति का एकवचन। व्यत्यय से विभक्ति का वैदिक लोप।

वर्ष्मणा –वर्षति ददाति सुख–दुःखे जीवात्मने अर्थ में 'वृषु सेचने' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय। वृष्+मनिन् (मन)=वर्ष्मन्। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

संहिता–पाठ

8. अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।।

अन्वय – अहम् एव विष्वा भुवनानि आरभमाणा वात इव प्रवामि। दिवा परः एना पृथिव्या परः महिना एतावती संबभूव।

शब्दार्थ – वात इव –वायु के समान, **वामि** –प्रवृत्त होती हूँ, **आरभमाणा** –उत्पन्न करती हुई, **भुवनानि** –लोकों को, पंच महाभूतों को, **दिवा परः** –द्युलोक से परे, **एना** –इस, **एतावती** –इतने बड़े परिमाण वाली, **महिना** –महिमा से, **संबभूव** –हो जाती हूँ।

अनुवाद –मैं ही सारे लोकों को या पंच महाभूतों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ अर्थात् उनमें वायु के समान व्याप्त हो जाती हूँ। द्युलोक से परे और इस पृथिवी लोक से भी परे और इनको अतिक्रान्त करती हुई मैं अपनी महिमा से इतने बड़े परिमाण वाली ही जाती हूँ।

व्याकरण

आरभमाणा –आ+रभ्+शानच्+टाप्।

पर –'परस्तात्' के अर्थ में सकारान्त अव्यय।

एना –'इदम्' शब्द के स्थान पर 'एन' आदेश। तृतीया का एकवचन। वैदिक रूप। लोक में 'एनेन' बनेगा।

एतावती –एतत् परिमाणम् अस्याः अर्थ में एतद्+मतुप्+ङीप् (ई)। ''आ सर्वनाम्नः'' सूत्र से 'एतद्' के 'द्' को 'आ' आदेश। 'म' को 'व' आदेश।

महिना –'महत्' शब्द से 'इमनिच्' प्रत्यय। महत्+इमनिच्। 'टि' का और 'इमनिच्' के 'म' का लोप होकर मह+इन्=महिन्। तृतीया का एकवचन।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

प्र॰1. वाक् के पिता का नाम क्या है?

प्र॰2. वाक् को किससे उत्पन्न माना जाता है?

प्र॰3. वाक् को कहां का स्थानीय देवता माना गया है?

प्र॰4. वाक् को किस देवी के नाम से सम्बोधित किया गया है?

15.4 सारांष

ऋग्वेद में वाक् देवी के लिए दो ही सूक्त हैं वे दोनों दशम मण्डल में ही प्राप्त होते हैं। निघण्टु, 5. 5 में वाक् को अन्तरिक्ष स्थानीय देवता माना है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार अम्भृण ऋषि वाक् के पिता के रूप में वर्णित हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अंधकार को दूर भगाने वाले अत्रि नामक पुरोहित को वाक् का पुत्र कहा गया है। (शतपथ ब्राह्मण, 1.4.5.13) तथा ऐतरेय ब्राह्मण में वाक् को सरस्वती देवी माना गया है–**'वागेव सरस्वती' (ऐतरेय ब्राह्मण, 2.24)** तथा शतपथ ब्राह्मण में वाक् को वृद्धि कहा गया है–**'वाग्वै मतिः' (शतपथ ब्राह्मण, 8.1.27)**

इस विश्व में ऐसा कोई भी पदार्थ अथवा वस्तु नहीं है जो वाक् से व्याप्त न हो। वाक् के माहात्म्य से ही विश्व के समस्त व्यापार परिचालित होते हैं। हमारा समस्त ज्ञान शब्द राशि से ओत–प्रोत है। शब्दानुगम के बिना इस लोक में कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। जिस प्रकार आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर में होती है वैसे ही ज्ञान की अभिव्यक्ति शब्द रूप कलेवर (शरीर) में ही होती है।

अधिभौतिक दृष्टि से अग्निहोत्र यज्ञ में वाणी की बहुत आवश्यकता है क्योंकि मन्त्रोच्चारण में वाक् (वाणी) के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। आध्यात्मिक पक्ष से जीवनरूपी यात्रा को सुचारू रूप से निर्वहन करना ही अग्निहोत्र है। वाणी के बिना विचारों का आदान–प्रदान, भावाभिव्यक्ति, मानसिक व बौद्धिक विकास नहीं हो सकता। महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है कि– इस संसार में सभी ओर अंधकार होता अगर शब्द नामक ज्योति का प्रकाश न होता–

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्यं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।। (काव्यादर्श, 1.4)

इस सूक्त में वाक् (वाणी) आत्मस्तवन करती है कि वह समस्त संसार की अधिष्ठात्री देवी हैं। जिस प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक है उसी प्रकार वाक् भी स्वयं को सर्वव्यापिनी बताती है। यह ब्रह्मरूपा वाग्देवी वर्णन करती हैं कि किस प्रकार वह समस्त संसार में प्रेरक शक्ति के रूप में विद्यमान है। योग्यता, क्षमता तथा सामर्थ्य देकर वह अपने भक्तों को अप्रतिम योद्धा, विद्वान तथा ऋषि बना देती हैं।

शाक्त धर्म में यही सूक्त देवी सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। अतः स्पष्ट है कि वाक् देवी को भगवती देवी से अभिन्न माना गया है। वाक् सूक्त की तीसरी ऋचा में कहा गया है–**'अहं राष्ट्री संगमनी'** इससे स्पष्ट होता है कि देश की रक्षा संयोग से ही सम्भव है। इस कारण से कहा गया है–**संघे शक्तिः कलौ।**

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वाग्देवी, राष्ट्रियता, राष्ट्रिय भावना तथा राष्ट्र के प्रति प्रेम का भी सन्देश देती है।

15.5 कठिन शब्दावली

रुद्रेभिः –ग्यारह रुद्रों के रूप में

सोमम् –सोम देवता को, सोम रस को

राष्ट्री –जगत् की ईश्वरी

चिकितुषी –ज्ञान से सम्पन्न, ब्रह्म को जानने वाली

श्रुत –विद्वान्

सुमेधाम् –उत्तम बुद्धि वाला

वर्ष्मणा –सर्वत्र व्याप्त होने वाले कारणभूत शरीर से

अप्सु अन्तः –व्यापनशील बुद्धियों में, जलों में

महिना –महिमा से

बिभर्मि –धारण करती हूँ

द्रविणम् –यज्ञ के फल रूप धन को

संगमनी –प्राप्त कराने वाली

वसूनाम –धनों की

उपक्षियन्ति –हीनता को प्राप्त होते हैं

समदम् –युद्ध

भुवना –भुवनों में, पंच महाभूतों में

एतावती –इतने बड़े परिमाण वाली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. ऋम्भण ऋषि

  उ॰2. ब्रह्म से

  उ॰3. अन्तरिक्ष स्थानीय

  उ॰4. वाणी की देवी (सरस्वती)

15.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. कपिलदेव शास्त्री, वैदिक ऋषि एक परिशीलन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
4. डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, (वैदिक अंश), ओरिएण्ट लांगमैन, दिल्ली।
6. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

15.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. वाक् सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।

2. वाक् सूक्त का महत्त्व अपने शब्दों में लिखें।
3. 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूना .... भूरिस्थात्रा भूर्यावेशयन्तीम्' मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
4. अहमेव वात इव प्र .... पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
5. निम्नलिखित शब्दों की व्याकरणिक टिप्पणी लिखें–

   1. बिभर्मि, 2. हविष्मते, 3. संगमनी 4. प्राणिति, 5. जुष्टम्, 6. विवेश 7. मूर्धन्।

इकाई – 16
पृथ्वी सूक्त (अथर्ववेद 12.1)

संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 अथर्ववेद

- स्वयं आंकलन प्रष्न

16.4 पृथ्वी सूक्त का सार

- स्वयं आंकलन प्रष्न

16.5पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 1–16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- स्वयं आंकलन प्रष्न

16.6 सारांष

16.7 कठिन शब्दावली

16.8 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

16.9 अनुषंसित ग्रन्थ

16.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

विश्व हितकारी वेद समस्त सृष्टि के सर्वस्व हैं। वेद ज्ञान ही मानव जाति सहित समस्त प्राणी जगत् को सुखमय बनाने का एकमात्र साधन है अर्थात् वेद ज्ञान से ही मनुष्य सुख और शान्ति एवं लोक–परलोक को सुखी करता है। मानव जीवन के समस्त क्रिया–कलापों का समावेश वेद में मिलता है। इस जगत् से सम्बन्धित ऐसा कोई विषय नहीं है जो वेद में उपलब्ध नहीं है। वेद ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जो अज्ञान, निराश, अनाचार और आधि–व्याधि से मुक्त करके मानव जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। जिस प्रकार कहा गया है **''सर्वज्ञानमयो हि सः''** अर्थात् वेद सभी विद्याओं का भण्डार है।

अथर्ववेद में 20 काण्ड, 731 सूक्त, 4987 मन्त्रों में से अर्थवेदीय 12वां काण्ड का प्रथम सूक्त पृथ्वी सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें 63 मन्त्रों में पृथ्वी का महत्त्व वर्णित है।

16.2 उद्देष्य

1. सृष्टि कल्याणार्थ वेद का मानव जीवन में महत्त्व
2. पृथ्वी सूक्त में भूमि एवं उसके ऊपर विचरण करने वाले समस्त प्राणी जगत् का विवरण।
3. अर्थवेदीय पृथ्वी सूक्त के विशाल ह्रदय का महत्त्व जो सृष्टि का पालन–पोषण पुत्रवत् करती है।

16.3 अथर्ववेद

विश्व कल्याणार्थ चार वेद हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद।

अथर्ववेद के मन्त्रों का दर्शन अथर्वण एवं अंगिरा ऋषियों को हुआ था। यही कारण है कि इसे 'अथर्वांगिरस' वेद भी कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अथर्व उन मन्त्रों को कहते हैं जो सर्वसाधारण को सुख देने वाले हों तथा जादू टोणे को करने के लिए प्रयुक्त होते हों। इन मन्त्रों से भूत–प्रेतादि वाधाओं को दूर करके माता–पिता और सम्बन्धियों को प्रसन्न किया जाता है। आँगिरस उन मन्त्रों को कहते हैं, जो अंगारे की तरह जलाने वाले हों। इन मन्त्रों से मारण, उच्चाटन, वशीकरण, मोहन आदि अभिचारों में शत्रुओं के लिए या अभिवांछित वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इन दोनों शब्दों के संयोग से अथर्वांगिरस वेद बनता है।

अथर्ववेद के मन्त्रों को दो तरह से बांटा गया है।

1. काण्डात्मक विभाग, 2. प्रपाठकात्मक विभाग।

काण्डात्मक विभाग

1. काण्ड, सूक्त एवं मन्त्रात्मक विभाग।
2. काण्ड, अनुवाक, सूक्त तथा मन्त्रात्मक विभाग।

शौनकीय अथर्ववेद संहिता में 20 काण्ड, 731 सूक्त, 5987 मन्त्र मिलते हैं। इन मन्त्रों में, 1200 मन्त्र ऋग्वेद के आए हैं। शेष मन्त्र इसके अपने माने जाते हैं। 20वां काण्ड तो ऋग्वेद से हूबहू ले लिया गया है। 12 काण्ड के आरम्भ से (63) मन्त्रों का, पहला सूक्त 'पृथिवी सूक्त' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त में अनेक राजनीतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों का सुन्दर वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद की निम्न शाखाओं का वर्णन मिलता है।

1. पैप्पलाद, 2. मौद, 3. शौनकीय, 4. जाजल, 5. देवदर्शी, 6. चारणवेद्य, 7. जलद, 8. स्तौद, 9. ब्रह्मवेद।

अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है जिसे दो भागों में बांटा गया है– 1. पूर्वभाग एवं 2. उत्तर भाग।

अथर्ववेद के तीन उपनिषद् हैं– प्रश्नोपनिषद्, मुंडकोपनिषद् एवं माण्डुक्योपनिषद्।

अथर्ववेद से सम्बन्धित पाँच अनुक्रमणिका हैं– 1. चतुराध्यायी, 2. प्रातिशाख्य, 3. पंचपटलिका, 4. दन्त्योष्ठय विधि, 5. वृहत्सर्वानुक्रमणिका।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

प्र॰1. अथर्ववेद में कितने सूक्त हैं?

प्र॰2. पृथ्वी सूक्त अथर्ववेद के किस काण्ड से सम्बन्धित है?

16.4 पृथ्वी सूक्त का सार

पृथिवी को यास्क √ स्रप् धातु से मानते हैं। इन्द्र ने पृथिवी को फैलाया। इसका अर्थ है 'विस्तृत स्थल'। इस 'सूक्त' में आथर्वण ऋषि ने 63 मन्त्रों में पृथिवी का भव्य रूप प्रस्तुत किया है। ऋषि की दृष्टि पृथिवी के सभी रूपों पर गई है।

सत्य, बृहत्, उग्रं, ऋत, दीक्षा, तप ब्रह्म और यज्ञ पृथिवी को धारण करते हैं। भूत व भव्य की पालयित्री पृथिवी विस्तृत लोक प्रदान करती है। मानवों के मध्य बाधा–रहित, उच्च, नीच समतल प्रदेश युक्त नाना औषधियों को धारण कर यह विस्तृत व समृद्ध है। यह समुद्र, नदी व जल को धारण कर अन्न से प्राणी को आनन्दित करके श्वसन व विचरण योग्य बनाकर हमें स्थान देता है। चार दिशाओं से युक्त भूमि अन्न व विचरणशील प्राणी को धारण कर गाय व अन्न की प्रतिष्ठा करती है। इस सौभाग्य तथा तेज प्रदान करने वाली पृथिवी पर पहले हमारे पूर्वज विचरण करते थे फिर देवताओं ने असुरों को पराजित किया था। आज भी यह गाय, अश्व व पक्षियों का निवास स्थान है। सबकी पालिका धनदात्री, सर्वणवक्षा विश्रामस्थली, इन्द्ररक्षित पृथिवी वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली धन में प्रतिष्ठा करती है। देव इसकी रक्षा करते हैं। यह हमें मधु व तेज देती है। यह पहले सागर में थी। इसका अनुसरण मनीषियों ने किया। इसका सत्यावृत अमर ह्रदय आकाश में है। यह हमें तेज व शक्ति प्रदान करती है। इस पर अनेक जल वे तेज प्रवाहित हैं।

इस भूमि को अश्विनद्वय ने नापा था। विष्णु ने तीन डगों से मापा था। इन्द्र ने शत्रु रहित बनाया था। यह भूमि माता के समान दुध प्रवाहित करती है। हे पृथिवी! ये पर्वत व वन तुम्हें सुखकारी हों। तुम्हारे नाभि में जो शक्ति है उसे हमें प्रदान करो। पृथिवी माता है, मैं पुत्र हूँ। इसी पर वेदी यज्ञ होते हैं। यहीं यज्ञ सूप गाड़े जाते हैं। भूमि से उत्पन्न प्राणी इसी पर विवरण करते हैं। द्विपद व चतुष्पद प्राणियों को सूर्य अमर ज्योति देता है। यह वाणी को मधुरता देती है। यह सबकी जन्मदात्री व औषधियों को धारण करती है। इस पर गति व कम्पन है। इन्द्ररक्षित यह स्वर्ण के समान दीखती है।

अग्नि, भूमि, औषधि, जल, शिला पुरुष गो व अश्वों में है। अग्नि द्युलोक में आदित्य रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में है। इसे मर्त्यलोक में जलाकर उत्पन्न करते हैं। यह देवों को हवि देता है। भूमि पर प्राणी अन्न व जल से जीते हैं। यह हमें सुगन्ध प्रदान करती है। कमल, पुरुष व स्त्री में गन्ध है। नर, अश्व, वीर, कन्या, पशु व हाथी में पृथिवी पर तेज व्यापत है। इस पर शिला, मिट्टी, पत्थर, धूलि, जल व पृक्ष है। यह हमें थाम कर रखती है। यह हमें शुद्ध जल प्रवाहित करती है। पवित्र सहनशील, महती, ब्रह्मस्वरूप, धृत व अन्न धारण करने वाली पृथिवी का आह्वान किया गया है। इसकी सभी दिशाएं विचरण के लिए सुखकारी हों। मार्ग में तस्कर व चोर हमें न मिलें। मेरे नेत्र क्षीण न हों। भूमि हमें शय्या प्रदान करे। जिस वस्तु को बीजा जाए वह भूमि पर शीघ्र उगे। सभी ऋतुएं भूमि का दोहन करें। भूमि सर्पों को दूर करती है। इसमें जलाग्नि विद्यमान रहती है। देवद्वेषी को दूर कर इन्द्र के लिए विद्यमान रहती है।

जिस स्थान पर मण्डप व यूप की स्थापना की जाती है। इस पर ऋक्, साम व यजुष् से अर्चना कर इन्द्र को सोमरस दिया जाता है। यही पर ऋषियों ने वेद मन्त्रों का गान किया था। हम जिस धन की कामना करते है वह भूमि से ही प्राप्त होता है। इसी पर प्राणी गाते नाचते हैं। इस पर ही युद्ध की विभीषिकाएं हैं। इसी पर दुन्दुभि बजती है। इसी पर दुर्ग बने है। इसी के क्षेत्र पर मानव युद्ध करते हैं। इसकी गुफाओं में निधि है। इसी पर मणि व स्वर्णादि मिलते है। अपने गृहों के अनुरूप भाषा व धर्मों के लोग यहाँ है। यह भूमि सदैव दूध देने वाली गो के समान धन की सहस्र धाराएं प्रदान करें।

हे पृथिवी! तुम्हारे पर तीक्ष्ण दंश वाले जीव सर्प, वृश्चिक, क्रीमि आदि भ्रमण करते हैं, वे हमारे पास न आएं। जो कुछ कल्याण रूप है, उसमें हमें सुखी करो। पृथिवी पर बहुत से यान मार्ग है। इन पर सज्जन व दुर्जन दोनों चलते हैं। हमें दुर्जन रहित मार्ग मिले। यह पृथिवी वराह रूप है। इसी पर मलिन वस्तुएं व भारी वस्तुएं हैं। इस पर सज्जन व दुर्जन दोनों मरते हैं। इसी पर नरभक्षी जीव सिंह, व्याघ्रादि हैं। हम इनसे दूर रहें। यहाँ गन्धर्व व अप्सराएं है। नरद्वेषी शक्तियाँ असुर, राक्षस, पिशाचादि हमसे दूर रहें। भूमि के प्रति द्विपद हंस सूपर्ण व शकुन पक्षी उड़ते हैं। वायु धूलि उड़ाकर वृक्ष तक गिरा देती है। अग्नि जला देती है। यहाँ कृष्णारूप अहोरात्र है। द्यु पृथिवी व अन्तरिक्ष हमें स्थान प्रदान करते हैं।

मैं बलवान् विजेता श्रेष्ठतम् हूँ। जब आगे की ओर प्रथित तब नाम पृथिवी पड़ा। चार दिशाएं बनी। भूमि पर ग्राम, वन, समितियाँ व संग्राम है। जिस प्रकार अश्व धूलि को विकीर्ण करता है। उसी प्रकार देवताओं ने मनुष्यों को पृथिवी पर विकीर्ण किया। यह रमणीक नेत्री, वनस्पति व औषधियाँ धारण करती है। यह शान्त, सुरभित, सुखकारी, अमृत से परिपूर्ण स्तन वाली है। यह मुझे आशीर्वाद दे। जलयुक्त लोक में चले जाने पर विश्वकर्मा ने अनुगमन किया था। भूमि एक पात्र के समान है जिसमें प्राणी रहते हैं। जो वस्तु भूमि पर कम है उसे प्रजापति उत्पन्न करते हैं। यहाँ हम रोग रहित बने। हम दीर्घायु प्राप्त कर बलि हरण करें।

हे भूमि! मुझे सुरक्षित स्थल प्रदान करो। हे विज्ञ! आकाश से सामन्जस्य रख मुझे लक्ष्मी व ऐश्वर्य प्रदान करो।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

    प्र०1. अथर्ववेद के मंत्रों के द्रष्टा ऋषि .... हैं।

    प्र०2. पृथ्वी सूक्त में मंत्रों की संख्या कितनी हैं?

16.5 पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 1–16 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

1. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवीं नः कृणोतु।।

अनुवाद –विशाल सत्य, कठोर अनुशासन, दृढ़ संकल्प, तपस्या, विवेक तथा संगतिकरण या संगठन ये छः तत्त्व पृथिवी को धारण करने की क्षमता रखते हैं। जिस जाति या राष्ट्र में, ये छः अर्हताएं विद्यमान होगी, वह जाति या राष्ट्र सम्पूर्ण पृथिवी का क्षेत्र (साम्राज्य) सम्भाल सकता है। भूत–वर्तमान–भविष्य की स्वामिनी, यह पृथिवी उसी जाति और राष्ट्र को प्रत्येक दिशा में बिना किसी बाधा से निवास योग्य विशाल क्षेत्र प्रदान करती है। यहाँ वर्तमान अर्थ में वैदिक रीति से लोट का प्रयोग किया है।

टिप्पणी –ऋतम →√ ऋ– गमने जाना से प्रकृति अर्थ यह नियमित गमन करती है इसके नियम नैतिक व दृढ़ हैं। धारयन्ति → √ धृ– धारणे ण्यन्त लट् प्र०पु०। कृणोतु → √ कृ → जनने (बनाना) लोट।

संहिता–पाठ

2. असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्धतः प्रवतः समं बहु।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रवतां राध्यतां नः।।

अनुवाद –जिस पृथिवी के बहुत से भाग पर्वतों के रूप में ऊँचे हैं, बहुत से भाग नीचे हैं और बहुत सारा भाग बराबर या सीधा है। जो अपने में अनेक गुणों से युक्त औषधियों को उगाकर धारण करती है। वह विस्तारमयी भूमि मानवों की निर्विरोधिता को प्रकट करती हुई उसे दृढ़ बनाए। हमारा विकास करे तथा हमें अतुलित समृद्धि प्रदान करे। यहाँ मन्त्र में मध्यतः शब्द, बध्यतः के स्थान पर शाखा भेद से प्रयुक्त हुआ है वास्वत में बध्यत का ही प्रयोग ठीक लग रहा है। तभी असंबाध के साथ उसका अर्थ घटता है।

टिप्पणी –असंबाधम् → नञ् + सम् √ बाध् 'पीड़ित करना, दबाना' बाधा रहित। ग्रीफिथ ने "not crowded by the crowd"किया है। बिभर्ति →√ भृ धारणे (जुहोत्यादि) लट्। प्रथताम् →√ प्रथ = फैलाना (आत्मनेपद लोट) राध्यताम् →√ राध् = सफल होना (आ० लोट्)।

संहिता–पाठ

3. यस्याँ समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिःपूर्वपेये दधातु।।

अनुवाद –जिस भूमि पर समुद्र, नदी, कुंए (जलाशय) जिस पर अन्नों की खेतियाँ होती है और जिस पर यह सारा जीवित जगत् श्वास लेता है तथा विचरण करता है ऐसी यह भूमि हमारे लिए प्रमुख उपभोग स्वरूप पेयों का प्रदान करें। यहाँ पर पूर्वपेय का अर्थ, आर्यों के पूर्वजों का अभीष्ट सोम भी हो सकता है और मोक्ष भी। अर्थात् शरीर धारण से पूर्व जीव ब्रह्म एकता के समय जो मुझे समस्त संसार के समस्त रसों का एक जगह ही, पान हो जाता था, उस स्थिति को हे भूमि तू मुझे भूमा बनाकर, प्रदान कर।

टिप्पणी –कृष्टय → कृष्टि बहु०, √ कृण्– हल चलाना ग्रिफिथ अन्न भूमि जो अन्न पर जीवित रहते हैं, मनुष्य। संबभूवुः → सम् + √ भू → सत्तायाम् होता (लिट्)। जिन्वति → √ जिन्व्–त्वरावान् बनाना (लट्)

जीवन योग्य बनाना। प्राणत् → प्र + अन् (श्वास लेते)। एजत् →√ एज् = गति–मान होना। शतृ पूर्वपेये → उपपद समास ग्रिफिथ → for most rank and stationपूर्वपेय 'सोम' सम्भव है।

संहिता–पाठ

4. यस्याष्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।

अनुवाद –जिस पृथिवी की चार उपदिशाएं हैं, जिस पर अन्न और खेतियाँ पैदा होती हैं। जो पृथिवी श्वासधारियों एवं रेंगने वाले प्राणियों को सर्व प्रकारेण धारण करती है, वह हमें स्तुति करने वालों के लिए, गौओं के दूध में तथा अन्न के जीवनदातृ रस में अमृत का धारण करें।

भूमि पर समस्त मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर, नभचर आदि प्राणी चारों दिशाओं में निवास करते हैं, वे सब पृथिवी माता की सन्तान हैं। दूध और अन्न सब की अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। कृषि और गौओं से ज्यादा से ज्यादा अन्न और दूध पैदा किया जा सकता है। सभी प्राणी उस उत्पादन के समसेवी हों। इस मन्त्र में ''नः अपि'' बड़े महत्त्व का है। जिस से ज्ञात हो रहा है कि वैदिक ऋषि कहता है कि पृथिवी की सम्पदाएं 'हमें ही' नहीं 'हमें भी' प्राप्त हों। यह है सार्वभौमिक वैदिक साम्यवाद।

टिप्पणी –अन्ने →√ अद् + अण् (कर्मण्यण्) खाद्य। दधातु √ धा → रखना (जुहो०) लोट्।

संहिता–पाठ

5. यस्याँ पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्याँ देवा असुरानभ्यवर्तयन्।

गवामश्वानाँ वयसष्च विष्ठा भगँ वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

अनुवाद –जिस भूमि पर हमारे पूर्वजों ने बढ़–चढ़ कर अपने कर्त्तव्य किए, जिस पर देवताओं ने असुरों के ऊपर आक्रमण कर के उन्हें पराजित किया है, जो गौओं घोड़ों और आकाशचारी पक्षियों के निवास का आश्रय है, वह पृथिवी हमें समस्त ऐश्वर्य = धन, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य तथा सुन्दर सुकान्ति प्रदान करें।

भर्ग और वर्च का, धनैश्वर्य एवं सुन्दरता का तादात्म्य सम्बन्ध हैं इस सम्बन्ध को इस मन्त्र में वर्णित किया है।

टिप्पणी –विचकिरे –√ कृ बनाना, वि + √ कृ (लिट) अभ्यवर्तयन् → अभि + √ वृत् – मुड़ना विष्ठा – वि + √ स्था (खड़ा होना) + क ग्रिफिथ – विविध गृह (Veried home)।

संहिता–पाठ

6. विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतौ निवेशनी।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु।।

अनुवाद –विश्व की परिपालना करने वाली, जीवन सुविधा रूपी धनों को धारण करने वाली, सबको सहन करने वाली, वक्षस्थल में रत्न धारण करने वाली, जगत् को बसाने वाली, ऐश्वर्य बरसाने वाली, विश्वमानवता रूपी अग्नि को धारण करने वाली, पृथिवी रूपी माँ, हम स्तुति करने वालों के लिए धन प्रदान करें।

इस मन्त्र में मातृभूमि के साथ–साथ भूमिमाता की भी कल्पना की गई है और उसे विश्वम्भरा की संज्ञा दी गई है, जो आर्यों की कृतज्ञता का प्रमाण है।

टिप्पणी –विश्वँभरा → विश्वँ भरतीति साया विश्वंभरा तत्पुरुष (समासस्य पाणिनि 5–1–223) वसुधानी → वसु + √ धा (रखना) + ल्युट् + ङीप् बिभ्रति →√ भृ धारण करना शतृ + ङीप् इन्द्रऋषभा (बहुब्रीही)।

संहिता–पाठ

7. याँ रक्षन्त्यस्वप्ना विष्वदानी देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

अनुवाद –स्वप्न रहित जागरूक देवता अथवा आलस्य रहित सतत् विश्व कल्याण चिन्तक श्रेष्ठ नेता, ही सब को इच्छित सामग्री देने वाली, बिना आलस्य से इस भूमि की रक्षा करते हैं। जब उस व्यापक पृथिवी की रक्षा होगी, तब वह सर्वभर्त्री, रक्षाकर्त्री व्यापक भूमि, अपने स्तनों से, सबको सुख देने वाले मधु को पिलायेगी और सौन्दर्य तथा तेज की वर्षा भी करेगी।

टिप्पणी –विश्वदानीम् → विश्व + √ दा (देना) ल्युट् + ङीप्। दुहाम् → √ दुह् (दोहन करना) आत्मनेपद लोट् उक्षतु →√ उक्ष् छिड़कना, लोट्।

संहिता–पाठ

8. यार्णवेधि सलिलमग्र आसीत् याँ मायाभिरंवचरन् मनीषिणः।

यस्या हृदयँ परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।।

अनुवाद –सर्गारम्भ में जो समुद्र के सलिल में संलीन थी, महर्षियों ने विज्ञान के द्वारा जिसका अनुसरण किया, जिस का हृदय सर्वोच्च व्योम में अटल नियम रूपी प्रकृति से आच्छादित होकर, अमरत्व रूप में विद्यमान था। वह पृथिवी हम स्तुति करने वालों को उत्तम राष्ट्र का साम्राज्य देकर, बल और तेज प्रदान करें।

टिप्पणी –अन्वचरन् → अनु + √ चर् (चलना) लङ्. प्र० पु० ब० व० (अनुसरण किया) व्योमन् → स० ए० व० (सुपां सुलुक् 7.1.39) छान्दस विभक्ति लोप।

संहिता–पाठ

9. यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

अनुवाद –जिस पृथिवी पर सर्वत्रगति करने वाली समान रूप वाली जलधारा में, रात–दिन बिना आलस्य किए जो बहती रहती है। ऐसी अनेक धाराओं के वैभव से युक्त, अनेक नदीनद स्त्रोतों से सम्पन्न वह पृथु की प्रथित की हुई धरती, हम स्तुति करने वालों के लिए, पौष्टिक पेय पदार्थ, जैसे शिशु के लिए माँ का दूध होता है। वैसे ही दोहन या क्षरण करें। जिस से हमारा तेजांकुर, सींचा जाने पर, बढ़ पाएं।

इस मन्त्र में भावों की महिमा अपार है। माता का दोहन जैसे शिशु वर्धन पूर्वक, बड़े स्नेह से करता है, वैसे ही आर्य ऋषि भी मातृभूमि के नदी–झरने रूपी अनेक स्त्रोतों का उपभोग करके, उस माता रूपी भूमि से अनेक विधपेय और उपभोग्य पदार्थों का उत्पादन कर लेता है।

टिप्पणी –क्षरन्ति →√ क्षर् (बहना) प्र० पु० ब० व० अहोरात्रे → द्वन्द्व समास, द्विवचनान्त, एदन्त, प्रगृह्य संज्ञक। अथ + उ → अथो ओ प्रगृह्य।

संहिता–पाठ

10. यामश्विनावमिमाताँ विष्णुर्यस्याँ विचक्रमे।

इन्द्रो याँ चक्र आत्मनेनमित्राँ शचीपतिः।

सा नो भूमिर्वि सृजताँ माता पुत्राय मे पयः।।

अनुवाद –जिस पृथिवी को अश्विनी कुमारों ने चारों तरफ से मापा, जिसे विष्णु ने अपने कदमों से चलकर पवित्र किया, इन्द्र ने जिसे अपने लिए शत्रु रहित बनाया, वह पृथिवी हम स्तुति करने वालों के लिए, पेय पदार्थ या दूध, वैसे ही प्रदान करे, जैसे कोई माँ अपनी कोख में पैदा हुए बच्चे के जिए समय–समय पर दूध पिलाती है।

टिप्पणी –अमिमाताम् →√ मा मापना लङ्., प्र० पु० द्वि० व०। विचक्रमे √ वि क्रम् (डग भरना) लिट्। चक्रे →√ कृ आत्मनेपद।

संहिता–पाठ

11. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।

बभ्रुं कृष्णाँ रोहिणीं विश्वरूपाँ ध्रुवाँ भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठाँ पृथिवीमहम्।।

अनुवाद –हे पृथिवी माता! तेरे में उत्पन्न गिरि बर्फ वाले ऊँचे पहाड़ तथा महदरण्य हमारे लिए सुखकारी हों। तेरा स्वरूप पीला, काला, लाल एवं समस्त रंगों से रंजित है। इस प्रकार के तेरे इस स्थिर तनु पर मैं शत्रुओं को जीतकर, उनसे हार न खाकर शरीर में कोई घाव न धारण करता हुआ स्थिर हो जाऊँ।

टिप्पणी –हिमवन्तः → हिम+वतुप् (हिमवत्) ब० व०, विश्वरूपाम् → (बहुब्रीहौ विश्वसंज्ञायाम् 6.2 106) अनेक रूपों वाली। इन्द्रगुप्ताम् → इन्द्रेण गुप्ताम्। अस्थाम् →√ स्था (खड़ा होना) लङ्न्तरूप।

संहिता–पाठ

12. यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नोधेह्यमि नः पयस्व माता भूमिः पुत्रो हिं पृथिव्याः।
पर्जन्य पिता स उ नः पिपर्तु।।

अनुवाद –हे पृथिवी माता! जो तेरा बीच का स्थान है, नाभी स्वरूप अर्थात् जैसे शरीर का मध्यभाग नाभी होता है वैसा भाग कहाँ है। जहाँ से तेरी ऊर्जा पैदा होती है। उस में हमें रख कर, पवित्र करो। पृथिवी मेरी माता है और मेघ मेरा पिता है। वह मेघ हमारा पालन करें।

टिप्पणी –संबभूवु → सम् + भू लिट् प्र० पु० व० व०। धेहि →√ धा लोट् म० पु०। पवस्व →√ पू (साफ करना) आत्मनेपद लोट् म० पु०। पिपर्तु →√ पृ (पार जाना) लिट् प्र० पु० ए० व०।

संहिता–पाठ

13. यस्याँ वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्या यस्यां यज्ञं तन्वते विष्वकर्माणः।
यस्याँ मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्या पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना।।

अनुवाद –जिस भूमि को वेदिरूप में ग्रहण किया, जिस के ऊपर संसार का निर्माण करने वाले प्रथमज महर्षियों ने सृष्टि के विस्तृत करने वाले यज्ञ को विस्तारित किया। जिस पृथिवी रूपी वेदि पर आहुति देने से पूर्व, वीर्यरूपी शुद्ध ऊँचे–ऊँचे स्तम्भो का निर्माण किया, ऐसी वह पृथिवी विस्तार को प्राप्त करती हुई, हमें बुद्धि प्रदान करें।

टिप्पणी –परिगृह्णन्ति → परि + √ ग्रह (पकड़ना) लट् (ब० व०) तन्वते →√ तन् (फैलाना) आत्मनेपद प्र० पु० मीयन्ते → मा (मापना) आत्मनेपद लट् प्र० पु० वर्धयत् → वृध् (बढ़ना) ण्यन्त वर्धमाना →√ वृध + मतुप्। स्वरवः → स्वरू (यूप) ब० व०।

संहिता–पाठ

14. यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् यो भिदासान्मनसा यो बधेन तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि।।

अनुवाद –हे भूमि देवता! जो व्यक्ति द्वेष के कारण हमारे साथ मानसिक रूप से या आयुद्धों के द्वारा युद्ध करे या हमारे विरूद्ध आचरण करें, ऐसे व्यक्ति को हमारे वश में करा दो। जैसा कि तूने पहले भी बहुत बार किया है।

टिप्पणी –द्वेषत् →√ द्विष् (द्वेष करना) लेट् प्र० पु० पृतन्याद् →√ प्रतन्य अभिदासात् → अभि + √ दभ् (हानि पहुँचाना) लोट् (प्र०पु०) रन्धय →√ रध् (अधीन करना) लोट् (म० पु०) पूर्वकृत्वरि → पूर्व + √ कृ + क्विप्+वनिप्+डीप्, (वनोरच 4.17) वन् को रत्व ड.ीप् से पहले।

संहिता–पाठ

15. त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं विभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।

तवेमे पृथिवि पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य,

उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।

अनुवाद –हे भूमिमात! तेरे से उत्पन्न जीव, तेरी गोद में खेलते हैं। तू ही दो पद अथवा चार पद वाले समस्त जीवों को धारण करती है। हे पृथिवी! तेरे से उत्पन्न पंचजन गन्धर्व पितर, देवता, असुर और राक्षस हैं। जिन के लिए सूर्य भगवान् उदित होकर नित्य प्रति अपनी किरणों के द्वारा अमृत को फैलाता रहता है। यदि सूर्य अपनी किरणों को पृथिवी में उत्पन्न जीवों पर न डाले तो सब की मृत्यु हो जाती है। अतः सबको अमृत रूपी जीवन सूर्य से ही मिलता है।

टिप्पणी –विभर्षि →√ भृ (धारण करना) म० पु०। द्विपदः, चतुष्पदः → द्वौ पादौ यस्य सः द्विपात् (साँख्यासुपर्वस्य 5.4.140) अन्त्यलोप (पादः पत् 6.4.130) पत् भावः (द्वित्रिम्याम् पाद्दन् 6.2.197) पदान्त उदात्त चतुष्पदः (पूर्ववत्)। उद्यन् → उत् + √ इ (जाना) शतृ। आतनोति → आ + √ तन् (फैलाना) लट्।

संहिता–पाठ

16. ता नः प्रजाः सँ दुह्रताँ समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।।

अनुवाद –पूर्वमन्त्र में जो पंचजन पृथिवी के पुत्र बतलाए हैं, वे सारी प्रजा हमें आशीर्वाद के वचन कहें। हे धरती माँ, संसार की जितनी भी बाणियाँ हैं, उनका सार रूपी मधु, तुम मेरे लिए धारण करो। जिसको पीकर मैं अमृत हो जाऊँ और कभी भी इस संसार के दुःखों को न पाऊँ।

टिप्पणी –दुह्रताम् →√ दुह् (दुहना) आत्मनेपद लोट् धेहि →√ धा लोट् म० पु०।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 3**

  प्र०1. पृथ्वी सूक्त किस वेद से लिया गया है?

  प्र०2. पृथ्वी सूक्त का अन्य नाम क्या है?

  प्र०3. पृथ्वी सूक्त में किसका महत्त्व बताया गया है?

  प्र०4. विश्वम्भरा की संज्ञा किसे दी गयी है?

16.5 सारांष

वेद का सृष्टिकल्याणार्थ बहुत महत्त्व है। सृष्टि के चराचर जगत् के लिए– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद चारों वेदों में समस्त विषयों का समावेश है। अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पृथिवी (धरती) माता के महत्त्व का उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार पृथिवी माता अपने पुत्रों का पालन–पोषण करती है।

16.7 कठिन शब्दावली

सत्यं –सत्यनिष्ठ	**ऋतं** –यथार्थ ज्ञान
तपः –धर्म को	**नानावीर्या** –अनेक गुणों से युक्त

विभर्ती –धारण करती है

कृष्टयः –किसान

अभ्यवर्तयन् –पराजित किया था

विश्वदानीं –सम्पूर्ण ऐश्वर्य को

मनीषिणं –ऋषियों ने

विश्वम्भरा –विश्व को पालने वाली

रोहिणीं –रक्त वर्ण की

पर्जन्यः –मेघ

पुरस्तात् –पूर्व दिशा से

मर्त्या –मानवादि, मरणशील

सिन्धुः –नदियां

विचक्रिरे –विचरण किया

वर्चः –तेज को

अर्णवे –क्षार युक्त समुद्र में

पयः –अन्नादि भोग्य पदार्थों को

विसृजताम् –उत्पन्न करो

उर्जः –तेजोमय

पिपतु –पालन करे

रन्धय –विनाश करो

त्वज्जाताः –तुम से ही जन्म लेते हैं

16.8 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ॰1. 731

  उ॰2. बारहवें

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

  उ॰1. अथर्वण एवं अंगिरा

  उ॰2. 63

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 3**

  उ॰1. अथर्ववेद

  उ॰2. भूमि सूक्त

  उ॰3. पृथिवी का

  उ॰4. पृथ्वी को

16.9 अनुषंसित ग्रन्थ

1. डॉ. गोकुल चन्द्र शर्मा, आँगिरस (पृथ्वी सूक्त) आँगिरस समिति ठियोग, शिमला।
2. जिया लाल कम्बोज, अथर्ववेद (तृतीय खण्ड), शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली।
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

16.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पृथ्वी सूक्त का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. पृथ्वी सूक्त का महत्त्व लिखें।

3. निम्नलिखित शब्दों की व्याकरणिक टिप्पणी लिखें–

1. ऋतम्, 2. विश्वम्भरा, 3. अहोरात्रे, 4. अहतः, 5. पिपर्तु, 6. वर्धयत्, 7. बिभर्षि, 8. धेहि।

4. पृथ्वी सूक्त के आधार पर पृथ्वी की राष्ट्रिय अवधारणा को स्पष्ट करें।

5. माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः, पृथ्वी सूक्त की इस पंक्ति का आशय स्पष्ट करें।

इकाई – 17

पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 17–32)

संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 17–32 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

17.4 सारांष

17.5 कठिन शब्दावली

17.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

17.7 अनुषंसित ग्रन्थ

17.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पृथ्वी सूक्त के 17 से 32 मन्त्रों की व्याख्या की गई है। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों के सेवन से ही प्राणीजगत् प्राण धारण करता है। पृथ्वी को महान् कहा गया है क्योंकि यह सबको एक विशाल स्थान रहने के लिए प्रदान करती है। इसमें भौगोलिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों की बात की गई है तथा पृथ्वी की उदारता की प्रशंसा, पृथ्वी सब वस्तुओं को धारण करती है।

17.2 उद्देष्य

1. पृथ्वी सभी प्राणियों का मातृवत् पालन–पोषण करती है।
2. पृथ्वी के नीचे अग्नि होने के कारण इसे अग्निगर्भा कहा गया है।
3. वैदिक ऋषियों के द्वारा पुनः पुनः प्रार्थना की गई है 'वसुधैव कुटुम्बकम्'।
4. पृथ्वी सभी को धारण करती है। वस्तुतः यह सबकी शासक है।

17.3पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 17–32 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

17. विश्वस्वं मातरमोषधीनाँ ध्रुवाँ भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवाँ स्योनामनु चरेम विश्वहा।।

अनुवाद –समस्त धनों का खजाना, दिव्य ओषधियों की जन्मदात्री, स्थिर, व्यापक, फैली हुई पृथिवी, जिसको धर्म ने धारण कर रखा है, जो कल्याणकारी है, सुखदात्री है, उसकी हम हमेशा, प्राणों को न्यौछावर कर, सेवा करें। क्योंकि– ''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी'' का सिद्धान्त आर्यों (श्रेष्ठजनों) में प्रसिद्ध है।

टिप्पणी –विश्वस्वम् →√ विश्व + √ स् + क्विप्।

संहिता–पाठ

18. महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।

महाँस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।

सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कष्चन।।

अनुवाद –हे महान् भूमि, सब स्थानों में पहुँची हुई, तू अत्यधिक महत्ता युक्त बन गई हो। तेरी गति अत्यधिक है, तेरा भूकम्पन और थिरकता भी महान् है। अत्यधिक महत्त्व से युक्त इन्द्र बिना आलस्य के तेरी रक्षा करता है। ऐसी इन्द्र रक्षिते भूमि, तुम हमें हिरण्य की शोभा से युक्त कर दो ताकि कोई भी हमारे से द्वेष न करें।

जैसे सुवर्ण से कोई द्वेष नहीं करता बल्कि सभी उसको चुराते रहते हैं और सभी के हृदय को अच्छा लगता है, ऐसे ही अगर हमारा वर्ण भी सुवर्ण का होगा तो कोई भी जन हमारे से द्वेष नहीं करेगा।

टिप्पणी –वभूविथ →√ भू– 'होना' लिट् म० पु०। एजथुः → एज् गतिमान होना+अथुः, वेपथु √ विप्– काँपना–अथु, रोचय →√ रुच्– 'चमकना' (म०पु०ए०व०), संदृशि → सम्+ √ दृश 'देखना' + इ, द्विक्षत →√ द्विष्– द्वेष करना आत्मने (प्र०पु०, ए०व०)।

संहिता–पाठ

19. अग्निर्भूम्यामोषधीष्वाग्निमापो बिभ्रत्यग्निरष्मसु।

अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वष्वेष्वग्नयः।।

अनुवाद –भूमि में अग्नि का वास है, औषधियों में भी अग्नि विद्यमान है। जल अग्नि को धारण करते हैं। अग्नि पत्थरों में, पुरुषों में, गायों में, घोड़ों में सर्वत्र विद्यमान है।

अग्नि की सर्वव्यापकता बतलाते हुए मन्त्र में सर्वप्रथम पृथिवी पर रहने वाली लौकिक अग्नि का प्रदर्शन किया है। फिर जंगल की दावानल, समुद्र की बढ़वानल और अन्त में उदरानल, जो खाए हुए को पचाती है उसका वर्णन किया है।

टिप्पणी –बिभ्रति →√ भृ– धारण करना, जुहोत्यादि, लट् प्र०पु०, ए०व०।

संहिता–पाठ

20. अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वान्तरिक्षम्।

अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।।

अनुवाद –अग्नि देवता सूर्य रूप धारणकर द्युलोक में तपता है। उस अग्नि का विस्तृत अन्तरिक, विद्युत रूप में निवास स्थान है। पृथिवी में रहने वाले मनुष्य उस हव्यवाहन करने वाले और घी को प्यार करने वाले, अग्नि को जलाते हैं।

सूर्य और बिजली से मनुष्य ही पार्थिव अग्नि को पैदा कर सकते हैं। जब वह पार्थिव अग्नि बन जाएगी तब उस में आहुति ढोने की शक्ति भी आएगी और चर जीवों के अन्तिम तत्त्व घृत को, जो उसका स्वस्वरूप है, उससे स्नेह करने की शक्ति भी मिल जाएगी।

टिप्पणी –मर्तास → मर्त प्रथमा ब०व० आसस्। इन्धते →√ इध → जलाना, लट्, प्र०पु०ए०व०।

संहिता–पाठ

21. अग्निवासाः पृथिव्या सितज्ञू स्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु।।

अनुवाद –पृथिवी ने अग्नि के वस्त्र धारण कर रखे हैं। इस पृथिवी का स्वरूप न श्वेत है न काला। अपितु समस्त रंग जो पार्थिव वस्तुओं के देखे जा रहे हैं, ये सब उसी के रूप हैं। ऐसी सर्ववर्ण सम्पन्न पृथिवी मुक्त स्तुति करने वाले को तेज नाम से युक्त कर दें।

टिप्पणी –अग्निवासाः → अग्निर्वासोर्वसनं यस्याः सा। अग्नि+वासस् (प्रथमा व० व०)। असितज्ञूः – अश्वेत, जानु यस्या सा। अश्वेतजानुका कृणोतु →√ कृ (स्वादि) 'बनाना', लोट् प्र०पु०, ए०व०।

संहिता–पाठ

22. भूम्याँ देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् भूम्याँ मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः। सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।।

अनुवाद –पृथिवी पर रहने वाले मानव, सुप्रकारेण चरु आदि का निर्माण कर, देवताओं के लिए, हविर्दान करें। देवता भी मनुष्यों के जीवन का साधन भूत, पेय और अन्न का, वर्षा करके उत्पादन करें। इस तरह परस्पर एक–दूसरे की सहायता करके, भूमि वासी मनुष्य एवं द्युलोक वासी देवता सृष्टि के चक्र को चलाएं। जो इस चक्र का आधार भूत भूमि है, वह हमें प्राण और दीर्घायुष्य को प्रदान करें।

टिप्पणी –ददति →√ दा–देना (भ्वादि) प्र० पु०, ए० व०। जीवन्ति →√ जीव् जीना लट् प्र० पु०, व० व०। दधातु √ धा → रखना लोट् प्र० पु० ए० व०। जरदष्टिम् →√ जृ → 'जीर्ण होना' +शतृ+अष्टि (√ अश्+क्तिन् अष्टि–गति) द्वितीया ए० व०।

संहिता–पाठ

23. यस्ते गन्धः पृथिवी संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः। य गन्धर्वा अप्सरसष्च भेजिरे तेन मा सुरभि कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।

अनुवाद –हे पृथिवि! आप में जो सबको सुगन्धित करने वाला गन्ध पैदा हुआ है। जिस गन्ध को तेरे से पैदा होने वाली ओषधियों ने, जलों ने धारण कर रखा है। जिस गन्ध को नृत्यगान करने वाली गन्धर्व जाति ने तथा देवांगना रूपी अप्सराओं ने अपना रखा है। उस गन्ध से, मुक्त स्तोता को भी सुवासित कर दे। ताकि दुनिया का कोई भी प्राणी मेरे साथ द्वेष न करे।

टिप्पणी –संबभूव – सम्+भू होना प्र० पु० ए० व०। बिभ्रति √ भृ–धारण करना प्र० पु० ए० व०। भेजिरे →√ भाज्–बाँटना आत्मने, प्र० पु० व० ब०। कृणु →√ कृ लोट् म० पु० ए० व०। द्विक्षत → देखें 12–1–18।

संहिता–पाठ

24. यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रु सूर्याया विवाहे।

अमर्त्याः पृथिवि गन्धयग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।

अनुवाद –हे भूमे! आदि कल्प में जो तेरा गन्ध कमल में प्रविष्ठ हुआ था, जो तेरा गन्ध सूर्य पत्नी के विवाह में, देवताओं ने स्वयं धारण किया था, उस अपने गन्ध से मुझे भी सुगन्धित कर दे। ताकि कोई भी सृष्टि का जीव मेरे साथ द्वेष न कर सके।

टिप्पणी –अविवेश संजभ्रुः द्विक्षत– देखें 12–1–18।

संहिता–पाठ

25. यस्त गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचि।

यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु। कन्या याँ वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन।।

अनुवाद –तेरा गन्धरूपी गुण, पुरुषों में, स्त्रियों में, विद्यमान है, जो तेरा ऐश्वर्य और कान्ति, पुरुष जाति में देखी गई है, घोड़ों में, वीरों में, मृगों में और हाथियों में देखने को मिलती है। कन्या– जिसके बारे में माँ–बाप को यह चिन्ता होती है कि ''कः इमाँ नयति'' अर्थात् यह युवती जिस का विवाह नहीं हुआ है, उसमें जो लोगों को आकृष्ट करने का गुण है, उन गुणों ऐश्वर्यों और आकर्षणों से हमें भी युक्त कर। जिनको धारण करने से, हमारे साथ कोई, जीव द्वेष न करें।

टिप्पणी –संसृज → सम्+ √ सृज् (जोड़ना) लोट् म० पु० ए० व०।

संहिता–पाठ

26. शिला भूमिरष्मा पाँसु सा भूमि संधृता धृता।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।

अनुवाद –जो चट्टानों, सख्त मिट्टी के ढेलों, चमकदार पत्थरों धूलिकणों से मिल कर बनी है, वह भूमि इन्हीं उपकरणों के द्वारा दृढ़ बांध कर, बन्धी है। ऐसी दृढ़ भूमि के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। इस भूमि को दृढ़ता के कारण ही नमस्कार नहीं किया जाता। अपितु इस के गर्भ में, हिरण्यप्रधान समस्त ऐश्वर्य को देने वाली होने से भी यह नमस्कार योग्य हैं।

टिप्पणी –संधृता–सम्+ √धृ (धारण करना) +क्त। अकरम् →√ कृ (लड़.) उत्तम पु० ए० व०।

संहिता–पाठ

27. यस्याँ वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।

अनुवाद –जिस भूमि पर, क्षेत्र को ढकने वाले लतागुल्म वृक्षादि और जिस पर मंजरियों से पैदा होने वाले आम अखरोट आदि समस्त भूमिज दृढ़ता के साथ समस्त दिनों में रहते हैं। उस विश्व को पालन करने वाली पृथिवी को जो पूर्णरूपेण सबको धारण करने का व्रत लिए हुए है। मैं यहाँ पर अच्छी संस्तुतियों के द्वारा बुलाता हूँ।

टिप्पणी –आवदामासि – आ+ √ वद् लट् उ० पु० ब० व०, मस् के स्थान पर मसि।

संहिता–पाठ

28. उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।

पदभ्याँ दक्षिणसव्याभ्याँ मा व्यथिष्महि भूम्याम्।।

अनुवाद –ऊपर को उठते हुए, अथवा बैठते हुए, खड़े रहते समय, इधर–उधर घूमते समय, दाहिना–बायाँ पैर रखते समय हम कम्पित या दुःखी न हों। हे पृथिवि! ऐसी शक्ति, हमें प्रदान करो।

टिप्पणी –प्रक्रामन्तः → प्र+ √ प्र+ √ क्रम → डग भरना शतृ प्रत्ययान्त। व्यथिष्महि →√ व्यथ् → 'डगमगाना' व 'कांपना' (ऋ० 2.12.2 में भी) लट् म० पु०। हि का प्रयोग।

संहिता–पाठ

29. विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमाँ भूमिं ब्रह्मणा बावृधानाम्

ऊर्जं पुष्टं विभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे।।

अनुवाद –अत्यन्त पवित्र, फैली हुई, क्षमाशील, व्यापक, ब्रह्म द्वारा परिवर्धित, शक्तिसम्पन्न, पुष्टिकारक खाद्यपदार्थों एवं घृत को धारण करने वाली पृथिवी की मैं प्रार्थना करता हूँ कि हे भूमे! हम तुझ पर आश्रय लेकर बैठना चाहते हैं।

टिप्पणी –आवदामि → आ+ √ वद् (पुकारना) उ०पु०, ए०व०। निषीदेम→ नि+ √।

संहिता–पाठ

30. शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तँ नि दध्मः।

पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि।।

अनुवाद –हे भूमिमात! हमारे शरीर के लिए पवित्र जलों को बहाओ। जो कोई हमारे प्रति कुदृष्टि से प्रयाण करें, उसे हम अवांच्छनीय स्थान में रखें। हे पृथिवीमात! दुर्वा के बने पवित्र से शुद्ध की हुई वस्तुओं का सेवन करके मैं अपने को पवित्र करूँ।

टिप्पणी –दध्मः दध् उ० पु०, व० व०। पुनामि पु–साफ करना लट् उ० पु०, ए० व०।

संहिता–पाठ

31. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याष्च पश्चात्।

स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।।

अनुवाद –हे पृथिवी! तेरी जो पूर्वदिशा, उत्तर दिशा और उत्तर के विपरीत दक्षिण दिशा, पूर्व के समानान्तर पश्चिम दिशा तथा इनके बीच के अग्नि, नेत्रऋत, वायव और ऐशान्य नामक दिक्–कोण, तेरे पर विचरण करने वाले मुझ स्तोता के लिए, वे सुखकर हों। मैं जो इन स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर रूपी भूमियों में जो आश्रय लेकर, व्यवहार कर रहा हूँ उससे मेरा पतन न हो। अर्थात् मुझे शरीर में आत्मा का अहंकार न हो।

टिप्पणी –चरते →√ चर्–चलना + शतृ। भवन्तु लोट् प्र० पु०, व० व० पप्तम् →√ पत् 'उड़ना' उ० पु० ए० व० अडाभाव। शिश्रियाणः →√ श्रि 'आश्रय लेना' + कानच्।

संहिता–पाठ

32. **मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नूदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।**

स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयोयावया वधम्।।

अनुवाद –हम स्तुति करने वालों को अपनी पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशाओं से मत हटाओ। हम सर्वत्र अप्रतिहत गति वाले बनें। हे भूमि हमारे लिए तुम कल्याणकारी बनो। जीवन रूपी मार्ग में जो लुटेरे हैं, वे हमको न जान पाएं। अपने श्रेष्ठ हथियार को हम से अलग रखो।

टिप्पणी –परिपान्धिन् (प्रथमा ब० व०) मार्गतस्कर यवम् →√ य (अमिश्रणे) लोट् म० पु० ए० व० वधम् → वध (वैदिक अर्थ आयुध)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  प्र॰1. पृथ्वी किसको धारण करती है?

  प्र॰2. पृथ्वी को धृता क्यों कहा गया है?

  प्र॰3. पृथ्वी का क्या गुण है?

  प्र॰4. पृथ्वी की दिशाओं से क्या प्रार्थना की गई है?

17.4 सारांष

पृथ्वी सूक्त में जो पृथ्वी सबका मातृवत् पालन–पोषण करती है। उसके प्रति हम सबका कर्त्तव्य है कि हम उसकी सेवा, संरक्षण तथा संपोषण करें। समस्त वनस्पतियां और औषधियां पृथ्वी पर ही उत्पन्न होती हैं अतः उसे सबको उत्पन्न करने के कारण माता कहा गया है। पृथ्वी शब्द प्रथ धातु–प्रथने से निष्पन्न है। अतः पृथ्वी का अर्थ है– विस्तृत, व्यापक। सबको एक साथ रहने का विशाल स्थान प्रदान करने के कारण पृथ्वी को महान् कहा गया है। पृथ्वी के भौगोलिक और वैज्ञानिक तथ्यों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। पृथ्वी के नीचे अग्नि है जिस कारण इसे अग्निगर्भा कहा जाता है। जब पानी पृथ्वी के केन्द्र तक पहुंचता है तो भाप बनती है जिस कारण भूकम्प आते हैं। वनस्पतियों में भी अग्नि है यही अग्न वनस्पतियों को पकाती है। जल में भी अग्नि है। वडवानल (समुद्र में लगने वाली आग) जल में ही उत्पन्न

होती है। पत्थरों में भी अग्नि है जिस कारण पत्थरों के टकराने से चिन्गारी पैदा हो जाती है। मनुष्य तथा पशुओं के भीतर भी अग्नि है जिस कारण वे भोजन पकाते हैं जिसे जठाग्नि (पेट की अग्नि) कहा जाता है। इस पृथ्वी पर अनेक वस्तुएं– पर्वत, मिट्टी, पत्थर और धूल आदि। पृथ्वी पराक्रम, सत्य, तप, दीक्षा, वेद इत्यादि के द्वारा आज तक टिकी है। अतः इसे धृता भी कहा गया है जिसका अर्थ है– धारण की गई। यह पृथ्वी वृक्षों, वनस्पतियों, प्राणियों की आश्रय है। वैदिक ऋषियों ने पृथ्वी से बार–बार प्रार्थना की है कि हमें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। हमें पृथ्वी का पवित्र जल ही प्राप्त हो। पृथ्वी की सभी दिशायें हमें सुख प्रदान करें।

17.5 कठिन शब्दावली

विश्वस्वं –समस्त धनों से युक्त

ध्रुवाम् –स्थिर

स्योनाम् –सुखदायिनी

बेपथु –काँपना, भूकम्पन

आतपति –तपता है

मर्तासः –मनुष्य

यम् –गन्ध

पांसु –धुलिकण

पुनामि –साफ करना, पवित्र करना

स्योना –सुखकारी

वधम् –वैदिक अर्थ में श्रेष्ठ हथियार या आयुध

ओषधीनाम् –दिव्य वनस्पतियों से युक्त

धृताम् –धारण करना

एजथुः –गतिमान होना

भूम्याम् –पृथ्वी में

उरु –विस्तृत

जरदष्टिम् –वृद्धावस्था

सुरभिम् –सुगन्धित

व्यथिष्महि –डगमगाना, काँपना

प्राची –पूर्व दिशा

शिश्रियाणः –आश्रय लेना

परिपान्धिन –मार्ग के लुटेरे

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  उ॰1. अनेक शक्तिसम्पन्न ओषधिवृक्षों को

  उ॰2. धारण करने के कारण

  उ॰3. गन्ध गुण

  उ॰4. सुख प्रदान करने की

17.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. डॉ. गोकुल चन्द्र शर्मा, आँगिरस (पृथ्वी सूक्त) आँगिरस समिति ठियोग, शिमला।
2. जिया लाल कम्बोज, अथर्ववेद (तृतीय खण्ड), शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली।
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

17.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पृथ्वी के स्वरूप का वर्णन करें।
2. यस्यां वृक्षा वानस्पत्या .... धृतामच्छावदामसि।। इस मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
3. उदीराणा उतासीनास्तिष्ठनतः प्रक्रामन्तः .... मा व्यथिष्महि भूम्याम्।। मन्त्र की प्रसंग सहित व्याख्या करें।
4. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या .... निपप्तं भुवने शिश्रियाणः।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।
5. पृथ्वी सूक्त के अनुसार अग्नि का अग्नि स्वरूप का वर्णन करें।

इकाई – 18

पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 33–48)

संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 33–48 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

18.4 सारांष

18.5 कठिन शब्दावली

18.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

18.7 अनुषंसित ग्रन्थ

18.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पृथ्वी सूक्त के मन्त्र 33 से 48 का वर्णन किया है। पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि आयु की अधिकता होने पर भी हमारी इन्द्रिय शक्ति क्षीण न हो। हमें सोते, बैठते, चलते–फिरते कोई कष्ट न हो। भूमि की माता के रूप में कल्पना की गई है। भूमि की माता के रूप में कल्पना की गई है। पृथ्वी अनेक बहुमूल्य निधियों से युक्त है जिसको खोजने बताया है। पृथ्वी के गौरव का यशोगान करते हुए कहा गया है कि भूमि सब प्राणियों का निवास है, इसी पर सब धार्मिक कार्य सम्पन्न होते हैं जिस पर अन्न उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी को बादल (मेघ) की पत्नी के रूप में बताया है।

18.2 उद्देष्य

1. पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि हमारी इन्द्रियां कभी क्षीण न हो वे जीवनपर्यन्त अपना कार्य करती रहें।
2. पृथ्वी की माता के रूप में कल्पना की गई है और सन्देश दिया है कि प्राणीमात्र अनावश्यक रूप से पृथ्वी का दोहन न करे जिससे उसका सौन्दर्य विकृत न हो।
3. पृथ्वी के गौरव का यशोगान करते हुए कहा गया है कि इस भूमि पर सब प्राणी निवास करते हैं तथा कई धार्मिक कार्य सम्पन्न करते हैं।
4. पृथ्वी को विश्वगर्भा कहा गया है क्योंकि इसमें, अनेक वनस्पतियां, ओषधियां तथा कृषियां फलित होती है। ऐसी पृथ्वी को सबका पालन करने वाले प्रजापति रम्य तथा सुन्दर बनाएं।

5. पृथ्वी में अद्भुत साम्र्थ्य, क्षमता तथा सहिष्णुता है जिस कारण पृथ्वी भारी वस्तुओं, पुण्यात्मा, पापात्मा– इन सबको समान रूप से धारण करती हैं।

18.3 पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 33–48 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

33. यावत् तेऽभि विपष्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तराँ समाम्।।

अनुवाद –हे भूमि! जब तक मैं पृथिवी के जनक सूर्य के साथ मित्र बनकर तेरे को चारों तरफ से न देख लूं तब तक मेरी आँखों की शक्ति को तू उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना। वर्षों की संख्या अधिक बीत जाने पर कहीं, दर्शन शक्ति को क्षीण मत करना।

टिप्पणी –मेदिना →√ मिद् → 'प्रेम करना', मेष्ट →√ मिष् → 'पराभिभवेच्छायाम्'।

संहिता–पाठ

34. यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्ष्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिषमह।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिषीवरि।।

अनुवाद –हे भूमी देवता! यदा व्यं दक्षिणवामपाश्र्वाभ्यां त्वया साकं संस्पृश्य शयनं कुर्मः, यदा च पृष्ठभागं त्वयि संयुज्य स्वपामः, त्वांच अधस्ताम् कुर्याम हे सर्वाश्रयभूते पृथिवि! तदास्माकं विश्रम्मीणां हननं मा कुरु।

हे भूमे! जब हम, दायें तथा बायें पार्श्व को नीचे लगाकर सोते हैं, जब पीठ को तेरे ऊपर सटाकर हम सोते हैं और तू हमारे शरीर से निम्न हो जाती है, हे सब जीवों को अपनी गोदी में आश्रय देने वाली पृथिवी! उस समय हमारा वध मत करना।

टिप्पणी –अधिशेमहे– अधि+ √ शी, आत्मने पद उ० पु०, व० व०।

संहिता–पाठ

35. यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।

अनुवाद –हे भूमि! यदि आवश्यकता पड़ने पर तेरे किसी पेड़–पौधे का नाश करूँ, तो उसके स्थान पर अन्य वस्तु को लगाकर जल्दी ही उसे बढ़ा दूँ। हे पवित्र हृदय वाली, शुद्धपर्यावरण वाली भूमि, मैं व्यर्थ में, या स्वार्थः वश तेरी वस्तुओं को खन कर, तेरे कोमल हृदय को, घायल न करूँ। अपितु मेरा हृदय भी तेरे प्रति पवित्र और सरल होना चाहिए, नृशंस नहीं।

टिप्पणी –विखनामि – वि+ √ खन्– 'खोदना' उ० पु०। रोहतु →√ रुह लोट प्र० पु०। विमृग्वरि → वि + √ मृज् (साफ करना) + क्विप्+वनिप्+ङीप्। अर्पिपम् →√ ऋ (विद्ध करना) उ० पु० ए० व०।

संहिता–पाठ

36. **ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरे वसन्तः।**

ऋतवस्ते विहिता हायनोरहोरात्रे पृथिवि नो दूहाताम्।।

अनुवाद –हे भूमि मात! तेरे ऊपर छः ऋतुएं, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त आती हैं। इन ऋतुओं में पृथिवी पर जहाँ प्राकृतिक परिवेश में अन्तर आता है, वहाँ जीवों को जीवन के लिए जो आवश्यक उपजीव्य हैं उनकी भी उत्पत्ति होती रहती है। हे भूमि! आप उन हितकारी वस्तुओं को हमारे लिए रात–दिन एक बनाकर पैदा करो।

टिप्पणी –दुहाताम् →√ दुह– 'दोहन करना' आत्मनेपद, लोट्, प्र० पु०।

संहिता–पाठ

37. **याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वेन्तः।**

परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पथिवी न वृत्रम्।

शुक्राय दध्रे बृषभाय वृष्णे।।

अनुवाद –हे भूमि! तू जलों और समस्त जंगम जीवों को कम्पाती है। जीवन देकर उन्हें चलाती है। तुझ भूमि में ही समस्त अग्नियाँ और प्रजारूप अग्निया रहती हैं। क्योंकि जल को तू धारण करती है और उस जलरूपी वीर्य में, वे प्रजामिताग्नियाँ निवास करती हैं। तू ही देवताओं से विरोध करने वाले दस्युओं को दूर भगा देती है। पृथिवी कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का वरण करती है, वृत्रासुर का नहीं। क्योंकि वृत्रासुर कामना पूरी करने वाले जल या रेतस को रोक कर रखता है। इसलिए पृथिवी तुम शुक्र शक्ति से युक्त इन्द्र, जो धर्मवृषभ की तरह रूप धारण किए हुए हैं तथा कामनाओं की जो वर्षा करता है, उसके लिए तुम अपने को धारण किए हुए हो।

टिप्पणी –विजमाना → वि+√ जम्+शानच+टाप्। वृणानां–वृ+शानच्+टाप्। दध्रे →√ धृ लिट्, प्र०पु०ए०व०।

संहिता–पाठ

38. **यस्याँ सदोहविर्धाने यूपो यस्याँ निमीयते।**

ब्रह्माणो यस्यामर्चयन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।

युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे।।

अनुवाद –जिस पृथिवी पर सोम रखने का स्थान है और हविराधान का भी स्थान है। उसी भूमि पर यज्ञ के स्तम्भ भी निर्मित किए जाते हैं वहीं पर ऋग्वेदीय होता हवन करते हैं, सोमवेदीय उद्गाता गान करते हैं,

अथर्ववेदीय ब्रह्मा आज्ञा देते हैं और यजुर्वेदीय अध्वर्यु, इन्द्र को सोमपान करवाने के लिए सोम का अभिषवण करते हैं।

इस तरह से पृथिवी समस्त सृष्टि का आधार और उपभोग का साधन एवं उपभोक्ता के रूप में विद्यमान हैं।

टिप्पणी –सदोहविर्धाने–सदस+हविर्धान प्रथमा, द्वि०व०। पातवे →√ पा+तवे तुमुनार्थक छान्दस प्रत्यय। युज्यन्ते →√ युजृ 'जोड़ना' से।

संहिता–पाठ

39. यस्याँ पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह।।

अनुवाद –जिस भूमि को 'निर्मीयन्ते भूतान्यास्याम्' कहा गया है। उस भूमि पर भूतों के निर्माण कर्त्ता, प्रथमज ऋषियों ने, सात तन्त्रियों, सात स्वरों (सा रे ग म, प धा नि सा) सात धातुओं रूपी यज्ञ के द्वारा, निर्माता ब्रह्मा के निर्माण रूपी विशुद्ध यज्ञ में, तप के साथ या तप को तप कर, इन वेद मन्त्ररूपी गौओं को सात छन्दों में गाया।

टिप्पणी –गाः– गो (द्वितीया ब० व०) वेदमन्त्र वाणी ग्रिफिथ ने गाय अर्थ किया है। आनृचुः →√ अर्च– 'स्तुति करना' लिट् प्र० पु०, ब० व०।

संहिता–पाठ

40. सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः।।

अनुवाद –हम स्तुति करने वाले जिस धन की कामना करें, उस धन को वसुमती पृथिवी, हमें प्रदान करें। पूर्षु गच्छति इति पुरोगुः – इन्द्र देवता जो शत्रुओं के पुरों को मसल डालता है आगे चलता है वह हमारे मध्य में आकर, छः प्रकार के भग – शब्द से अभिव्यंजित वस्तुओं को प्रदान करें।

टिप्पणी –कामयामहे कम्– 'कामना करना' व्यन्त आत्मनेपद, उ० पु०, व० व०। पुरोगवः– पूर्षु गच्छति इति, पुरोऽग्रे गच्छतीति वा।

संहिता–पाठ

41. यस्याँ गायन्ति नृत्यन्ति भूम्याँ मर्त्या व्यैलबाः।
युद्धयन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदताम् सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।

अनुवाद –जिस भूमि पर मनुष्य प्रसन्नता से गाते है, नाचते हैं, शोर मचाते हैं, जिस पर युद्ध होते हैं और आक्रन्दन सुनाई देते हैं, जिस पर युद्ध को भड़काने वाले नगाड़े बजाए जाते हैं, वहाँ पर, वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर भगा दें। मुझे यहाँ पर शत्रुरहित कर दें।

टिप्पणी –प्रणुदताम् – प्र+नुद्– धकेलना लोट् प्र०पु०। कृणोतु →√ कृ–'बनाना' लोट्।

संहिता–पाठ

42. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

अनुवाद –जिस भूमि में खाद्यपदार्थ पैदा होते हैं। धान और जौ की खेतियाँ उपजती हैं। जिस भूमि की पाँच मनुष्य जातियाँ उत्तम खेती के समान हैं। ऐसी पर्जन्य की पत्नी और मेघा से सम्पन्न पृथिवी के लिए हम नमस्कार करते हैं। क्योंकि वह सब कुछ प्रदान करने से नमस्कार के योग्य है।

टिप्पणी –पंचकृष्टयः कृषकाः, पंचमानवाः देव, नर, गन्धर्व–अप्सरा, सर्प, पितरः।

संहिता–पाठ

43. यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या–विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशाँ रण्याँ नः कृणोतु।।

अनुवाद –जिस पृथिवी के ऊपर रक्षा करने के लिए देवताओं ने सारी सुविधाओं से युक्त किले बना रखे हैं। जिस भूमि को हथियाने के लिए इस भूमि पर लोग विवाद करते रहते हैं। प्रजापालक विष्णु उस समस्त रत्नों की खान पृथिवी को समस्त दिशाओं में हमारी प्रसन्नता और निवास के लिए रमणीय बना दें ताकि स्तोता को किसी प्रकार का कष्ट न हों।

टिप्पणी –विकुर्वते – वि+ √ कृ (तनादि)।

संहिता–पाठ

44. निधि बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।

अनुवाद –अनेक प्रकार से, अनेक गुहादि स्थानों में धन को धारण करने वाली पृथिवी, मुझे धन, मणि और सोना प्रदान करें। धनदात्री भूमि धन को दान करने का स्वभाव बनाकर, अच्छे मन से मुझे देने के लिए, अनेक प्रकार के धनों को धारण करें। ताकि दान देते समय किसी प्रकार की न्यूवता उसकी न आने पाए।

टिप्पणी –वसुदा→ वसु+√दा+क्विप् वसु ददातीति। रासमाना →√ रास्+शानच्+टाप्। सुमनस्यमाना सुमनस्य+शानच्+टाप्।

संहिता–पाठ

45. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहाँ ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

अनुवाद –अपने–अपने घरों के अनुरूप विविध वाणियों को यह पृथिवी धारण करती है। नानाधर्मों को मानने वाले मनुष्यों को भी यह धारण करती है। किसी के साथ इसका द्वेष या प्रेम नहीं है। जैसे कोई गाय सूने पर, बिना किसी हाल हुज्झत से निश्चित् रूप से अनेक मासों तक, अनेक प्रकार से दूध की धाराओं को देती है। वैसे ही यह भूमि भी मुझे अनेकविध द्रव्यों का दोहन करें।

टिप्पणी –अनपस्फुरन्ती →√ स्फुर+शतृ।

संहिता–पाठ

46. यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टंदश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।

क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवी यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपसृपद यच्छिवं तेन नो मृड।।

अनुवाद –हे भूमि! जो तेज दंश मारने वाले जीव हैं। जिनको हेमन्त ऋतु की ठंड ने निचेष्ट कर रखा है। वैसे वे घुमन्तु जीव जो इस हेमन्त के कारण गुफा आदि में जाकर आश्रय लिए हुए हैं, वे वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाले कीट पतंगादि के साथ मिलकर, हमारे घरों के समीप न आए। जो कल्याणकारी जीव हैं, वे ही हमारे को प्राप्त हों। उनको प्राप्त करवा कर, हमें सुखी बना दो।

टिप्पणी –हेमन्तजब्ध – हेमन्त+√ जम्भ (चबाना) + क्त (तस्थानेधः) भृमल √ भ्रम्+कलच् जिन्वत, →√ जिन्व् (त्वरावान बनाना)+शतृ।

संहिता–पाठ

47. ये ते पन्थनो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसष्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करंयच्छिवं तेन नो मृड।।

अनुवाद –हे भूमि! बहुत से रास्ते तेरे पर ऐसे है, जिन पर केवल तेरे में उत्पन्न आदमी ही चलते हैं। कुछ ऐसे भी राजमार्ग हैं जिन पर रथ आदि यानों का आना–जाना हो सकता है। जिन रास्तों पर पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों चल सकते हों, निवास कर सकते हों, जो शत्रुओं से रहित हों, जहाँ दस्युओं का अभाव हों, ऐसे रास्तों को हम प्राप्त करें। उन को प्राप्त करके जो वहाँ मंगलकारी हो, उसे देकर, हमें पृथिवी माँ, सुखी करो।

टिप्पणी –यातवे या (जाना) तवे (तुमुनार्थक) जयेम जि विधि लिंग, उ० पु०, व० व०। मृड मृद् (मृदु होना) लोट्।

संहिता–पाठ

48. मल्वं बिभ्रति गुरुभृद् भद्रपापस्य निधन तितिक्षुः।

वराहेण पृथिवी सऽविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।।

अनुवाद –जो पृथिवी समस्त मलों को या मलिन बुद्धि वाले जनों को तथा भार से युक्त पर्वत आदि वस्तुओं को धारण करती है। वराह के साथ अपने ज्ञान को बतलाती हुई, सकूर के लिए अपना समर्पण कर देती है।

आदि कल्प में जव हिरण्याक्ष दैत्य ने पृथिवी को जल में मग्न कर दिया था जब विष्णु ने वराह रूप धारण करके उस की उद्धार किया। उस समय जल मग्न भूमि वराह को अपना समस्त रूप बतला कर अपने को सूकर के हवाले कर देती है।

टिप्पणी –मल्+व (द्वि० ए० व०)। गुरुभृतृ गुरुविभर्तीति। गुरु+√ भृ+क्विप् तुकागम। विजिहीते–वि+√हा (जाना) लट् प्र०पु०।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  प्र॰1. पृथ्वी को सुरक्षित रखने के लिए प्राणीमात्र को क्या सन्देश दिया गया है?

  प्र॰2. पृथ्वी के नीचे क्या समाहित है?

  प्र॰3. पृथ्वी का पति किसे कहा गया है?

  प्र॰4. पृथ्वी हमें कैसा व्यवहार सिखाती है?

18.4 सारांष

पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी (धरती) माता के महत्त्व का वर्णन किया गया है कि किस प्रकार पृथ्वी हमारे लिए उपयोगी है। इस सूक्त में मन्त्रों के द्वारा पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि उठते–बैठते, चलते–फिरते हमें कोई कष्ट न हो। भूमि के संरक्षण, संवर्धन तथा संपोषण के प्रति चिन्ता एवं संवेदना प्रकट करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी को अनेक प्रयोजनों से जब भी हम बीज बोने के लिए खनिज पदार्थों को निकालने के लिए, तालाब, सरोवर तथा कुआँ आदि बनाने के लिए खोदें तो वह शीघ्र ही हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करें। इसी के साथ मनुष्य को संदेश भी दिया गया है कि वह पृथ्वी का खनन अनावश्यक रूप से न करे। भूमि के प्रति ऋषियों की संवेदना तथा भावुकता अत्यन्त प्रशंसनीय है। भूमि हमें धन तथा ऐश्वर्य प्रदान करे। वर्षा से स्नेह रखने वाले बादल की पत्नी भूमि को नमन किया गया है। इस पृथ्वी पर असंख्य मनुष्य रहते हैं जो भिन्न–भिन्न भाषा–भाषी, वेशधारी तथा धर्मावलंबी हैं परन्तु यह भूमि उनमें किसी प्रकार का भेदभाव न करके सबको समानता का व्यवहार सिखाती है। पृथ्वी के अन्दर विद्यमान अनेक बहुमूल्य खजानों की तरफ संकेत करके कहा गया है कि पृथ्वी हमें धन, रत्न, स्वर्णदान करने वाली हो। भूमि हमारे लिए धन की हजारों धाराएं गाय के समान दोहन करे अर्थात् जिस प्रकार गाय से दूध का दोहन किया जाता है। पृथ्वी पर रहने वाले अनेक जहरीले जीव– साँप, बिच्छू, कीड़े, मकौड़े हमारे से दूर रहें परन्तु जो जीव हमारे लिए कल्याणकारी हैं वे हमसे दूर न रहें। यह पृथ्वी जिसमें सबको धारण करने की अद्भुत्

क्षमता है। वह बादलों का साथ प्राप्त करके हमारे लिए अनेक वनस्पतियों, ओषधियों, कृषियों इत्यादि को उत्पन्न करे। अतः वैदिक ऋषि ने भूमि देवी की महानता का वर्णन किया है।

18.5 कठिन शब्दावली

यावत् –जब तक

समाम् –वर्षों तक समय बितना

प्रतिशीवरि –आश्रय देने वाली

मर्म –कोमल

दुहाताम् –दोहन करना

विजमाना –कम्पाती है

वृत्रम् –मेघ

आनृचुः –स्तुति करना

दुन्दुभिः –युद्ध के समय बजाने वाला नगाड़ा

रासमाना –दानशील

मृड –मृदु होना

मेदिना –भूमि

प्रतीचीं –पश्चिम

क्षिप्रम् –शीघ्रम्

बिखनाभि –खोदना

विहिता –निश्चित रूप से हितकारी

विमृग्वरी –पवित्र

गाः –वेदरूपी मन्त्रों से

असपत्नम् –शत्रुरहित

बीहियवौ –ध्यान और जौ

द्रविणस्य –धन के

अतस्करम् –चोरों से रहित।

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

उ॰1. अनावश्यक न करने का

उ॰2. बहुमूल्य सम्पदाएं

उ॰3. पर्जन्य को

उ॰4. समानता का

18.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. डॉ. गोकुल चन्द्र शर्मा, आँगिरस (पृथ्वी सूक्त) आँगिरस समिति ठियोग, शिमला।
2. जिया लाल कम्बोज, अथर्ववेद (तृतीय खण्ड), शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली।
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

18.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पृथ्वी सूक्त के अनुसार पृथ्वी के स्वरूप का वर्णन करें।
2. पृथ्वी सूक्त के अनुसार पृथ्वी की विभिन्न बहुमूल्य सम्पदाओं का वर्णन करें।
3. निम्नलिखित शब्दों की व्याकरणिक टिप्पणी करें।

   1. विहिताः, 2. दुहाताम्, 3. कृष्टयः, 4. देवकृताः, 5. वसुदा, 6. तितिक्षुः।

4. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या .... निपप्तं भुवने शिश्रियाणः।। इस मन्त्र की व्याख्या करें।
5. पृथ्वी सूक्त के अनुसार अग्नि का अग्नि स्वरूप का वर्णन करें।

इकाई – 19

पृथ्वी सूक्त (मन्त्र 49–63)

संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 49–63 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

19.4 सारांष

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

19.7 अनुषंसित ग्रन्थ

19.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पृथ्वी सूक्त के 49 से 63मन्त्रों की व्याख्या की गई है। पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि वे सभी तत्त्व जो हमारा अहित कर सकते हैं। जैसे– हिंसक पशु, पिशाच, राक्षस तथा चोर। ये सभी हमारे से दूर रहें। भूमि शब्द भू धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है– सबको आश्रय प्रदान करने वाली। जिस कारण इसे 'जगतो निवेशिनी' कहा है। यह हमें सुखद, कल्याणकारी तथा रमणीय आश्रय प्रदान करती है। वैदिक ऋषि से इस भूमि के विषय में कहा है कि इस भूमि देवी का गुणगान स्वयं देवता भी किया करते हैं। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है उसका यशगान हम प्राणी मात्र करते रहे। इस पृथ्वी के संसाधनों का दोहन ज़्यादा न करके इसका संरक्षण करें।

19.2 उद्देष्य

1. पृथ्वी सूक्त के अनुसार पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्रकार के जो हमारे प्रति अहित कर सकते हैं उनसे दूर रखने के लिए भू देवी से प्रार्थना की गई है।
2. पृथ्वी का अनावश्यक दोहन न करके हमें इसके संरक्षण, संवर्धन को बढ़ावा देना चाहिए।
3. पृथ्वी पर जब वर्षा होती है तो यह विभिन्न प्रकार के धन–धान्यों से सम्पन्न होने पर हमें आश्रय प्रदान करती है।
4. पृथ्वी पर मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ है जो मातृभूमि को शत्रुओं से मुक्त करके विश्वविजयी बनाने में सहायक है।

5. पृथ्वी सूक्त के अनुसार इस बात का स्पष्ट संदेश मिलता है कि हमारे सभी कार्य इस मातृभूमि को समर्पित हों। हमारा तेज और बल राष्ट्र हित के लिए हो।
6. पृथ्वी सभी प्रकार के भोग्य पदार्थों से सम्पन्न होकर हमारी रक्षा करें। इसकी उर्वराशक्ति बढ़ती रहे जिस कारण मनुष्य धन–धान्य सम्पन्न हों।

19.3 पृथ्वी सूक्त मन्त्र संख्या 49–63 (मूल, अन्वय, व्याख्या)

संहिता–पाठ

49. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिहाः व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवी दुच्छुनामित ऋक्षीकाँ रक्षो अप बाधयास्मत्।।

अनुवाद –तेरे पर विचरण करने वाले जंगली जानवर, जिनमें हरिण आदि शाकाहारी वन के लिए हितकारी होते हैं तथा सिंह व्याघ्र आदि जो मनुष्य भक्षी जानवर हैं, वे हानिकारक होते हैं। उनके सहित छोटे उल्लू जिन्हें पहाड़ी भाषा में हुलक कहते हैं और जो प्रातः होने से पूर्व तथा सायंकाल बोलती हैं, उसके साथ, भेड़िया और भालण सहित राक्षस भूत पिशाचों को, इस हमारे निवास स्थान से तथा हमसे दूर कर दो। ताकि हम निर्बाधित होकर सुख से रह सकें।

टिप्पणी –उलम् (जंगली पशु)। द्वितीया ए० व०।

संहिता–पाठ

50. ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय।।

अनुवाद –जो प्रसिद्ध गन्धर्व जाति के लोग है, कामना प्रेरक स्वर्ग की वैश्यारुपिणी अप्सराएं है, जो शत्रुता रखने वाले है, जो अहंकारी या नास्तिक हैं, उनके साथ पिशाचों और राक्षसों को हे भूमि! तुम हमसे दूर ले जाओ। ताकि वे हमारे कर्म के बाधा न डाल सकें।

टिप्पणी –किमीदिनः – किम्+इदानीम्+इनि। सर्वा–सर्वाणि (छान्दस् रूप) यावय → यवस (छान्दस् दीर्घ)।

संहिता–पाठ

51. यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकु ना वयाँसि
यस्याँ वातो मातरिष्वेयते रजाँसि कृण्वंष्च्यावयंष्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वार्त्याचः।।

अनुवाद –जिस भूमि के प्रति, दो पाँव वाले समस्त पक्षी, हँस, गरुड़ और गीद्ध उड़ते हैं, जिस पर अन्तरिक्षसँचारी वायु, धूड़ उड़ाता और बड़े–बड़े वृक्षों को तूफान से गिरा देता है, जहाँ पर हवा के साथ अग्नि की लपटे इधर–उधर चलती है। ऐसी यह पृथिवी माता है।

टिप्पणी –शकुनाः– शकुन (पक्षी विशेष) व० व०।

संहिता–पाठ

52. यस्याँ कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृत्ता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिऽधामनि।।

अनुवाद –जिस व्यापक पृथिवी पर काले और रक्त वर्ण से युक्त रात–दिन मिल कर व्यवहित रूप से स्वयं आते–जाते हैं और लोगों को भी नियमित करते हैं। जो भूमि वर्षण के जल से घिरी हुई होकर, चारों तरफ से वस्त्र की तरह ढकी हैं वह हमारे लिए कल्याणी बुद्धि धारण कर, प्यारे पुत्र–पौत्रादि से सम्पन्न, अपने–अपने घरों में स्थापित कर के धारण करे।

टिप्पणी –

संहिता–पाठ

53. द्यौष्च मे इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।

अग्निः सूर्य आपो मेधाँ विष्वे देवाष्च सं ददुः।।

अनुवाद –द्युलोक, पृथिवी लोक एवं अन्तरिक्ष लोक ने हमें, विस्तृत स्थान प्रदान कर रखा है, प्रकाशवान अग्नि सूर्य जल और इन के अतिरिक्त समस्त इन्द्रादि देवताओं ने हमें सुमेधा प्रदान कर रखी है। हे पृथिवी! हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

टिप्पणी –व्यचः विस्तृत स्थल। ददुः दा √ (लिट्)।

संहिता–पाठ

54. अहमस्मि सहमान उत्तरी नाम भूम्याम्।

अभीषाडस्मि विष्वाषाडाषामाशाँ विषासहिः।।

अनुवाद –मैं पृथिवी का विजेता हूँ, पृथिवी पर उत्पन्न समस्त जीवों में श्रेष्ठतम हूँ, शत्रुओं को दुःखी करके मारने वाला हूँ, प्रजाओं को अपने वश में रखने वाला हूँ, समस्त दिशाओं को जीतने वाला हूँ। हे पृथिवी! ऐसा तेरा श्रेष्ठ पुत्र हूँ।

टिप्पणी –सहमानः √ सह्+शानच् ग्रिफिथ (विजेता) अभीषाट् अभि+√ सह्+क्विप्। सहनशील। विश्वषाट्–विश्व+ √ सह्+क्विप्।

संहिता–पाठ

55. अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्

आ त्वा सुभूतमविषत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिषष्चतस्रः।।

अनुवाद –हे प्रकाशयुक्त भूमि! जब सृष्टि के आरम्भ में तू वहाँ पर आगे को विस्तृत होने लगी, तब देवों ने तुम्हें पृथिवी नाम से पुकारना आरम्भ किया। उसी समय तुझमें महिमा और लोक कल्याण करने की भावना भी आ गई। तभी तूने चारों प्रदिशाओं का निर्माण भी किया।

टिप्पणी –प्रथमाना →√ प्रथ्+शानच्+टाप्। अविशत् →√ विश् (प्रवेश करना) लङ्.। अकल्पयथा →√ क्लृप् आत्मनेपद लङ्.।

संहिता–पाठ

56. ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।।

अनुवाद –हे पृथिवी! तुझ पर बसे हुए जितने भी ग्राम हैं, वन हैं, सभाएं हैं, लड़ने की भूमि, न्यायालय आदि हैं, समितियाँ जो जिला या राज्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन सब स्थानों में तेरे विषय में सत्य और अच्छा ही बोलें। कहीं पर भी झूठ और दुर्भाषण का प्रयोग न होने दें।

टिप्पणी –समितय → सम+ √ इण्+क्तिन्। सायण (समितिः प्राप्ति) 10.191.3 ऋ. ग्रिफिथ → सभा। वदेम →√ वद् विधि उ०पु०।

संहिता–पाठ

57. अष्व इव रजो दुधुवे वितान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।

मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनाँ गृभिरोषधीनाम्।।

अनुवाद –जैसे दौड़ता हुआ घोड़ा पृथिवी पर धूल को चारों ओर फैला देता है, वैसे ही इस पृथिवी से पैदा हुए जीवों को देवों ने सर्वत्र बसा दिया। क्योंकि यह भूमि एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक, बड़ी रमणीक, नेता, सारे भुवनों की पालक है और वृक्ष तथा ओषधियों को धारण करती है। जहाँ पृथिवी जीवों को जन्म देने वाली हैं, वहाँ जीवित जीवों को पर्यावरण और औषधियों से पालन करने वाली भी है।

टिप्पणी –मन्द्रा →√ मदि+रक्+टाप्। प्रिय अग्रेत्वरी → अग्र+√इण्+क्वरप्+ङीप् गृभिः→ गृह्+कि, ह् को भ्।

संहिता–पाठ

58. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।

त्विषीमानास्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः।।

अनुवाद –मैं भूमि की श्रेष्ठतम सन्तान हूँ। अतः मेरी श्रेष्ठता का कारण है, जो कुछ मैं बोलता हूँ, वह सत्य ही बोलता हूँ, मिथ्या नहीं। जो कुछ मैं देखता हूँ, वह मेरा ही बन जाता है। क्योंकि मैं तेजवाला और वेगवाला हूँ। जो कोई मेरा वध करना चाहता है, मैं उसे मार देता हूँ। क्योंकि श्रेष्ठ के आगे अश्रेष्ठ नहीं टिक सकता।

टिप्पणी –मधुमन् → मधु+मतुप् वनन्ति →√ वन् (जीतना) लट व०व०। जूतिमान् → जू+क्तिन् ज्ति+मतुप्। त्विषिमान् → त्विषि+मतुप्। दोधतः→√ दुह (वध करना)+शतृ।

संहिता–पाठ

59. शान्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।

भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह।।

अनुवाद –शान्त, सुगन्धित, सुखकारी, अमृतोघ्नी, जलवाली भूमि, बलपूर्वक मेरे विषय में, सबसे बात करे। ताकि माता से प्रशंसित में, खूब फूलूं फलूं।

टिप्पणी –कीलालोघ्नी → कीलाल+उधस्+ङीप् मधूर पेय। ब्रवीतु→√ ब्रु लोट्।

संहित पाठ

60. यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।

भुजिष्यं? पात्रं निहितं गुहा यदविर्भोगै अभवन्मातृमदभ्यः।।

अनुवाद –जब भूमि जलमय समुद्र में समाई हुई थी। सृष्टि का निर्माता विश्वकर्मा, जल में जल का हवन कर के पृथिवी का अनुगमन कर रहा था। उस समय माता के गर्भ से पैदा हुए समस्त प्राणियों के उपभोगार्थ, तुम प्रकट हो गई किन्तु उस समय खाने योग्य समग्र पात्र पदार्थ, तेरे अन्तर्गर्भ रूपी गुफा में छिपे हुए थे। अतः हे पृथिवी! तुम ही जीव और जीवान्न सभी की माता हो।

टिप्पणी –अर्णस्+व०। स०ए०व०। रजसि → रजस् (स०) लोकवाची।

संहिता–पाठ

61. त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना।

यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमाना ऋतस्य।।

अनुवाद –अदिति देवी, तू कामनाओं का दोहन करने वाली है। जब तू वृद्धि को प्राप्त होती है, तब पृथिवी रूप धारण करके समस्त संसार के जीवों के बीजों को धारण करने वाली बन जाती है। जो तेरे में कुछ कमियां रह जाती हैं उन्हें सत्य तत्त्व के आधार से पैदा हुए, प्रमज ऋषि पूरा कर देते हैं।

टिप्पणी –आवपनी आ+√वप्+ल्युट्+ङीप् भूमि। पूरयति (लट्)।

संहिता–पाठ

62. उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिह्वतः स्याम।।

अनुवाद –हे भूमिमात! तेरी गोदें हमारे लिए रोगरहित यक्ष्माशून्य उत्पन्न हों। हमारी आयु भी लम्बी हो और हम अपने जीवनकाल में हमेशा जागृत रहें तथा तुम्हें बलि का आहरण करते रहें या तेरे ऊपर न्यौछावर होते रहें।

मातृ भूमि समस्त जीवों के शरीरानुकूल वातावरण वाली या औषधियों वाली हुआ करती है। जहाँ विदेशीपन अपना लिया जाता है, वहीं रोग व्यापते हैं और जीवों की आयु भी कम हो जाती है। अतः हमें स्वदेशीपन ही स्वीकार करना चाहिए।

टिप्पणी –उपस्था–उग+√ स्था+कः।

संहिता–पाठ

63. भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियाँ मा धेहि भूत्याम्।।

अनुवाद –हे भूमि माता! तुम कृपा करके मुझे सुरक्षित स्थान में रखो। हे क्रान्तदर्शी भूमि! तुम अपने पति आकाश के साथ सामंजस्य स्थापित करके मुझे हमेशा लक्ष्मी और ऐश्वर्य के मध्य स्थापित करो।

पृथिवी से प्रार्थना की गई है कि तुम अपने पति रूप आकाश से समय–समय पर वर्षा आदि की और ऋतु अनुकुल पर्यावरण स्थापित करने की प्रार्थना करो। ताकि भूमि पर मुझे अपार धन मिल सके।

टिप्पणी –धेहि →√ धा (रखना) लोट्, म० पु०। संविदाना→सम्+√विद्+शानच्+टाप् कवे (लिंग व्यत्यय)।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

  प्र॰1. पृथ्वी सूक्त के अनुसार क्या शिक्षा मिलती है?

  प्र॰2. पृथ्वी की महिमा का गुणगान किसने किया है?

  प्र॰3. पृथ्वी अपनी उत्पत्ति से पूर्व कहां विद्यमान थी?

  प्र॰4. पृथ्वी के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं?

19.4 सारांष

पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी अथवा भूमि के वैशिष्ट्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। ऋषि अथवा कहते हैं कि यह पृथ्वी अनेक प्रकार के हिंसक पशुओं, हितकारी मृगादि, पिशाचों, राक्षसों तथा बुरी प्रवृत्ति के मनुष्यों इन सबको धारण करती हैं। अतः इन सबको हमसे दूर रखे। पृथ्वी की महिमा का गुणगान करते हुए कहा गया है कि सब प्रकार के जीवों को आश्रय प्रदान करने वाली भूमि वर्षा के द्वारा सम्पन्न होकर हमारे लिए धन–धान्य प्रदान करती है। पृथ्वी सूक्त में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि मनुष्य इस पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है जो शत्रुओं से लड़कर इस पृथ्वी को सुरक्षित रखने में सहायक है। मनुष्य को मातृभूमि का सच्चा वीर कहा है। देवताओं ने भी इस भूमि देवी का गुणगान किया है। मातृभूमि के प्रति अपना स्नेह, आभार, सम्मान आदि प्रकट करते हुए कहा है कि हम सब प्राणी पृथ्वी के गुणों प्रशंसा, यशगान करते रहें क्योंकि यह पृथ्वी हर प्रकार से सब प्राणियों का पालन–पोषण करती है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इसका संवर्धन, रक्षण, संपोषण करते रहें। यदि कोई भी प्राणी पृथ्वी को हानि पहुंचता है तो यह पृथ्वी उसे उसी प्रकार दूर कर देती है जिस प्रकार घोड़ा हिलकर धूल को स्वयं झाड़ देता है। अर्थात् प्रकृति को हानि पहुंचाना स्वयं को हानि पहुंचाना है।

पृथ्वी सब प्रकार के भोग्य पदार्थों को देने वाली है। यह अपनी उत्पत्ति से पूर्व समुद्र के जल के भीतर विद्यमान थी जिसे विश्वकर्मा ऋषि ने अनेक द्रव्य आहुतियों के द्वारा बाहर निकाला। पृथ्वी पर अनेक

प्रकार की सम्पदाएं थीं जिनको मनुष्य ने खोजा और उपभोग किया। पृथ्वी की उर्वराशक्ति का वर्णन किया गया है क्योंकि उर्वराशक्ति के कारण ही मनुष्य धन–धान्य सम्पन्न होता है। पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि जितने भी प्राणी है वे रोगरहित हों। पृथ्वी सब प्राणियों का भरण–पोषण करती रहे। हम सब प्राणी यहां प्रेमपूर्वक, सोहार्दपूर्वक रहें। द्वेष, ईर्ष्या, कलह, वैमनस्य, दुराभाव से दूर रहकर परिवार, समाज व राष्ट्र प्रगति पथ पर आगे बढ़ें।

वैदिक ऋषि (अथर्वा) सन्तुलित जीवन में विश्वास रखते हैं। इस संसार में सुख, समृद्धि तथा सद्बुद्धि– इन सबके होने पर ही जीवन सार्थक होता है। भूमि के लिए हम भेंट रूप में यज्ञ में आहुति द्रव्यादि समर्पित करते रहें और पृथ्वी माता हमें कल्याण वाली बुद्धि, यश, सौभाग्य और सम्पत्ति प्रदान करती रहे। इस प्रकार भूमि माता मैं भूमि का पुत्र हूँ–**माताभूमिः पूत्रो अहं पृथिव्याः।** अर्थात् मैं भूमि (माता) के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहूँ।

19.5 कठिन शब्दावली

पुरुषादः –नरभक्षी

उलम् –जंगली पशु

पिषचान् –प्रेतादि वायु रूपी शरीरधारी

मातरिष्वा –अन्तरिक्षचारी

मेधाम् –बुद्धि

अविषत –प्रवेश करना

गृभिः –धारण करती है

त्विषिमान् –तेजवान्

अर्णवे –समुद्र में

आवपनीं –पृथ्वी रूप

संविदाना –सामांजस्य स्थापित करना

पशबः –चार पैरों वाले

वृकम् –भेड़ियादि हिंसक पशु

ईयते –चलता है

अरुणम् –रक्तवर्ण

सहमाना –विजेता

पुरस्तात् –पूर्व में

जूतिमान् –वेगमान्

पयसा –बलपूर्वक, ओजपूर्ण

गुहा –गुफा में

अनमीवा –रोगरहित

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

  उ.1. मातृभूमि के प्रति प्रेम

  उ.2. देवताओं ने

  उ.3. समुद्र के नीचे

  उ.4. संवर्धन, संरक्षण एवं संपोषण

19.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. डॉ. गोकुल चन्द्र शर्मा, आँगिरस (पृथ्वी सूक्त) आँगिरस समिति ठियोग, शिमला।
2. जिया लाल कम्बोज, अथर्ववेद (तृतीय खण्ड), शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली।
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

19.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पृथ्वी सूक्त के अनुसार पृथ्वी की वैदिक अवधारणा स्पष्ट करें।
2. पृथ्वी सूक्त के अनुसार पृथ्वी की राष्ट्रिय अवधारणा स्पष्ट करें।
3. पृथ्वी सूक्त के महात्म्य को वर्णित करें।
4. पृथ्वी के स्वरूप का वर्णन करें।

इकाई – 20

स्वर प्रक्रिया एवं पद पाठ

संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 वेदों की स्वर प्रक्रिया

- स्वयं आंकलन प्रष्न

20.4 संहिता पाठ और पद पाठ परिचय

- स्वयं आंकलन प्रष्न

20.5 सारांष

20.6 कठिन शब्दावली

20.7 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

20.8 अनुषंसित ग्रन्थ

20.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में वेद की स्वर प्रक्रिया एवं संहिता पाठ से पद पाठ करने के नियमों का वर्णन किया गया है। वेद के अर्थ को समझने के लिए स्वर का ज्ञान अनिवार्य है। स्वर तीन हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनके उच्चारण के सम्बन्ध में पाणिनी ने बताया है– उच्चैरुदातः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः। वैदिक मन्त्रों के दो प्रकार के मुख्य पाठ उपलब्ध होते हैं– संहिता–पाठ और पद पाठ। संहिता पाठ को अधिक पवित्र व प्रमाणिक माना जाता है। संहिता पाठ के बाद ही पद पाठ किया जाता है।

20.2 उद्देष्य

1. श्रुति परम्परा से गुरु वेदों का ज्ञान शिष्यों को दिया करते थे।
2. वेद मन्त्रों के रूप को सुरक्षित रखने के लिए ऋषियों ने विभिन्न पाठों का प्रचलन किया।
3. संहिता पाठ को पद पाठ में परिणित किया जाता है।
4. वेदों के अर्थ को समझने के लिए वर्ण, स्वर, मात्रा, बल– इन सबका ज्ञान अनिवार्य है। मुख्य रूप से तीन स्वर हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

20.3 वेदों की स्वर प्रक्रिया

वेदों की भाषा को संगीतात्मक कहा जाता है। वेद मन्त्रों का पाठ विशेष स्वरों द्वारा तथा विशेष अक्षरों पर बल देकर किया जाता है। किसी शब्द के किसी अक्षर को स्वर में पढ़ा जाता है, इससे उस शब्द

के अर्थ का निर्णय होता है। यदि किसी शब्द के अक्षर के स्वर को बदल दिया जावे, तो उस शब्द का अर्थ परिवर्तित हो जावेगा। उदाहरण के लिए 'इन्द्रशत्रुः' शब्द है। इसमें दो पद हैं। इन्द्र और शत्रु यदि आदि पद को समझा जावे तो इसका विग्रह बहुव्रीहि समास में 'इन्द्रः शत्रु यस्य स' होगा। अर्थात् 'इन्द्र उसको मारने वाला' होगा। यदि अन्तिम पद को उदात्त माना जावे तो इसका विग्रह तत्पुरुष समास में 'इन्द्रस्य शत्रु' होगा। अर्थात् इन्द्र को मारने वाला होगा इस प्रकार के स्वर के परिवर्तन से अर्थ विपरीत हो जाता है।

वैदिक भाषा में स्वरगत यह विशेषता प्राचीन ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में भी रही थी। जर्मन आदि भाषाओं में अब भी यह विशेषता मिलती है। ग्रीक शब्द 'Lithoblos'में यदि अन्तिम स्वर पर बल दिया जावे तो इसका अर्थ 'पत्थर फैंकने वाला' होगा तथा आदि के स्वर पर बल दिया जाने पर 'पत्थरों से आहत' अर्थ होगा। जर्मन भाषा के 'Urirg-hen'शब्द में अन्तिम स्वर पर स्वराघात होने पर इसका अर्थ 'उपेक्षा करना' होगा एवं पहले स्वर पर स्वराघात होने पर इसका अर्थ 'पार करना या ऊपर से जाना' होगा। अंग्रेजी भाषा के 'Conduct'शब्द को लें। यह संज्ञावाची और क्रियावाची दोनों हैं। यदि 'Con'पर बल देंगे तो यह संज्ञावाची होगा एवं 'Duct'पर बल देने पर क्रियावाची शब्द होगा। स्वर की यह प्रक्रिया प्रायः सभी भाषाओं में कुछ न कुछ अवश्य मिलती है।

वेदों के अर्थों को समझने के लिए स्वरों का ज्ञान अनिवार्य है। इसलिए 'तैत्तिरीय उपनिषद्' के दूसरे अनुवाक में लिखा है– ''वर्णः स्वरः मात्रा बलम् इत्येतज्जिज्ञासितकम्''। अर्थात् वेदों के अर्थों को समझने के लिए वर्ण, स्वर, मात्रा बल इन सबको जानना चाहिए पाणिनि ने अपनी 'पाणिनीय शिक्षा' में एवं 'अष्टाध्यायी' में स्वरों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना की है तथा स्वरों से सम्बन्धित नियमों को बताया है।

स्वर तीन होते हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनके उच्चारण के सम्बन्ध में पाणिनि ने बताया है– उच्चैरुदात्तः, नीचैनुदात्तः, समाहारः स्वरितः। अर्थात् जिस स्वर पर बल देकर ऊँचा उच्चारण किया जाता है, वह उदात्त होता है। हल्के से उच्चारण किया जाने वाला स्वर अनुदात्त है और शेष स्वरित है। वेदों में प्रत्येक वर उदात्त, अनुदात्त या स्वरित निश्चित् होगा एवं यह उच्चारण उसके अर्थ का निश्चय करेगा। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं–

'मा' शब्द के दो अर्थ हैं– मुझको और निषेध करना। 'मा' यदि अनुदात्त है तो इसका अर्थ सर्वनाम वाची 'मुझको' होगा। यदि उदात्त है तो इसका अर्थ निषेधात्मक होगा।

'यक्षं गतः देवदत्तः' वाक्य में 'क्षय' शब्द के दो अर्थ हैं– घर और मृत। यदि क्षय शब्द को आद्युदात्त मानें तो इसका अर्थ घर होगा तथा अन्तोदात्त मानने पर मृत होगा।

'अर्थ' शब्द के स्वामी और वैश्य दो अर्थ है। इसको आद्युदात्त मानने पर वैश्य तथा अन्तोदात्त मानने पर स्वामी अर्थ होगा। 'सुपुरुष' को अन्तोदात्त मानने पर इसका दुष्ट पुरुष एवं आद्युदात्त मानने पर सज्जन होगा।

स्वरों के सामान्य नियम–

व्याकरण ग्रन्थों में स्वरों के सम्बन्ध में विस्तृत नियम दिए गए हैं। कुछ विशेष नियम इस प्रकार हैं–

(1) वैदिक भाषा में एक पद में प्रायः एक ही पद उदात्त होता है और शेष अनुदात्त होते हैं। प्रतिपादकों और धातुओं का प्रायः अन्तिम पद उदात्त होता है।

(2) निपातों, आदि को छोड़कर अन्य उपसर्गों और प्रत्ययों का आदि स्वर उदात्त होता है।

(3) लुङ्., लङ्. और लृङ्. लकारों में धातु से पहले आने वाले 'अ' और 'आ' उदात्त होते हैं।

(4) चित् (जिसमें च् को लोप हुआ हो), तित् तद्धित (वे तद्धित प्रत्यय) जिनमें त् का लोप हुआ हो, समस्त पद, दो अन्तोदात्त होते हैं।

(5) देवता वाचक शब्दों में एक स्वर उदात्त होता है। पर द्वन्द्व समास होने पर यथा 'मित्रावरुणा' में दो उदात्त होते हैं। द्वन्द्व समास को छोड़कर देवता वाचक शब्दों के समास में एक पद में एक ही स्वर उदात्त या स्वरित होगा। शेष अनुदात्त होंगे।

(6) च आदि अव्ययों के सभी स्वर अनुदात्त होते हैं।

(7) सम्बोधन के पदों में प्रायः उदात्त नहीं होता। सर्वनाम शब्दों के वैकल्पिक रूपों में आदि में उदात्त नहीं होता।

(8) तित् (जिसके त् का लोप हुआ हो) स्वरित होता है।

(9) यदि क्रिया पद आदि में न हो तो उनके सभी स्वर अनुदात्त होते हैं।

(10) पुनः आवृत किए जाने पर दूसरा पद अनुदात्त होगा।

संधियाँ होने पर स्वर में स्थिति

(1) उदात्त और अनुदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होगा।

(2) अनुदात्त और उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होगा।

(3) स्वरित और उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होगा।

(4) उदात्त और अनुदात्त की सन्धि होने पर स्वरित होगा।

(5) उदात्त और स्वरित की संधि नहीं होती।

(6) अनुदात्त और अनुदात्त की सन्धि होने पर अनुदात्त होता है, परन्तु दीर्घ सन्धि होने पर स्वरित होता है।

(7) स्वरित और अनुदात्त की सन्धि से स्वरित होता है।

स्वरों में परिवर्तन के सामान्य नियम

(1) उदात्त से परवर्ती अनुदात्त को स्वरित होता है, किन्तु उस अनुदात्त के बाद कोई स्वरित या उदात्त नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर वह अनुदात्त ही रहता है।

(2) उदात्त से अव्यवहित पूर्व अनुदात्त ही रहता है।

(3) सामान्यतः एक पद में एक ही स्वर उदात्त रहता है।

स्वरांकन की विधि

स्वरांकन को भारतीय पद्धति से निम्न प्रकार से किया जाता है–

1) उदात्त – कोई चिह्न नहीं।

2) अनुदात्त – अक्षर के नीचे पड़ी रेखा (–)।

3) स्वरित – अखर के ऊपर खड़ी रेखा (।)।

कुछ विदेशी विद्वान् स्वरांकन इस प्रकार से करते हैं–

1) उदात्त – ऊपर (।) चिह्न।

2) अनुदात – कोई चिह्न नहीं।

3) स्वरित – नीचे (–) रेखा।

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

प्र॰1. वैदिक मंत्रों के मुख्य पाठ कौन–कौन से हैं?

प्र॰2. वेद मंत्रों को सुरक्षित रखने के लिए कौन सा पाठ अनिवार्य है?

20.4 संहिता पाठ और पद पाठ परिचय

संहिता–पाठ और पद पाठ

वैदिक मन्त्रों के दो प्रकार के मुख्य पाठ उपलब्ध होते हैं– संहिता–पाठ और पद पाठ साहित्य में वेदों को श्रुति भी कहा गया है। श्रुति परम्परा से गुरु वेदों का ज्ञान शिष्यों को दिया करते थे, अतः इनको श्रुति कहा गया था। वेद–मन्त्रों के रूप को सुरक्षित रखने के लिए ऋषियों ने विभिन्न पाठों का प्रचलन किया था।

संहिता–पाठ को अधिक पवित्र और प्रामाणिक समझा जाता है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार ऋषियों को वेदों का ज्ञान संहिताओं के रूप में हुआ था। वेदों का अध्ययन–अध्यापन भी संहिताओं के रूप में किया जाता है। यज्ञों में मन्त्रों का विनियाग संहिता के रूप में होता है, पदों के रूप में नहीं। इस कारण संहिता को अधिक पवित्र, प्रामाणिक और प्राचीन माना जाता है। शाकल्य को पद पाठ का प्रणेता समझा जाता है। इसने संहिता के पदों की सन्धि आदि को खोलकर पद पाठ का प्रचलन किया था। अनेक स्थानों पर पद पाठ में इति आदि शब्द जोड़े गए हैं, जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि पद पाठ का प्रवर्तन संहिता–पाठ के बाद हुआ था।

संहिता–पाठ को पद पाठ में परिणत करने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिए–

1) संहिता–पाठ में जो सन्धियाँ हों, उनको तोड़कर पदों को अलग–अलग करना चाहिए।

2) समासों के पदों को अलग–अलग नहीं किया जाता, परन्तु द्वन्द्व समास को छोड़कर समस्त पदों के बीच में पदों की पृथक्ता प्रदर्शित करने के लिए अवग्रह (ऽ) लगा दिया जाता है। समास में दो पदों से अधिक होने पर अन्तिम पद से पहले अवग्रह लगाया जाता है।

3) प्रगृह्यों के बाद, द्विवचन में ई, ऊ और ए के बाद उ निपात के बाद, ओकारान्त निपातों के बाद, सप्तमी विभक्ति के ई और ऊ के बाद, एकारान्त अस्मे, युष्मे आदि के बाद इति लगाया जाता है।

4) यदि संहिता–पाठ में पद के अन्त में विर्ग को 'र्' न हो सका हो तो पद पाठ में इसके बाद इति लगाकर विसर्ग को 'र्' कर देते हैं। यथा–अन्तरिति।

5) उपसर्गों के बाद आने वाले संज्ञा या कृदन्त पदों के पूर्व अवग्रह लगाया जाता है। यथा–अपऽधा। सुऽशिप्रः। प्रधान वाक्य में उपसर्गों को क्रिया से अलग रखा जाता है। गौण वाक्य में क्रिया से पहले अनेक उपसर्ग होने पर अन्तिम उपसर्ग के बाद ही अवग्रह लगता है।

6) प्रत्ययान्त पदों से सुप्, भ्याम्, भिस्, भ्यस्, क्वसु, त्व, तरप्, मत्, वत् आदि प्रत्यय हों और पूर्व प्रकृति में कोई विकृति न हुई हो, तो प्रत्यय से पहले अवग्रह लगाते हैं। यथा त्रिऽभिः। जहाँ उपसर्ग और प्रत्यय दोनों अवग्रह प्राप्त हों, वहाँ प्रत्यय से पहले ही अवग्रह लगाना चाहिए। यथा–आतस्थिऽवाँसो।

7) जो स्वर मूलतः ह्रस्व हों, परन्तु संहिता–पाठ में छनद के अनुरोध से जिनको दीर्घ कर दिया गया हो, उनको पद पाठ में ह्रस्व कर दिया जाता है।

8) संहिता–पाठ को पद पाठ में परिवर्तित करते समय स्वराघात में कुछ परिवर्तन हो सकते हैं। इति लगाने पर यदि संहिता–पाठ का स्वर उदात्त है तो वह उदात्त ही रहता है, परन्तु इसके बाद का स्वर स्वरित तथा पहला अनुदात्त होता है। यदि अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित हो तो वह अनुदात्त ही बना रहता है। पाद के आदि में न होने पर सम्बोधन का पद अनुदात्त हो जाता है।

9) यदि पहले पद के उदात्त होने के कारण अगले पाद का पहला स्वर स्वरित हो तो पद पाठ में वह अनुदात्त हो जाता है। पहले पद के स्वरित वर्ण के कारण यदि अगले अनुदात्त पर चिह्न न लगाया हो तो पद पाठ में उस पर चिह्न लगा देते हैं।

10) पहले पद में उदात्त के पश्चात् आले वाला अनुदात्त यदि अगले पद के उदात्त होने के कारण स्वरित न होकर अनुदात्त रह गया है, तो पद पाठ में वह स्वरित हो जाता है।

11) पदों के मूल स्वराघात में यदि संहिता–पाठ के कारण परिवर्तन हो गया हो तो उसको मूल रूप में रहने देते हैं।

ऋग्वेद के पाठों का रूप शुद्ध रखने के लिए पद पाठ के अतिरिक्त क्रम पाठ, जटा पाठ और धन पाठ भी प्रचलित हुए। इन पाठों का रूप निम्न प्रकार से है–

1. संहिता–पाठ–

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।।

2. पद पाठ–

अग्निम्, ईले, पुरःऽहितम्, यज्ञस्य, देवम्, ऋत्विजम्।

होतारम्, रत्नऽधातमम्।।

3. क्रम पाठ–

अग्निं ईले, ईले पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवम्, देवम् ऋत्विजम् इत्यादि।।

4. जटा पाठ–

अग्निं ईले, ईडे अग्निं, अग्निं ईले, ईले पुरोहितं, पुरोहितं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवं, देवं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवं, देवं ऋत्विजं, ऋत्विजं देवं, देवं ऋत्विजम्। इत्यादि।

5. घनपाठ–

अग्निं ईले, ईले अग्निं, अग्निं ईले, पुरोहितं, पुरोहितं, ईले अग्निं, अग्निं ईले पुरोहितम्, ईले पुरोहितं, पुरोहितं ईले, ईले, पुरोहितं यज्ञस्य, यज्ञस्य पुरोहितं ईले, ईले पुरोहितं यज्ञस्य, पुरोहितं यज्ञस्य, यज्ञस्य पुरोहितं, पुरोहितं यज्ञस्य देवं, देवं यज्ञस्य पुरोहितं, पुरोहितं यज्ञस्य देवं, यज्ञस्य देवं, देवं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवं ऋत्विजं, ऋत्विजं देवं यज्ञस्य, यज्ञस्य, यज्ञस्य देवं ऋत्विजम् इत्यादि।

पद पाठ

1) संहिता–पाठ से पद पाठ करते समय संहिता–पाठ में विद्यमान असमस्त पदों को सम्पूर्ण संन्धियों का विच्छेद कर पद को उसके प्रकृति रूप में रखना चाहिए। सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक पद के बाद विराम (1) का चिह्न लगा देना चाहिए; यथा–

को नो मह्य। अदितये पुनर्दात् (ऋ. 1.24.1)

काः। नः। मह्य। अदितये। पुनः दात्।

पदों अन्तिम अनुस्वार को पद पाठ में म् के रूप बदल लेना चाहिएः, यथा–

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं (ऋ. 2.22.11)

यः। शम्बरम्। पर्वतेषु। क्षियन्तम्।

संहिता–पाठ ही में प्राप्य छान्दस दीर्घ को पद पाठ में ह्रस्व कर देना चाहिए; यथा–

वेदा यो वीनां पदम्। (ऋ. 1.25.7)

वेद। यः। वीनाम्। पदम्।

अवग्रह सम्बन्धी नियम

संहिता–पाठ में कुछ पदों के मध्य पद पाठ करते समय अवग्रह (ऽ) का प्रयोग किया जाता है। अवग्रह लगाते समय अधोलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) समास के अंगभूत पदों के मध्य अवग्रह – चिन्ह लगाकर उन्हें प्रकृति रूप में दिखलाया जाता है, यथा–

हिरण्यरूपः। स। हिरण्यसंदृक् (2.35.10)

हिरणयऽरूपः। सः। हिरण्यऽसंदृक्।

(2) उपसर्गों के साथ किसी कृदन्तपद का समास होने पर दोनों के मध्य अवग्रह लगाया जाता है; यथा–

प्रवृक्तम् – प्रऽवृक्तम् (ऋ. 1.116.24)

(3) सर्वानुदात्त उपसर्ग के साथ उदात्तयुक्त क्रियापद का समास होने पर दोनों के मध्य अवग्रह लगाना चाहिए; यथा–

पर्यभूषत् परिऽअभूषत (ऋ. 2.12.1)

किन्तु यदि क्रियापद उदात्तयुक्त न हो और उपसर्ग सर्वानुदात्त न हो तो समास नहीं होगा। ऐसी स्थिति में उपसर्ग को स्वतन्त्र पद मानकर विराम द्वारा अलग कर दिया जाता है; यथा–

प्र वोचम् – प्र। वोचम् (ऋ. 1.154.1)

(4) यदि दो उपसर्गों के साथ, जिनमें पहला सर्वानुदात्त हो और दूसरा उदात्तयुक्त, किसी सर्वानुदात्त क्रियापद का समास होता है तो प्रथम सर्वानुदात्ते उपसर्ग के बाद अवग्रह लगाते हैं; जैसे–

अन्वालेभिरे – अनुऽआलेभिरे (ऋ. 10.130.7)

(5) एक पद में भी भ्याम्, भिस् तथा भ्यस् प्रत्ययों को उनसे पूर्व अंग में कोई परिवर्तन न होने पर, अवग्रह द्वारा अलग कर दिया जाता है; यथा–

ऋषिभिः – ऋषिऽभिः। (ऋ. 1.1.2)।

किन्तु पूर्व अंग में गुण या वृद्धि सम्बन्धी विकार होने पर अवग्रह द्वारा अलग नहीं किया जाता; यथा–

पूर्वेभिः – पूर्वेभि। (ऋ. 1.1.2)।

शुभ्राभ्याम् – शुभ्राभ्याम् (ऋ. 1.35.3)

यदि भ्याम्, भिस् तथा भ्यस् युक्त अंग का किसी पूर्वपद के साथ समास हुआ हो तो पूर्वपद को अवग्रह से अलग कर देते हैं; यथा–

पूर्वजेभ्यः – पूर्वऽजेभ्यः (ऋ. 10.14.15)

(6) एक पद में सुप्रत्यय को अंग में व्यजनान्त होने पर अवग्रह द्वारा अलग कर देते हैं; यथा–

अप्सु – अप्ऽसु। (ऋ. 1.23.20)।

अंग के अजन्त होने पर सु को अवग्रह से पृथक् नहीं किया जाता; जैसे–

देवेषु – देवेषु। (ऋ. 1.1.4)

(7) त्व, तरप् तथा तमप् प्रत्ययों को अंग से अवग्रह द्वारा अलग किया जाता है; यथा–

महित्वम् – महिऽत्वम् (ऋ. 1.154.4)।

वत्रतरम् –वत्रऽतरम् (ऋ. 1.32.5)।

उत्तमम् – उत्ऽतमम् (ऋ. 1.25.21)।

कहीं–कहीं दो से अधिक पदों का समास होने पर तरप्, तमप्, प्रत्ययों से अवग्रह न लगाकर उसके पूर्ववर्ती पद से पूर्व अवग्रह लगाते हैं; यथा–

रत्नधातमम् – रत्नऽधातमम् (ऋ. 1.1.1)।

(8) अंग के स् – व्यंजनान्त न होने पर वतुप मतुप्, प्रत्ययों से युक्त पदों में अंग तथा प्रत्यय को मध्य अवग्रह लगाया जाता है। जैसे–

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः (ऋ. 10.71.7)।

अक्षण्ऽवन्तः। कर्णऽवन्तः। सखायः।

स् व्यजनान्त अंग होने पर अवग्रह नहीं लगता, जैसे–

मनस्वान् – मनस्वान् (ऋ. 2.12.1)।

(9) अंग व्यंजनान्त न होने पर क्वसु–प्रत्ययान्त पद में प्रत्यय तथा अंग के बीच अवग्रह लगाया जाता है; यथा–

तस्थिवांसम् – तस्थिऽवांसम्। (ऋ. 2.35.14)।

अंग व्यंजनान्त होने पर अवग्रह नहीं लगता, यथा–

जघन्वान् – जघन्वान्। (ऋ. 1.32.11)।

(10) अन्ततः अंग को क्वच्, क्यङ् (व) आदि प्रत्यय लगाकर नाम धातु बनाने पर अवग्रह से अलग कर दिया जाता है; यथा–

वृषायमाण; वृषऽयमाणः (ऋ. 1.32.3)।

अंग यदि व्यंजनान्त हो तो अवग्रह नहीं लगता; यथा–

समुद्रे न श्रवस्यवः।

समुद्रे। न। श्रवस्यवः।

(11) 'इव' के साथ नित्य समास में पूर्वपद तथा इव के मध्य अवग्रह लगाया जाता है; यथा–

सेनेव – सेना ऽ इव। (ऋ. 1.143.5)।

(12) सप्तमी अर्थ में प्रयुक्ता त्रा प्रत्यय को अंग से अवग्रह द्वारा अलग करते हैं; यथा–

पुरुत्रा – पुरुऽत्रा। (ऋ. 1.70.5)।

अवग्रह के अपवाद

(1) देवताद्वन्द्व समास के पदों का अवग्रह द्वारा अलग नहीं करते; यथा–

मित्रावरुणौ – नित्रावरुणौ (ऋ. 1.23.5)।

(2) नञ् समास में नञ् की अवग्रह से अलग नहीं किया जाता; यथा–

अमृतानाम् – अमृतानाम्। (ऋ. 1.24.1)।

अजरः – अजरः। (ऋ. 1.58.2)।

(3) वनस्पत्यानि गण के समस्त पदों में अवग्रह नहीं लगाया जाता; यथा–

शुनः शेपः – शुनषेपः। (ऋ. 1.24.12)।

बृहस्पते – बृहस्पते (ऋ. 2.23.3)।

प्रगृह्य तथा रिफित पदों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए पद के साथ 'इति' का प्रयोग किया जाता है। प्रातिशाख्यों में इतिशाख्यों में इतिकरणयुक्त पद की उपस्थित संज्ञा की गई है।

(क) प्रगृह्य पदों के साथ इतिकरण –

(1) ई, ऊ, तथा ए में अन्त होने वाले द्विवचनान्त पद के साथ; यथा–

उशती – उशती इति (ऋ. 3.33.1)।

अध्वर्यु – अध्वर्यू इति। (ऋ. 2.16.4)।

आसाते – आसाते इति (ऋ. 2.41.5)।

(2) सप्तमी अर्थ में प्रयुक्त ई तथा ऊ में अन्त होने वाले पदों के साथ; यथा–

सरसी – सरसी इति। (ऋ. 7.103.2)।

तनू – तनू इति। (ऋ. 10.183.2)।

(3) अस्मे, युष्मे, त्वे तथा अमी पदों के साथ; यथा–

अस्मे – अस्मे इति (ऋ. 1.9.7)।

युष्मे – युष्मे इति। (ऋ. 4.10.8)।

त्वे – त्वे इति। (ऋ. 1.48.10)।

अमी – अमी इति। (ऋ. 1.24.6)।

त्वे पद अनुदात्त तथा समास का अंग होने पर प्रगृंह्य नहीं होता। अतः यहां इतिकरण नहीं किया जाता; यथा–

त्वे – त्वे (ऋ. 10.71.8)।

(4) एकाक्षर प्रगृह्य पद 'ओ' के साथ; जैसे –

ओ – ओ इति। (ऋ. 10.11.74)।

(5) अकारान्त तथा आकारान्त निपात एवं सर्वनाम पदों के साथ 'उ' की सन्धि होने पर सन्धिज अथो, मो, नो, क्वो, प्रो आदि पदों के साथ; यथा–

अथो इति, भो इति, नो इति, प्रो इति, क्वो 3 इति, एषो इति, यो इति इत्यादि।

(6) संहिता में पठित 'उ' निपात से आगे 'इति' का प्रयोग करके 'उ' को 'ऊ' रूप में प्रदर्शित करना चाहिए; यथा–

अन्वेतवा उ – अनुऽएतवै। ऊ इति (ऋ. 1.24.8)।

(7) ओकारान्त सम्बोधन पद के साथ; यथा–

वायो – वायो इति। (ऋ. 1.2.3)।

(8) जिस पद में प्रगृह्य तथा उपग्रह दोनों कार्य दिखलाने हो यहां पहले प्रगृह्य निर्देश कर उसके आगे 'इति' का प्रयोग करना चाहिए; तदनन्तर उसी पद की पुनः आकृति करके अवग्रह दिखलाना चाहिए; यथा–

चित्रभानो – चित्रभानो इति चित्रऽभानो। (ऋ. 1.3.4)।

(ख) रिफित विसर्जतीयान्त पद के साथ इतिकरण–

(1) रिफित विसर्जकीयान्त पद को रेफ स्पष्ट करने के लिए पदपाठ में उसके आगे इतिकरण किया जाता है। संहिता–पाठ में रेफान्त पद को जहां विसर्ग हो जाता है वहां यह सन्देह हो जाता है कि वह विसर्गान्त रूप उसी से मिलते–जुलते एकारान्त पद का है अथवा रेफान्त का; इस सन्देह को निराकरणार्थ रेफान्त पद का निर्देश पदपाठ में 'इतिकरण' द्वारा किया जाता है।

उदाहरणार्थ

अन्तः – अन्तरिति। (ऋ. 1.62.9)।

दुहितः – दुहितरिति। (ऋ. 6.65.6)।

(2) रिफित विसर्जनीयान्त 'स्वः' पद के आगे इतिकरण कर पुनः उस की आवृत्ति करते हैं; यथा–

स्वः – स्व १ रिति स्व; (ऋ.1.52.12)।

(3) रेफान्त आख्यात पद के साथ नामसंज्ञक सान्त पद (विभक्ति के सकार के कारण) के सन्देह–निसारणार्थ इतिकरण किया जाता है और उसके आख्यातत्व के प्रदर्शनार्थ उनकी पुनः आवृत्ति करते है; यथा–

एतषेकः – एतषे। करिति कः (ऋ. 5.29.5)।

पातवे वाः – पातवे। वारिति वाः। (ऋ. 1.116.22)।

(4) कहीं–कहीं विसर्गान्त सान्त शब्दों के आख्यात तथा नाम का भेद दिखलाने के लिए आख्यात पद के साथ इतिकरण करके पुनः उसकी आवृत्ति की जाती है; यथा–

देवं भः – देवम्। भारिति भाः (ऋ. 1.128.2)।

(5) ऋग्वेद में एक स्थान पर √ अस् के आख्यात रूप 'स्तः' का स्तृ के स्तरः (– स्तः) से भेद दिखलाने के लिए भी 'इति' का प्रयोग और पुनरावृत्ति की गई हैः

स्तः – स्त इति स्तः (ऋ. 8.3.2)।

4. प्रगृह्य सम्बन्धी नियम –

(1) प्रगृह्य संज्ञक स्वरों में अन्त होने वाले समास पद के प्रगृह्यत्व को इतिकरण द्वारा दिखलाने के बाद समास की पुनः आवृत्ति की जाती है और इस आवृत्त पद में ही समास के दोनों पदों के मध्य अवग्रह का प्रयोग किया जाता है; यथा–

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते। (ऋ. 2.12.8)।

यम्। क्रन्दसी इति संयती इति समऽयती। विह्वयेते इति विऽह्वयेते।

(2) देवताद्वन्द्व समास का नञ् समास पद की प्रगृह्यान्त होने पर भी इति कारण के बाद पुनः आवृत्ति नहीं की जाती, क्योंकि पदपाठ में अवग्रह का प्रयोग नहीं किया जाता; यथा–

इन्द्रवायू – इन्द्रवायू इति। (ऋ. 1.2–4)।

अमृते – अमृते इति। (ऋ. 1.113.2)।

अनूची – अनूची इति। (ऋ. 1.113.3)।

(3) प्रगृह्यान्त पद के साथ 'इव' का नित्य समास होने पर पूर्वपदान्त को ही समास का पदान्त माना जाता है, किन्तु इतिकरण 'इव' पद के बाद किया जाता है और पुनः समास पद की आवृत्ति की जाती है। आवृत्त पद में 'इव' को पूर्वपद से अवग्रह द्वारा अलग किया जाता है चूंकि इव का पदान्तीय वर्ण प्रगृह्य नहीं होता, इसलिए 'इति' के पदादि इकार के साथ उसकी गुण सन्धि हो जाती है और यदि समास पद किसी अक्षर से शुरू होने वाला है तो 'इति' पदान्तीय इकार के साथ उसकी भी सन्धि हो जाती है; यथा–

अश्वेइव विषिते हासमाने (ऋ. 3.33.1)।

अष्व इवेत्यष्वेऽइव। विसिते इति विऽसिते। हासमाने इति।

स्वर सम्बन्धी नियम

संहिता पाद में एक पाद या अर्द्धर्च स्वर की दृष्टि से एक इकाई होता है, किन्तु पदपाठ में पद इकाई होता है। इसका पूर्ववर्ती तथा परवर्ती पद से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः पदपाठ में पद को उसके अपने मूल स्वर में उपस्थित किया जाता है। पदपाठ के स्वर सम्बन्धी नियमों का हम नीचे विवेचन कर रहे हैं।

1. सामान्य पदों के स्वर नियम

(क) अपरिवर्तनीय स्वर–

(1) संहितापाठ में उदात्त तथा जात्य स्वरित जिस वर्ण पर होते हैं। पदपाठ में भी वे उसी वर्ण पर रहते हैं। उनके स्थान तथा धर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता,

उदाहरणार्थ–

विष्णोर्नु कं वीर्याणि (ऋ. 1.154.1)।

विष्णोः नु। कम्। वीर्याणि।

(2) एक ही पद में उदात्त तथा जात्य स्वरित से पूर्ववर्ती अनुदात्त के स्थान तथा धर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा–

द्यावाक्षामा। रुक्मो अन्तर्वि भाति। (ऋ. 1.96.5)।

द्यावाक्षामा। रुक्मः। अन्तः। वि। भाति।

वीर्याणि (ऋ. 1.154.1)।

वीर्याणि।

(3) एक ही पद में उदात्त से परिवर्ती स्वरित में परिवर्तन नहीं होता, यथा–

पर्वतेषु (ऋ. 2.12.11) – पर्वतेषु।

(4) एक ही पद में उदात्त पूर्व स्वरित या जात्य स्वरित के बाद आने वाले प्रचय का परिवर्तन नहीं होता; यथा–

पर्वतेषु (ऋ. 2.12.11) पर्वतेषु।

(ख) परिवर्तनीय स्वर–

(1) एक ही पद में उदात्त के बाद में आने वाला अनुदात्त स्वरित में परिवर्तित हो जाता है; यथा–

उषो वाजं हि वस्त्र। (ऋ. 1.48.11)।

उषः। वाजम्। हि। वस्त्र।

(2) एक ही पद में सामान्य स्वरित अथवा स्वरित के बाद आने वाला अनुदात्त प्रचय में बदल जाता है; यथा–

इन्द्रत्य नु वीर्याणि प्र वोचम्। (ऋ. 1.32.1)।

इन्दस्य नु। वीर्याणि प्र। वोचम्।

(3) एक ही पद में उदात्त पर अनुदात्त से पूर्ववर्ती सभी प्रचय, चाहे एक हो या अनेक, अनुदात्त में परिवर्तित हो जाते हैं; यथा–

अनारम्भणे तद्वीरयेथामना स्थाने (ऋ. 1.116.5)

अनारम्भणे। तत्। अवीरयेथाम्। अनारस्थाने।

(4) संहिता–पाठ में जिस पद में कोई उदात्त या स्वतन्त्र स्वरित न हो उसको पद पाठ में अनुदात्त चिन्हित किया जाता है; यथा–

अनारम्भणे तद्वीरयेथाम्। (ऋ. 1.116.5)

अनारम्भणे। तत्। येवीरयेथाम्।

(5) कम्प स्वर के लिए प्रयुक्त १ या ३ चिन्ह पद पाठ में समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि सन्धि–विच्छेद हो जाने के कारण परवर्ती उदात्तयुक्त पद अलग हो जाता है। यदि कम्प स्वरित जात्य स्वरित पर है तो उसे जात्य स्वरित के चिन्ह वर्ण के ऊपर (खड़ी रेखा) से चिन्हित किया जाता है; यथा–

वरुणः पस्त्या ३ स्वा। (ऋ. 1.25.10)

वरुणः। पस्त्यास। आ।

यदि कम्प अभिनिहित, क्षैप्र या प्रश्लिष्ट स्वरित पर है तो पूर्वपदान्तीय वर्ण उदात्त होता है। अतः उसे अचिन्हित छोड़ देते हैं और पदवर्ती पदादि वर्ण अनुदात्त होता है; अतः उसे वर्ण के नीचे अनुदात्त के चिन्ह से अंकित करते हैं; यथा–

अप्स्व १ न्तरमृतम् (ऋ. 1.23.29)

अप्सु। अन्तः अमृतम्।

(6) पद पाठ में पदों का सन्धि–विच्छेद हो जाने से संहिता–पाठ के दो स्वरों की सन्धि से उत्पन्न सन्धिज स्वर अपने पदान्तीय तथा पदादि वर्ण के मूल स्वर के रूप में आ जाते हैं। संहिता–पाठ में संन्धिज स्वरों की निम्न अवस्थायें सम्भव है।

1. उदात्त+उदात्त = उदात्त
2. उदात्त+अनुदात्त = उदात्त
3. उदात्त+स्वरित = उदात्त
4. अनुदात्त+अनुदात्त = अनुदात्त
5. अनुदात्त+उदात्त = उदात्त
6. अनुदात्त+स्वरित = x
7. स्वरित+उदात्त = उदात्त
8. स्वरित+अनुदात्त = स्वरित, अनुदात्त

(यदि पदादि अनुदात्त के तुरन्त बाद कोई अनुदात्त स्वर न हो तो सन्धिज स्वर अनुदात्त होता है।)

सचा+एषु = सचैषु); किन्तु यदि पदादि अनुदात्त के ठीक बाद कोई अन्य अनुदात्त हो तो सन्धिज स्वर आश्रित स्वरित होता है। (यथा–युंजन्ति+अस्यत्र = युंजन्त्यस्य) स्वरित के बाद स्वतन्त्र स्वरित होने पर संन्धिज स्वर स्वतन्त्र स्वरित होता है)।

9. स्वरित+स्वरित = ग

उपयुक्त नौ सन्धि रूपों में 3, 6 तथा 9 के उदाहरण अनुपलब्ध है। क्योंकि परवर्ती पदादि स्वरित के साथ पूर्ववर्ती उदात्त एवं स्वरित की सन्धि होती ही नहीं। कारण यह है कि आश्रित स्वरित की सत्ता पदादि में होती ही नहीं और स्वतन्त्र पदादि में होने पर भी ऐसे अच् पर होता है जो व्यंजन के साथ संयुक्त होता है। अतः व्यंजनपूर्ण होने से यहाँ स्वर–सन्धि होती ही नहीं।

सन्धिज स्वर आपके लिए कुछ समस्या खड़ी कर सकता है। यदि यह उदात्त है तो यह समस्या उठेगी कि पूर्वरदान्तीय वर्ण उदात्त है और उत्तरपदादि अमुदात्त या पूर्वपदान्तीय अनुदात्त है और उत्तरपादित उत्तरपादि उदात्त, पदान्तीय और पदादि दोनों उदात्त है। एतदर्थ निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(क) प्रत्येक पद में प्रायः एक उदात्त होता है। अतः यह देख लेना चाहिए कि सन्धि–विच्छेद से पूर्व पूर्वपद या उत्तरपद में कोई उदात्त है या नहीं। यदि पूर्ववद में कोई उदात्त हो तो उस उदात्त सन्ध्यक्षर में पदान्तीय वर्ण को अनुदात्त समझना चाहिए, जो पद पाठ में पद को अलग करने का स्वारित या प्रचय के परिवर्तित हो जायेगा। यदि उस सन्धिज उदात्त के ठीक पूर्व उदात्त होगा, तो पदान्तीय वर्ण स्वरित के चिन्ह से अंकित होगा और यदि उदात्त के बाद होगी तो वह प्रचय होगा। अतः वह अचिन्हित रहेगा। पूर्वपदान्तीय स्वर के विषय में यह निश्चित होने पर कि वह मूलतः अनुदात्त तथा वर्णसंहिता की दृष्टि से स्वरित या प्रचय है, उत्तरपदादि स्वर को उदात्त माना जायेगा; यथा–

न ये वातस्तय प्रमिनन्त्यभ्वम् (ऋ. 1.2.4.6)

न। ये वातस्य। प्रऽमिनन्ति। अभ्वम्।

ये नाकस्याधि रोचने (ऋ. 1.19.6)

ये। नाकस्य। अधि। रोचने।

यदि सन्धिज उदात्त के बाद उत्तरपद में कोई दूसरा उदात्त हो और पूर्वपद में कोई उदात्त न हो तो समझना चाहिए कि पूर्वपदान्तीय वर्ण उदात्त है तथा उत्तरपदादि वर्ण अनुदात्त। यथा–

उतारुषस्य (ऋ. 1.85.5)।

उत। अरुषस्य।

यदि सन्धिज उदात्त से पूर्व पद में कोई उदात्त न हो और बाद में भी कोई उदात्त न हो तो समझना चाहिए कि पदान्तीय तथा पदादि दोनों वर्ण उदात्त है; यथा–

मित्रावरुणाविहावसे (ऋ. 1.35.1)

मित्रावरुणौ। इह अवसे।

(ख) कुछ पद सदैव या अवस्था–विशेष में सर्वानुदात्त होते हैं। अतः पदपाठ करते समय यह देख लेना चाहिए कि सन्धिज उदात्त उसी पद का अंश तो नहीं है जो सर्वानुदात्त है यदि पूर्ववर्ती सर्वानुदात्त पद का अंश है तो पूर्वपदान्तीय स्वर अनुदात्त होगा और उत्तरपदादि उदात्त; यदि उत्तरवर्ती सर्वानुदात्त पद का अंश है तो उत्तरपदादि वर्ण अनुदात्त होगा तथा पूर्वपदान्तीय उदात्त; यथा–

यदिन्द्राहन् (ऋ. 1.32.4)

यत्। इन्द्र। अहन्।

वाश्रेण विद्युन्मिनाति। (ऋ. 1.38.8)

वाश्राऽइव। विद्युत्। मिमाति।

अहेठ्ठमानों वरुणेह बोध्युरुशंस। (ऋ. 1.24.11)

अहेठ्ठमानः। वरुण। इह। बोधि। उरुऽशंस।

अवगृह्य पदों का स्वर नियम

(1) जिन पदों के बीच अवग्रह लगाया जाता है उन दोनों के बीच एक मात्रा–काल का विराम रखा जाता है; किन्तु एकोदात्त पदों में स्वर की दृष्टि से इसे व्यवधान नहीं समझा जाता और संहितवत् स्वर संचार किया जाता है।

(2) यदि अनुग्रहयुक्त पद दो उदात्तों वाला हो तो उत्तरपद को असंहितवत् समझा जाता है। ऐसी स्थिति में (1) पूर्वपद यदि आदि या मध्योदात्त हो तो वह उसका पदान्तीय वर्ण स्वरित या प्रचय हो जाता है और यदि अन्तोदात्त हो तो वह ज्यों– का–त्यों रहेगा (2) उत्तर पद यदि मध्योदात्त या आन्तोदात्त हो तो उस उदात्त से पूर्ववर्ती वर्ण, चाहे एक हो या अनेक; अनुदात्त चिहिन्त किए जाते हैं। यदि आद्युदात्त हो तो वह ज्यों का त्यों रह जाता है। उदाहरणार्थ–

ऋतस्य पन्थामन्वेतवा उ (ऋ. 7.44.5)

ऋतस्य। पन्थाम्। अनुऽएतवै। ऊँ इति।

नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। (ऋ. 10.14.2)

न। एषा। गतव्यूतिः। अपऽभर्तवै। ऊँ इति।

(3) अवग्रह युक्त दो उदात्तों वाले पदों में पूर्वपद में तनू तथा शची पद यदि हों और उसका उत्तरपद आद्युदात्त हो तो वह संहितवत् ही समझा जाता है। तनू तथा शची का पदान्तीय स्वरित जात्यवत् समझा जाता है, अतः पदपाठ में इसके परवर्ती उत्तरपदादि उदात्त के कारण स्वरित को कम्प हो जाता है। कम्प दीर्घ होने से 3 चिन्ह से अंकित किया जाता है। उदाहरणार्थ–

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरः। (ऋ. 3.29.11)

तनू ३ ऽनपात्। उच्यते। गर्भः। आसुरः।

इन्द्रं कुत्सौ वृत्रहणं शचीपतिम्। (ऋ. 1.106.6)

इन्द्रम्। कुत्सः। वृत्रऽहनम्। शची ३ ऽपतिम्।

किसी किसी शाखा में इसे भी असंहितवत् मानने की प्रथा है। ऐसी स्थिति में तनूऽनपात, शची ऽपतिम् ये पाठ होंगे।

3. इतिकरणयुक्त पद का स्वर नियम–

इतिकरणयुक्त पद तथा इति पद को संहितवत् मानकर स्वर संचार किया जाता है। इति पद आद्युदात्त होने से उससे पूर्व सामान्य स्वरित या प्रचय हो तो वह अनुदात्त में बदल जाता है, अर्थात् उसे अनुदात्त के चिन्ह से अंकित किया जाता है। उदाहरण ऊपर 'इतिकरण सम्बन्धी नियम' शीर्षक के अन्तर्गत दिए जा चुके हैं।

4. प्रगृह्य सम्बन्धी स्वर–नियम

(1) ऋग्वेदीय पद पाठ में इति के बाद जब प्रगृह्य स्वरान्त समस्त पद की आवृत्ति की जाती है तो इति के बाद आने वाले समस्त पद का पूर्वपद अवग्रह के व्यधान में भी स्वर की दृष्टि से उत्तरपद के साथ संहितवत् माना जाता है। ऐसी स्थिति में–

(क) पूर्वपद के अन्तोदात्त होने पर उत्तरपद को पदादि वर्ण सांहितिक–स्वर नियमानुसार स्वरित हो जाएगा और आद्युदात्त या मध्योदात्त होने पर पूरा उत्तरपद प्रचय हो जाएगा।

उदाहरणार्थ–

विष्कभिते। (ऋ. 6.70.1)

विष्कभिते इति विऽस्कभिते।

इन्द्रेषिते (ऋ. 3.33.2)

इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषिते।

(2) 'इव' के साथ यदि प्रगृह्यन्त पद का नित्य समास हो तो 'इव' के पदान्तीय अनुदात्त, धर्मवान् अच् के साथ आद्युदात्त इति पद की 'ई' की सन्धि में सन्धिज स्वर उदात्त होता है। यदि समस्त पद अजादि हो तो उसकी भी इति के पदान्तीय अनु दात्त धर्मवान् 'ई' (ति) के साथ सन्धि हो जाती है और तदानुसार सन्धिज स्वर होता है। उदाहरणार्थ –

अश्वेइव। (ऋ. 3.33.1)

अश्वेइवेत्यश्वेइवष्इव।

(3) स्वः पद के बाद इतिकरण करने पर पुनः स्वः पद की आवृत्ति की जाती है। इस स्वः का स्वर जात्य स्वरित होता है। इति पद के आद्युदात्त होने के कारण यहाँ पदपाठ में कम्प हो जाता है उसे? द्वारा प्रदार्शित

किया जाता है। जब इति के बाद स्वः पद की आवृत्ति की जाती है तो स्वः पद इति के साथ संहितवत् नहीं समझा जाता; अतः वहाँ स्वः से पूर्व इति का अन्तिम स्वरित पद पाठ में ज्यों का त्यों बना रहता है; यथा–

स्वः (ऋ. 1.52.1)

स्वः १ रति स्वः।

(4) रिफत बिसजनीयान्त क्रियापद के साथ लगे हुए इतिकरण के बाद जब क्रियापद की आवृत्ति की जाती है तो इस इति के साथ आवृत्त पद संहितवत् होता है, यथा–

अकः (ऋ. 11.12.4)

अकरित्यकः।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 2**

  प्र॰1. वैदिक स्वर कितने हैं?

  प्र॰2. पद पाठ का प्रणयन किसने किया?

  प्र॰3. वेदों को गुरु द्वारा शिष्य को किस परम्परा से पढ़ाया जाता था?

  प्र॰4. पद पाठ में कौन चिह्न लगा देना चहिए?

20.5 सारांष

वेदों की भाषा को संगीतात्मक कहा गया है। वेद मन्त्रों का पाठ विशेष स्वरों द्वारा तथा विशेष अक्षरों पर बल देकर किया जाता है। वेदों का अध्ययन भी संहिताओं के रूप में किया जाता है। यज्ञ में मन्त्रों का विनियोग संहिता के रूप में होता है पदों के रूप में नहीं। महर्षि शाकल्य ने पद–पाठ का प्रणयन किया था तथा इन्होंने संहिता के पदों की सन्धि आदि को खोलकर पद पाठ का प्रचलन किया। वैदिक साहित्य का स्वरांकन सर्वत्र एक सा नहीं है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, वाजसनेयी संहिता और तैत्तिरीय संहिता में अनुदात्त नीचे पड़ी पाई (–) और स्वरित ऊपर खड़ी पाई (।) से चिन्हित किया जाता है जबकि उदात्त अचिन्हित रहता है। जैसे– अग्निना में अ अनुदात्त है ग्नि का इ उदात्त है और ना का आ स्वरित है।

20.6 कठिन शब्दावली

संहिता –वैदिक चार संहिताए हैं– ऋक्, यजु, साम, अथर्व

स्वर –वैदिक स्वर तीन हैं उदात्त, अनुदात्त, स्वरित

उदात्त –उच्चैरुदातः अर्थात् तालु इत्यादि उर्ध्व भागों से निष्पन्न होने वाला अच् उदात्त कहलाता है

अनुदात्त –नीचैरनुदात्तः अर्थात् जिस स्वर के उच्चारण में गात्र नीचे की तरफ खिंचे उसे अनुदात्त कहते हैं

स्वरित –समाहारः स्वरितः अर्थात् जिस स्वर के खिंचे और उसके बाद नीचे की ओर खिंचे तो उसे स्वरित कहते हैं

20.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

उ॰1. संहिता पाठ व पद पाठ

उ॰2. पद पाठ

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 2**

उ॰1. तीन

उ॰2. महर्षि शाकल्य

उ॰3. श्रुति परम्परा

उ॰4. विराम चिह्न

20.8 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37—बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी—5 (उ.प्र.)
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी—1

20.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. वैदिक स्वर प्रक्रिया का वर्णन करें।
2. संहिता पाठ एवं पद पाठ के नियमों का वर्णन करें।

इकाई – 21

वैदिक–लौकिक संस्कृत भाषा का परिचय

संरचना

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत भाषा का तुलनात्मक परिचय

- **स्वयं आंकलन प्रष्न**

21.4 सारांष

21.5 कठिन शब्दावली

21.6 स्वयं आकलन प्रष्नों के उत्तर

21.7 अनुषंसित ग्रन्थ

21.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में वैदिक–लौकिक संस्कृत भाषा का परिचय दिया गया है। वेदों की भाषा एवं लौकिक संस्कृत भाषा में व्याकरणिक दृष्टिकोण से भिन्नता मिलती है। शब्दों और धातुओं की संख्या रूप, स्वर आदि की दृष्टि से वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में बहुत से अन्तर दिखाई देते हैं। वैदिक भाषा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा थी। अतः व्याकरणिक दृष्टि से वह कहीं अधिक समृद्ध थी।

21.2 उद्देष्य

1. वैदिक भाषा एवं लौकिक भाषा में व्याकरणिक दृष्टि से भिन्नता है।
2. वैदिक संस्कृत, संस्कृत का सबसे पुराना रूप है।
3. वैदिक काल की संस्कृत भाषा को छन्दस् या प्राचीन संस्कृत भी कहते हैं, जिसमें वेदों की रचना की गई।
4. लौकिक संस्कृत का रूप धारण करने के कारण वैदिक भाषा में कई परिवर्तन हुए हैं जिस कारण इसे लौकिक संस्कृत, देववाणी, देवभाषा कहा गया है।

21.3वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत भाषा का तुलनात्मक परिचय

ऋग्वेद की भाषा आर्यों की सबसे प्राचीन साहित्यिक भाषा के रूप को प्रस्तुत करती है। यह लौकिक संस्कृत से अनेक रूपों में भिन्न है। चतुर्थ शताब्दी ई०पू० पाणिनि ने लौकिक संस्कृत के जिस रूप को निर्धारित किया था, वह रूप हजारों वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी आज भी विद्यमान है। परन्तु वैदिक भाषा पर पाणिनीय व्याकरण के वे नियम समग्र रूप से लागू नहीं होते। यद्यपि पाणिनि ने वैदिक भाषा के

सम्बन्ध में भी व्याकरण के नियमों को बनाने का प्रयास किया था, परन्तु वे उसको पूर्णतया नियमों में बांध नहीं सके। वैदिक भाषा के सम्बन्ध में अपवाद रहित नियमों को नहीं बनाया जा सका तथा ''बहुल छन्दसि'' कह कर रूपों की विविधता को स्वीकार करना पड़ा।

वेदों की भाषा में संस्कृत भाषा की अपेक्षा व्याकरण की कुछ भिन्नता तो है ही, शब्दावली एवं संज्ञारूपों की और भी अधिक भिन्नता है। संस्कृत जानने वाले व्यक्ति को वैदिक शब्दों के अर्थों को समझने में कठिनाई होती है और उन अर्थों को जानने के लिए, विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। शब्दों और धातुओं की संख्या, रूप, स्वर आदि की दृष्टि से वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में बहुत से अन्तर दिखाई देते हैं। विस्तार में गए बिना कुछ मुख्य अन्तर यहाँ प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

1. ध्वन्यात्मक विशेषताएं

वेदों की भाषा में स्वर और व्यंजनों दोनों की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो लौकिक संस्कृत में नहीं रही।

(क) स्वरगत ध्वन्यात्मक विशेषताएं

वैदिक शब्दों में स्वरों का उच्चारण संगीतात्मक है। अर्थात् स्वरों का उच्चारण करते समय उनमें स्वराघात पर ध्यान रखना होता है। स्वराघात से शब्दों के अर्थों का निर्धारण होता है।

लौकिक संस्कृत में ह्रस्व और दीर्घ दो प्रकार के स्वर व्यवहृत होते हैं। इनमें क्रमशः एक और दो मात्राएं होती हैं। वैदिक संस्कृत में स्वरों के तीन प्रकार हैं– ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। प्लुत में तीन मात्राएं होती हैं और स्वर को अधिक लम्बा करके उच्चारण किया जाता है। प्लुत को इस प्रकार लिखा जाता है– आसी३त् विन्दन्ती ँ३।

वेदों में 'लृ' स्वर का प्रचुर प्रयोग है परन्तु लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग प्रायः बन्द हो गया था।

अ, आ, इ, उ, ऋ ये स्वर यदि किसी शब्द के अन्त में हों और इसके बाद किसी स्वर के होने पर सन्धि होने की सम्भावना हो तो अनुनासिक हो जाते हैं। जैसे 10.146.1 में विन्दताँ ३ है। संहिता–पाठ के उ को पद पाठ में उँ इति उच्चारण किया जाता है।

अनुस्वर और विसर्ग, जो कि स्वर और व्यंजन के मध्य की स्थिति रखते हैं, इनका उच्चारण वैदिक भाषा की अपेक्षा लौकिक संस्कृत में भिन्न हो गया है। लौकिक संस्कृत के सिंह को वैदिक में सिव् ँह उच्चरण किया जाना चाहिए।

(ख) व्यंजनगत विशेषताएं

वैदिक भाषा में दो अतिरिक्त व्यंजन ल् और लह् हैं, जिनका प्रयोग ड् और ढ् के स्थान पर किया गया प्रतीत होता है, जैसे इला और सालहा। वेद में अनेक बार व्यंजनों से पूर्व उसी व्यंजन को अनुनासिक बनाकर युगल रूप में उच्चारण किया जाता है। तब उस व्यंजन को यम कहते हैं। यथा असिक्नी चख्नतुः,

जग्मिवान् और जघ्नतुः के क्, ख्, ग् और घ् से पहले अनुनासिक क्ँ, ख्ँ, ग्ँ और घ्ँ का उच्चारण होता है। संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण प्रायः द्वित्व रूप में होता है, जिसको क्रम कहते हैं, यद्यपि इसके अनेक अपवाद भी हैं। यथा अस्तौत् को अस्त्तौत्, ह्वयामि को ह् ह्वयामि और स्यन्दन्ताम् को स्स्यन्दन्ताम् उच्चारण करना चाहिए।

अनेक बार स्वरभिक्त का प्रयोग करते हैं। यथा इन्द्र को इन्दर उच्चारण होता है। अनेक बार य् और व् से पहले उच्चारण में इ और उ आ जाता है। यथा वीर्यम् को वीरियम्, स्वः को सुबः उच्चारण किया जा सकता है।

2. सन्धिगत विषेषताएं

वैदिक संस्कृत में सन्धियों के प्रायः वे ही नियम हैं, जो लौकिक संस्कृत में हैं परन्तु वैदिक संस्कृत में उन नियमों का पालन उतना कठोर नहीं है तथा उनमें अनेक अपवाद हैं। ऋक्प्रातिशाख्य में सन्धियों के नियमों को बताया गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर लौकिक संस्कृत की अपेक्षा सन्धि–नियमों के अपवाद दिखाई देते है। उदाहरण के लिए ए और ओ के बाद ह्रस्व अ का पूर्व रूप का पूर्व रूप होना चाहिए। वेदों में कहीं तो यह होता है और कहीं नहीं भी होता। उदाहरण के लिए ''सोऽयमागात्'' (ऋ० 10.53.1) और ''तेऽवदन्'' (ऋ० 10.109.1) में अ का पूर्व रूप हुआ है, परन्तु ''शिक्षन्तो अव्रतम्'' (ऋ० 6.14.3) में नहीं हुआ। कहीं पर एक ही शब्द में पूर्व रूप होने और न होने दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं तथा ''गावो ऽ नवन्त'' (ऋ० 5.30.10) में गावो के बाद अ का पूर्व रूप हुआ और ''गवो अग्मन्'' (ऋ० 6.28.1) में नहीं हुआ।

अनेक बार सन्धियाँ नहीं होती और एक ही शब्द में दो स्वर निरन्तरता से मिलते हैं। यथा तितउ, प्रउग, गोओपशा, गोऋजीक आदि शब्दों में सन्धि नहीं हुई।

विसर्ग सन्धि में अनेक अपवाद देखे जाते हैं। अनेक बार सन्धि करने के लिए विसर्ग का लोप हो जाता है। यथा– भूमिः+आददे=भूम्याददे (ऋ० 10.61.10)।

दीर्घ स्वर के बाद न् हो और उसके परे स्वर हो तो न् को अनुस्वार होता है। यथा महान्+इन्द्रः=महाइन्द्रः।

3. स्वराघात

वैदिक व्याकरण में स्वराघात का बहुत महत्त्व है। वेद मन्त्रों के उच्चारण करने में और उनका अर्थ करने में स्वराघात को ध्यान में रखना पड़ता है। किसी भी शब्द पर विशेष बल डाल कर उच्चारण करना स्वराघात या स्वर है। वैदिक मन्त्रों में तीन प्रकार के स्वर होते हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनके नियमों को आगे विस्तार से बताया जावेगा। स्वराघात वैदिक भाषा की अपनी विशेषता है और इससे यह भाषा संगीतात्मक हो गई है। शब्दों में स्वराघात के परिवर्तित होने से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है।

ऋग्वेद के दो प्रकार के पाठों—संहिता—पाठ एवं पद पाठ में शब्दों के स्वराघात परिवर्तित हो सकते हैं। लौकिक संस्कृत में स्वराघातों का महत्त्व समाप्त हो गया था। तुलनात्मक भाषा विज्ञान में वैदिक भाषा के इस स्वराघात का बहुत अधिक महत्त्व है।

4. धातुरूप

लौकिक संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत धातुरूपों की दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न है। प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के युग में आर्यों में बोली जाने वाली सभी विभाषाओं और बोलियों को वैदिक भाषा में सम्मिलित कर लिया गया था, क्योंकि एक प्रकार की ही धातुओं के अनेक अर्थ और रूप ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होते हैं तथा उनके काल और विभक्तियों के अर्थ भी निश्चित नहीं है। धातुओं से लगाए जाने वाले प्रत्ययों में भी बहुत विविधता दृष्टिगोचर होती है। ब्राह्मणों के युग तक वैदिक भाषा का रूप बहुत कुछ नियमित हो गया था क्योंकि उससे यह विविधता कम हो गई थी तथा रूपों, कालों और विभक्तियों का स्वरूप बहुत कुछ निर्धारित हो गया था। वैदिक भाषा में रूपों की विविधता ''कृ'' धातु के उदाहरण से, जिसका प्रयोग बहुत अधिक हुआ है देखी जा सकती है।

मूल धातु ''कृ'' है। इसके करु, करु रूप बनते हैं— करोति, कुरुते, अकरोत्, अकुरुतः आदि। ''कृ'' का कर् रूप भी बनता है— अकरवम्, अक्रि, अकार्षम्, करिष्यति, अकरिष्यत्, कृधि, कर, करम्, करसि, करसे, करिष्यः आदि। ''कृ'' को चकृ में भी परिणत किया गया है— चकार, चक्रे, चकरम्, अचक्रत्, चक्रिया, चकृवम्, चक्राण आदि। ''कृ'' को कृणु के रूप में लिया गया है— कृणोति, कृणुते, अकृणोत्, कृणु, कृणुष्व, कृण्वीत, कृणवत्, कृण्वत्, कृण्वानः। ''कृ'' के अन्य रूप भी बने हैं— क्रियते, कारयति, चिकीर्षति, चरिक्रत्, करिक्रत् आदि।

धातु के इतने रूप लौकिक संस्कृत में नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त धातुरूपों की दृष्टि से वैदिक संस्कृत में कुछ नीचे लिखी विशेषताएं उदाहरण के रूप में दी जाती है—

(क) वैदिक संस्कृत में धातुओं के परस्मैपद और आत्मनेपद होने के सम्बन्ध में विशेष नियम नहीं है। कोई भी धातु दोनों पदों में प्रयुक्त हो सकती है जैसे ''गम्'' धातु लौकिक संस्कृत में परस्मैपदी है, परन्तु वेद में गच्छति, गच्छते और जगाम, जामे दोनों पदों में रूप हो सकते हैं।

(ख) वैदिक भाषा में लङ्., लुङ्. और लिट् लकार का प्रयोग किसी भी काल में हो सकता है, जबकि लौकिक संस्कृत में उनका प्रयोग भूतकाल में होता है। पाणिनि ने ''छन्दसि लुङ्. लङ्.लिटः'' (अष्टाध्यायी 3. 4.3) सूत्र द्वारा इस नियम को बताया है। जैसे— ''अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः'' का अर्थ है कि आज यजमान होता अग्नि का वरण करता है। यहाँ वर्तमान काल में ''अवृणीत'' इस लङ्. लकार का प्रयोग हुआ है।

(ग) लौकिक संस्कृत में 10 लकारों का प्रयोग होता है, परन्तु वैदिक संस्कृत में लेट् लकार अधिक है। लेट् लकार का प्रयोग प्रायः भूतकाल में हुआ है। यथा– सविता धर्मं साविषत्। तारिषत्, जोषिषत्, पताति, जीवाति भवाति, ईशै आदि क्रियाओं का प्रयोग वेदों में ही मिलता है परन्तु अन्य अर्थों में भी लेट् लकार हो सकता है। पाणिनि ने लिङ्. के अर्थ में लेट् का विधान किया है (लिङ.र्थे लेट्–अष्टा० 3.4.7)।

(घ) वेद में लिट् लकार के अनेक रूप दिखाई देते हैं। सामान्यतः इसका प्रयोग सामान्य भूतकाल में किया जाता है। परन्तु वर्तमान काल में भी इसका प्रयोग मिलता है। लिट् के स्थान पर कानच् अग्नि चिक्यानः और क्वासु–पषिवान्, जग्मिवान् विरक्त से होते हैं।

(ङ.) वैदिक भाषा में शप् के आगम के और लोप के सम्बन्ध में विशेष नियम नहीं है। जैसे हान्ते और हनति एवं शेते और शयते दोनों प्रकार के रूप वेद में बनते हैं।

(च) लकारों के रूपों के सम्बन्ध में भी बहुत विविधता दृष्टिगोचर होती है। यथा कृ धातु लट् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन में– कृणोति, कृणुते, करोति, कुरुते, करति रूप बनते हैं। करति–करत् (एक वचन), करतः (द्विवचन), करन्ति करन् (बहुवचन) रूप भी चलते हैं। लोट् लकार के उत्तम पुरुष के बहुवचन में मसि और मध्यम पुरुष बहुवचन में तात, त, तन और थन प्रत्ययों का प्रयोग होता है। यथा– कृणुतात्, श्रृणोत, सुनोतन, यतिष्ठन।

(छ) वैदिक भाषा में प्रत्ययों की विविधता भी दृष्टिगोचर होती है। तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में इस प्रत्यय के अतिरिक्त से, सेन् असे, असेन् कसे, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवैङ्., तवेन् ये 15 प्रत्यय किए जाते हैं। से, सेन्– एजे (आने के लिए)। असे, असेन्– जीवसे (जीने के लिए)। कसे, कसेन्–श्रियसे (आश्रय पाने के लिए)। अध्यै, अध्यैन्– उपाचरध्यै आचरण करने के लिए। कध्यै, कध्यैन्–आहुवध्यै (आह्वान करने के लिए)। तवेङ्.–सूतवे (उत्पन्न करने के लिए)। गवेन्–गन्तवे (जीने के लिए)।

(ज) नाम धातु बनाने के लिए य लगाया जा सकता है। यथा– अवस्य, गव्य, नमस्य, मुजाय, सपर्य, वृषाय, सुम्नाय आदि।

(झ) त्वा प्रत्यय अनेक स्थानों पर त्वी, त्वाय या त्वीन के रूप में मिलता है। यथा हित्वी–छोड़ कर (2.38.6), युद्धवी–युद्ध करके (10.208.5)।

5. शब्दरूप

वैदिक भाषा में शब्दों के रूप लौकिक संस्कृत की अपेक्षा यद्यपि अधिक भिन्न नहीं हैं, तथापि वैदिक शब्दों के रूपों में लौकिक संस्कृत की अपेक्षा अधिक विविधता है। वैदिक शब्दरूपों की कुछ विशेषताएं निम्न है–

(क) अकारान्त पुल्लिग शब्दों के प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में आ और ओ औ को आ उच्चारण करने का उदाहरण 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' में स्पष्ट है।

(देवा, दैवौ) दोनों रूप बनते हैं। बहुवचनः में आः और आसः (देवाः, देवासः, जनः जनासः, मत्याः, मर्त्यासः) दो प्रकार के रूप बनते हैं। तृतीया विभक्ति के एक वचन में एन और एना (देवेन, देवेना) एवं बहुवचन में ऐः और एभिः (देवैः, देवेभिः) रूप बनते हैं।

(ख) अकारान्त नपुंसकलिंग में प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में आ और आनि (वना, वनानि) ये दो रूप बनते हैं।

(ग) अकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा के बहुवचन में आः और आसः रूप बनते हैं।

(घ) इकारान्त पुल्लिंग शब्दों के सप्तमी के एकवचन में और और आ अग्नो, अग्ना दो रूप प्रचलित है।

(ड.) इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के तृतीया के एकवचन में शुच्या, शुची जैसे दो रूप बनते हैं। चतुर्थी के एकवचन भृत्यैः, भृत्यौः प्रकार के दो रूप बनते हैं।

(च) इकारान्त और ऊकारान्त शब्दों के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में नद्यौ, बध्वौ प्रकार के रूपों के साथ नदी और वधू रूप भी बनते हैं। प्रथम विभक्ति के बहुवचन में नद्यः वध्वः के साथ ही नदीः और वधूः रूपों का प्रयोग होता है।

(छ) उकारान्त शब्दों के षष्ठी के एकवचन में मधोः, मध्वः इस प्रकार से दो रूप एवं सप्तमी के एकवचन में मधो मधवि रूपों का प्रचलन है।

(ज) बिना रूप परिवर्तन के भी विभक्तियां बन जाती हैं। किसी भी विभक्ति के किसी भी वचन के लिए प्रथमा विभक्ति के एकवचन का प्रयोग कर दिया जाता है। अथवा मूल शब्द का ही प्रयोग कर दिया जाता है। शब्द के अन्तिम स्वर को दीर्घ करने से अथवा उसमें आ जोड़ने से कुछ विभक्तियों के रूप निष्पन्न हो जाते हैं।

(झ) वैदिक भाषा में सर्वनाम शब्दों के रूप लौकिक संस्कृत की अपेक्षा अधिक हैं। जैसे– युष्मद्–प्रथमा–त्वम्, युवम्, युयम्। तृतीया एकवचन त्वा, त्वयाः, द्विवचन युववाभ्याम्। पंचमी–त्वद्, युवद्, युष्मद्। षष्ठी–द्विवचन युवाः। सप्तमी एकवचन त्वे, त्वयि, बहुवचन युष्मे।

अस्मद्–प्रथमा–अहम्, वाम् वयम्। द्वितीया–माम्, आवाम्, अस्मान्। चतुर्थी एकवचन– मह्यम्, मह्य। सप्तमी बहुवचन–अस्मासु, अस्मे।

तद्–प्रथमा द्वितीया विभक्ति द्विवचन ता, तौ। तृतीया बहुवचन–तेभिः। सप्तमी एकवचन तस्मिन्, सस्मिन्।

इदम् – तृतीया एकवचन अया, अनया।

अदस्—तृतीया एकवचन अमुया।

एनद्— षष्ठी द्विवचन— एनोः, एनयोः।

किम्— प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग—किम्, कद्। तृतीया बहुवचन—केभिः ।

स्व— सप्तमी एकवचन—स्वे, स्वास्मिन्।

6. क्रियाविशेषण

ऋग्वेद में अनेक संज्ञाओं और सर्वनामों को क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है। यथा—अना (4.30.3), ईमा (5.73.3), शश्वधा (3.33.7), अप्रायु (5.80.3), उपपृक् (1.32.5), वामंवामं (4.30.24), द्यविद्यवि (1.25.1) आदि।

7. वाक्यविन्यास

वाक्य विन्यास की दृष्टि से भी वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में कुछ भेद है। ऋग्वेद में संज्ञाओं के साथ श्रेष्ठता वाचक प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है, यथा— कण्वतमः (1.48.4), मातृतमा (3.33.3), कवितरः (0.86.7)। लौकिक संस्कृत में इन प्रत्ययों का प्रयोग विशेषणों के साथ ही किया जाता है। अनेक वाक्यों में एक ही अर्थ के द्योतक दो क्रिया विशेषणों का प्रयोग है। अनेक वाक्यों में क्रिया का प्रयोग नहीं है या उनमें व्याकरण के अनुक्रम की कमी है। कुछ वाक्यों में पूरक सर्वनाम नहीं है। यथा 1.25.7 मन्त्र में 'यः' के बाद 'सः' सर्वनाम आना चाहिए था, वह नहीं है। अनेक स्थानों पर एक संज्ञा से संलग्न दूसरी संज्ञा दी गई है, जिससे रूपक ध्वनित होता है। जैसे 1.116.8 में अग्निम् अत्रिम् संज्ञाओं में अग्निरूपी अत्रि अर्थ व्यक्त होता है।

वैदिक संस्कृत में संज्ञा के अधिकार उपसर्गों का स्वतन्त्र पृथक् प्रयोग बहुधा मिलता है। जैसे रोचनात् अधि (1.49.1), मानुषान् अभि (1.48.7), अध्वरान् उप (1.48.11), गिरिभ्यः आ (7.65.1) उत्तानपदः परि (10.62.3) आदि में है।

8. वैदिक संस्कृत में अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनका प्रयोग लौकिक संस्कृत में यथा ईम, विचर्षणी, उक्थ, ऊति, उर्गिया, सीम, रिग्वन् आदि शब्द वेदों में ही हैं और लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त नहीं होते।

9. वैदिक संस्कृत के अनेक शब्दों के अर्थ लौकिक संस्कृत में परिणत हो गए हैं। वेद में 'अराति' का अर्थ कृपणता और शत्रुता दोनों हैं, पर लोक में इसका अर्थ शत्रु है। 'अरि' ईश्वर का वाचक शब्द लौकिक संस्कृत में शत्रु अर्थवाची हो गया। वेद में 'वध' का अर्थ भयानक हथियार है, लोक में मारना। 'मृडीक' का अर्थ कृपा था पर लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ शिव है। वेद में 'इव' के अर्थ के लिए 'न' का प्रचुर प्रयोग हुआ है, पर लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ 'नहीं' है।

ऊपर वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत की भिन्नता को यत्किंचित् दिखलाया गया है। यह केवल संकेत मात्र है। इन भाषाओं में भिन्नता के और भी अनेक उदाहरण और संकेत हैं पाणिनी की 'अष्टध्यायी'

के वैदिक व्याकरण से सम्बन्धित अंशों से तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' की वैदिक प्रक्रिया से इस सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है। पहले वैदिक भाषा सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा रही होगी जिससे उस युग के ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं का संकलन किया। हजारों वर्षों की अवधि में भाषागत परिवर्तन होते रहें। पाणिनि के समय में जो भाषा शिष्ट जनों में व्यवहृत होती थी, उसको उन्होंने नियमों से बांधकर एक परिष्कृत रूप दिया। उसके बाद संस्कृत भाषा का रूप अविच्छिन्न रूप से उसी प्रकार का बना रहा।

- **स्वयं आंकलन प्रष्न 1**

    प्र॰1. वेदों में किस स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है परन्तु लौकिक संस्कृत में नहीं है?

    प्र॰2. वैदिक संस्कृत में स्वरों के कितने प्रकार हैं?

    प्र॰3. वैदिक स्वरों के उच्चारण में किस बात का ध्यान रखा जाता है?

    प्र॰4. लौकिक संस्कृत में कौन से स्वर होते हैं?

21.4 सारांष

वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर है। वैदिक संस्कृत में ऋ और लृ के दीर्घ रूप उपलब्ध होते हैं। जैसे– ऋ का ॠ तथा लृ का दीर्घ रूप ॡ प्राप्त होता है परन्तु लौकिक संस्कृत में ये रूप प्राप्त नहीं होते हैं। लौकिक साहित्य की भाषा तथा वैदिक साहित्य की भाषा में अन्तर पाया जाता है। इन दोनों भाषाओं के शब्द रूप तथा धातु रूप अनेक प्रकार से भिन्न हैं। शब्द रूप के दृष्टिकोण से लौकिक संस्कृत में ऐसे रूप बनते हैं। जैसे– देवाः जनाः जो प्रथम विभक्ति बहुवचन हैं परन्तु वैदिक संस्कृत में देवाः का देवासः, जनाः का जनासः रूप मिलते हैं।

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में क्रिया रूपों तथा धातुरूपों में भी अन्तर पाए जाते हैं। चतुर्थ शताब्दी ई.पू. पाणिनी ने लौकिक संस्कृत के जिस रूप को निर्धारित किया था, वह रूप हज़ारों वर्षों के व्यतीत होने पर आज भी विद्यमान है। परन्तु वैदिक भाषा पर पाणिनीय व्याकरण के वे नियम पूर्ण रूप से लागू नहीं होते हैं। यद्यपि पाणिनी ने वैदिक भाषा के सम्बन्ध में भी व्याकरण के नियमों को बनाने का प्रयास किया था परन्तु वे उसको पूर्णतया नियमों में नहीं बांध सके।

कुछ वैदिक शब्द लौकिक संस्कृत में प्राप्त नहीं होते तथा कुछ नए शब्दों का उद्‌भव भी हो गया है। उदाहरण के लिए वैदिक शब्द 'अपस्' का कार्य अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत में लुप्त है। लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त परिवार शब्द वैदिक संस्कृत में उपलब्ध नहीं होता। लौकिक संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ– ये दो प्रकार के स्वर व्यवहृत होते हैं। इनमें ह्रस्व में एक तथा दीर्घ में दो मात्राएं होती हैं। वैदिक संस्कृत में स्वरों के तीन प्रकार हैं– ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। प्लुत में तीन मात्राएं होती हैं और स्वर को अधिक लम्बा करके उच्चारण किया जाता है। वैदिक व्याकरण में स्वराघात का बहुत महत्त्व है। वेद मन्त्रों का उच्चारण करने में तथा उनका अर्थ करने में स्वराघात को ध्यान में रखना होता है। किसी भी शब्द पर विशेष बल डालकर

उच्चारण करना स्वराघात या स्वर है। लौकिक संस्कृत में स्वराघातों का महत्त्व नहीं है। वैदिक संस्कृत लौकिक संस्कृत की अपेक्षा धातुरूपों की दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न है क्योंकि एक प्रकार की ही धातुओं के अनेक अर्थ और रूप ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होते हैं।

वर्तमान काल में वैदिक संस्कृत भाषा में अनेक भिन्नताएं मिलती हैं। शब्दों, धातुओं आदि सहित व्याकरण में अनेक भाषागत अन्तर दृष्टिगत होते हैं।

21.5 कठिन शब्दावली

स्वराघात–शब्दोच्चारण में किसी व्यंजन या स्वर पर अधिक ज़ोर देना

प्लुत –जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वरों से भी अधिक समय लगता है, उन्हें प्लुत स्वर कहते हैं

स्वरभक्ति –संयुक्त व्यंजन के बीच में स्वर लाने की घटना स्वरभक्ति है। जैसे– इन्द्र को इन्दर उच्चारण करना

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

- **स्वयं आंकलन प्रश्न 1**

उ॰1. लृ

उ॰2. ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत स्वर

उ॰1. स्वराघात

उ॰2. ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर

21.7 अनुषंसित ग्रन्थ

1. हरिदत्त शास्त्री, ऋक् सूक्त संग्रह, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ (उ.प्र.) तथा कृष्ण कुमार।
2. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37–बी., रविन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–5 (उ.प्र.)
3. पुष्पा गुप्ता, वेदनिर्झरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1

21.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. वैदिक तथा लौकिक भाषा का तुलनात्मक परिचय दीजिए।
2. वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर स्पष्ट करें।